



● पहला अध्याय ●

॥ सारांश ॥

गीता जी के अध्याय 1 के श्लोक 1 से 19 तक इन श्लोकों में संजय सेना की स्थिति तथा सेना में आए गणमान्य योद्धाओं के बारे में जानकारी धृतराष्ट्र को दे रहा है। गीता अध्याय 1 के श्लोक 20 से 23 श्लोकों में अर्जुन कह रहा है कि भगवन्! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ले चलो ताकि देख लूं कि मेरे सामने टिकने वाले कौन-2 से योद्धा हैं।

गीता अध्याय 1 के श्लोक 24-25 में वर्णन है कि भगवान कृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में खड़ा करके अर्जुन से कहा कि देख सामने खड़े राजाओं तथा कुरुवंशियों को। गीता अध्याय 1 के श्लोक 26 से 45 तक के श्लोकों में वर्णन है कि अर्जुन ने युद्ध के लिए तत्पर अपने ही सम्बन्धियों को, पुत्रों व पौत्रों को, साले ससुरों को मरने मारने के लिए आए हुए देखा तथा श्री कृष्ण जी से विशेष विवेक से कहा कि सामने खड़े मासूम बच्चों, अपने साथी व चचेरे भाईयों व सम्बन्धियों को देखकर मेरा शरीर काँप रहा है। धनुष हाथ से गिर रहा है। मैं खड़ा भी नहीं रह पा रहा हूँ। अपने ही जनों को मारना अच्छा महसूस नहीं कर रहा हूँ। हे कृष्ण! न तो मैं विजय चाहता हूँ, न ही राज्य का सुख। चूंकि उनको जो स्वयं अपने राज्य व जान की परवाह (चिंता) न करके मरने को तैयार हैं उन्हें मार कर मैं राज्य नहीं चाहता। मैं बन्धुओं व पुत्र तथा पौत्रों को मारना नहीं चाहता। चाहे मुझे तीनों लोकों का राज्य भी क्यों न मिलता हो, फिर पृथ्वी के राज्य के लिए तो क्यों पाप करूँ? इनको मारने से तो पाप ही लगेगा। ऐसे कुकर्म करके हम कैसे सुखी हो सकते हैं? ये सामने खड़े राजा लोग तो मोह माया में अंधे हो रहे हैं। फिर हमें तो ज्ञान है। ऐसा क्यों करें कि कुल का नाश होने पर दूसरे दुष्कर्मी लोग हमारी स्त्रियों को बलात तंग करेंगे। वर्णशंकर संतान हो जाएगी। पतिव्रता धर्म नष्ट हो जाएगा तथा धर्म कर्म न करने से नरक के भागी हो जाएंगे। वास्तव में हम बहुत पापी हैं जो अपने ही बन्धुओं को स्वार्थ वश मारने को तैयार हो गये हैं। गीता अध्याय 1 के श्लोक 46 में अर्जुन ने कहा कि भगवन इस पाप को बचाने के लिए यदि धृतराष्ट्र के पुत्र मुझ निहत्थे को मार दें और युद्ध न हो, तो भी मैं स्वयं मरना बेहतर समझता हूँ कि एक मेरे मरने से लाखों बहन विधवा होने से बच जाएंगी तथा लाखों मासूम बच्चे अनाथ होने से बच जाएंगे। गीता अध्याय 1 के श्लोक 47 में यह कह कर अर्जुन दुःखी मन से रथ के बीच वाले हिस्से में बैठ गया तथा धनुषको रख दिया।

□□□

॥पहले अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक॥

परमात्मने नमः

श्रीमद्भगवद्गीता

अथ प्रथमोऽध्यायः

अध्याय 1 का श्लोक 1 (धृतराष्ट्र उवाच)

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।१।

धर्मक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, समवेताः, युयुत्सवः,

मामकाः, पाण्डवाः, च, एव, किम्, अकुर्वत, सञ्जय॥1॥

अनुवाद : (सञ्जय) हे संजय! (धर्मक्षेत्रे) धर्मभूमि (कुरुक्षेत्रे) कुरुक्षेत्रमें (समवेताः) एकत्रित (युयुत्सवः) युद्धकी इच्छावाले (मामकाः) मेरे (च) और (एव) यहाँ (पाण्डवाः) पाण्डुके पुत्रोंने (किम्) क्या (अकुर्वत) किया? (1)

अध्याय 1 का श्लोक 2

(सञ्जय उवाच)

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।

आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत्।२।

दृष्ट्वा, तु, पाण्डवानीकम्, व्यूढम्, दुर्योधनः, तदा,

आचार्यम्, उपसङ्गम्य, राजा, वचनम्, अब्रवीत्॥2॥

अनुवाद : (तदा) उस समय (राजा) राजा (दुर्योधनः) दुर्योधनने (व्यूढम्) व्यूहरचनायुक्त (पाण्डवानीकम्) पाण्डवोंकी सेनाको (दृष्ट्वा) देखकर (तु) और (आचार्यम्) द्रोणाचार्यके (उपसङ्गम्य) पास जाकर यह (वचनम्) वचन (अब्रवीत्) कहा। (2)

अध्याय 1 का श्लोक 3

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।

व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता।३।

पश्य, एताम्, पाण्डुपुत्राणाम्, आचार्य, महतीम्, चमूम्,

व्यूढाम्, द्रुपदपुत्रेण, तव, शिष्येण, धीमता॥3॥

अनुवाद : (आचार्य) हे आचार्य! (तव) आपके (धीमता) बुद्धिमान् (शिष्येण) शिष्य (द्रुपदपुत्रेण) द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा (व्यूढाम्) व्यूहाकार खड़ी की हुई (पाण्डुपुत्राणाम्) पाण्डु-पुत्रोंकी (एताम्) इस (महतीम्) बड़ी भारी (चमूम्) सेनाको (पश्य) देखिये। (3)

अध्याय 1 का श्लोक 4-5-6

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।

युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः।४।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
 पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः।५।
 युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
 सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः।६।

अत्र, शूराः, महेष्वासाः, भीमार्जुनसमाः, युधि,
 युयुधानः, विराटः, च, द्रुपदः, च, महारथः।।४।।
 धृष्टकेतुः, चेकितानः, काशिराजः, च, वीर्यवान्
 पुरुजित्, कुन्तिभोजः, च, शैब्यः, च, नरपुङ्गवः।।५।।
 युधामन्युः, च, विक्रान्तः, उत्तमौजाः, च, वीर्यवान्,
 सौभद्रः, द्रौपदेयाः, च, सर्वे, एव, महारथाः।।६।।

अनुवाद : (अत्र) इस सेनामें (महेष्वासाः) बड़े-बड़े धनुषोंवाले (च) तथा (युधि) युद्धमें (भीमार्जुनसमाः) भीम और अर्जुनके समान (शूराः) शूर-वीर (युयुधानः) सात्यकि (च) और (विराटः) विराट (च) तथा (महारथः) महारथी (द्रुपदः) राजा द्रुपद [४](धृष्टकेतुः) धृष्टकेतु (च) और (चेकितानः) चेकितान (च) तथा (वीर्यवान्) बलवान् (काशिराजः) काशिराज (पुरुजित्) पुरुजित् (कुन्तिभोजः) कुन्तिभोज (च) और (नरपुङ्गवः) मनुष्योंमें श्रेष्ठ (शैब्यः) शैब्य [५] (विक्रान्तः) पराक्रमी (युधामन्युः) युधामन्यु (च) तथा (वीर्यवान्) बलवान् (उत्तमौजाः) उत्तमौजा (सौभद्रः) सुभद्रापुत्र अभिमन्यु (च) एवं (द्रौपदेयाः)द्रौपदीके पाँचों पुत्र ये (सर्वे, एव)सभी (महारथाः) महारथी हैं। {६}

अध्याय 1 का श्लोक 7

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
 नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते। ७।
 अस्माकम्, तु, विशिष्टाः, ये, तान्, निबोध, द्विजोत्तम,
 नायकाः, मम, सैन्यस्य, सञ्ज्ञार्थम्, तान्, ब्रवीमि, ते।।७।।

अनुवाद : (द्विजोत्तम) हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! (अस्माकम्) अपने पक्षमें (तु) भी (ये) जो (विशिष्टाः) प्रधान हैं (तान्) उनको आप (निबोध) समझ लीजिये। (ते) आपकी (सञ्ज्ञार्थम्) जानकारिके लिए (मम) मेरी (सैन्यस्य) सेनाके जो-जो (नायकाः) सेनापति हैं (तान्) उनको (ब्रवीमि) बतलाता हूँ। (7)

अध्याय 1 का श्लोक 8

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
 अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च। ८।
 भवान्, भीष्मः, च, कर्णः, च, कृपः, च, समितिजयः,
 अश्वत्थामा, विकर्णः, च, सौमदत्तिः, तथा, एव, च।।८।।

अनुवाद : (भवान्) आप-द्रोणाचार्य (च) और (भीष्मः) पितामह भीष्म (च) तथा (कर्णः) कर्ण (च) और (समितिजयः) संग्रामविजयी (कृपः) कृपाचार्य (च) तथा (तथा) वैसे (एव) ही (अश्वत्थामा) अश्वत्थामा (विकर्णः) विकर्ण (च) और (सौमदत्तिः) सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा। (8)

अध्याय 1 का श्लोक 9

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः । ९ ।

अन्ये, च, बहवः, शूराः, मदर्थे, त्यक्तजीविताः,
नानाशस्त्रप्रहरणाः, सर्वे, युद्धविशारदाः ।।9।।

अनुवाद : (अन्ये) और (च) भी (मदर्थे) मेरे लिये (त्यक्तजीविताः) जीवनकी आशा त्याग देनेवाले (बहवः)बहुत-से (शूराः) शूरवीर (नानाशस्त्रप्रहरणाः) अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित और (सर्वे) सब-के-सब (युद्धविशारदाः)युद्धमें चतुर हैं । (9)

अध्याय 1 का श्लोक 10

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीष्माभिरक्षितम् । १० ।

अपर्याप्तम्, तत्, अस्माकम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम्,
पर्याप्तम्, तु, इदम्, एतेषाम्, बलम्, भीष्माभिरक्षितम् ।।10।।

अनुवाद : (भीष्माभिरक्षितम्)भीष्मपितामह द्वारा रक्षित (अस्माकम्)हमारी (तत्)वह (बलम्)सेना (अपर्याप्तम्) सब प्रकारसे अजेय है (तु) और (भीष्माभिरक्षितम्) भीमद्वारा रक्षित (एतेषाम्) इन लोगोंकी (इदम्) यह (बलम्) सेना (पर्याप्तम्) जीतनेमें सुगम है । (10)

अध्याय 1 का श्लोक 11

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्वे एव हि । ११ ।

अयनेषु, च, सर्वेषु, यथाभागम्, अवस्थिताः,
भीष्मम्, एव, अभिरक्षन्तु, भवन्तः, सर्वे, एव, हि ।।11।।

अनुवाद : (च) इसलिए (सर्वेषु) सब (अयनेषु) मोर्चोंपर (यथाभागम्) अपनी-अपनी जगह (अवस्थिताः) स्थित रहते हुए (भवन्तः) आपलोग (सर्वे, एव) सभी (हि) निःसन्देह (भीष्मम्) भीष्मपितामहकी (एव) ही (अभिरक्षन्तु) सब ओरसे रक्षा करें । (11)

अध्याय 1 का श्लोक 12

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् । १२ ।

तस्य, सजनयन्, हर्षम्, कुरुवृद्धः, पितामहः,
सिंहनादम्, विनद्य, उच्चैः, शङ्खम्, दध्मौ, प्रतापवान् ।।12।।

अनुवाद : (कुरुवृद्धः) कौरवोंमें वृद्ध (प्रतापवान्) बड़े प्रतापी (पितामहः) पितामह भीष्मने (तस्य) उस दुर्योधन के हृदयमें (हर्षम्) हर्ष (सजनयन्) उत्पन्न करते हुए (उच्चैः) उच्च स्वरसे (सिंहनादम्) सिंहकी दहाड़ के समान (विनद्य) गरजकर (शङ्खम्) शंख (दध्मौ) बजाया । (12)

अध्याय 1 का श्लोक 13

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् । १३ ।

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् । १३ ।

ततः, शङ्खाः, च, भेर्यः, च, पणवानकगोमुखाः,

सहसा, एव, अभ्यहन्यन्त, सः, शब्दः, तुमुलः, अभवत् ॥13॥

अनुवाद : (ततः) इसके पश्चात् (शङ्खाः) शंख (च) और (भेर्यः) नगारे (च) तथा (पणवानक गोमुखाः) ढोल, मृदंग और नरसिंघे आदि बाजे (सहसा) एक साथ (एव) ही (अभ्यहन्यन्त) बज उठे। उनका (सः) वह (शब्दः) शब्द (तुमुलः) बड़ा भयंकर (अभवत्) हुआ। (13)

अध्याय 1 का श्लोक 14

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः। १४।

ततः, श्वेतैः, हयैः, युक्ते, महति, स्यन्दने, स्थितौ,

माधवः, पाण्डवः, च, एव, दिव्यौ, शङ्खौ, प्रदध्मतुः ॥14॥

अनुवाद : (ततः) इसके अनन्तर (श्वेतैः) सफेद (हयैः) घोड़ोंसे (युक्ते) युक्त (महति) उत्तम (स्यन्दने) रथमें (स्थितौ) बैठे हुए (माधवः) श्रीकृष्ण महाराज (च) और (पाण्डवः) अर्जुनने (एव) भी (दिव्यौ) अलौकिक (शङ्खौ) शंख (प्रदध्मतुः) बजाये। (14)

अध्याय 1 का श्लोक 15

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।

पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः। १५।

पाञ्चजन्यम्, हृषीकेशः, देवदत्तम्, धनञ्जयः,

पौण्ड्रम्, दध्मौ, महाशङ्खम्, भीमकर्मा, वृकोदरः ॥15॥

अनुवाद : (हृषीकेशः) श्रीकृष्ण महाराजने (पाञ्चजन्यम्) पाञ्चजन्य नामक (धनञ्जयः) अर्जुनने (देवदत्तम्) देवदत्त नामक और (भीमकर्मा) भयानक कर्मवाले (वृकोदरः) भीमसेनने (पौण्ड्रम्) पौण्ड्र नामक (महाशङ्खम्) महाशंख (दध्मौ) बजाया। (15)

अध्याय 1 का श्लोक 16

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ। १६।

अनन्तविजयम्, राजा, कुन्तीपुत्रः, युधिष्ठिरः,

नकुलः, सहदेवः, च, सुघोषमणिपुष्पकौ ॥16॥

अनुवाद : (कुन्तीपुत्रः) कुन्तीपुत्र (राजा) राजा (युधिष्ठिरः) युधिष्ठिरने (अनन्तविजयम्) अनन्तविजय नामक और (नकुलः) नकुल (च) तथा (सहदेवः) सहदेवने (सुघोषमणिपुष्पकौ) सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाये। (16)

अध्याय 1 का श्लोक 17-18

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः। १७।

काश्यः, च, परमेष्वासः, शिखण्डी, च, महारथः,

धृष्टद्युम्नः, विराटः, च, सात्यकिः, च, अपराजितः ॥17॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् । १८ ।

द्रुपदः, द्रौपदेयाः, च, सर्वशः, पृथिवीपते,
सौभद्रः, च, महाबाहुः, शङ्खान्, दध्मुः, पृथक्, पृथक् ।।18।।

अनुवाद : (परमेष्वासः) श्रेष्ठ धनुषवाले (काश्यः) काशिराज (च) और (महारथः) महारथी (शिखण्डी) शिखण्डी (च) एवं (धृष्टद्युम्नः) धृष्टद्युम्न (च) तथा (विराटः) राजा विराट (च) और (अपराजितः) अजेय (सात्यकिः) सात्यकि (द्रुपदः) राजा द्रुपद (च) एवं (द्रौपदेयाः) द्रौपदीके पाँचों पुत्र (च) और (महाबाहुः) बड़ी भुजावाले (सौभद्रः) सुभद्रापुत्र अभिमन्यु इन सभीने (पृथिवीपते) हे राजन्! (सर्वशः) सब ओरसे (पृथक्-पृथक्) अलग-अलग (शङ्खान्) शंख (दध्मुः) बजाये । (18)

अध्याय 1 का श्लोक 19

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् । १९ ।

सः, घोषः, धार्तराष्ट्राणाम्, हृदयानि, व्यदारयत्,
नभः, च, पृथिवीम्, च, एव, तुमुलः, व्यनुनादयन् ।।19।।

अनुवाद : (च) और (सः) उस (तुमुलः) भयानक (घोषः) शब्दने (नभः) आकाश (च) और (पृथिवीम्) पृथ्वीको (एव) भी (व्यनुनादयन्) गुँजाते हुए (धार्तराष्ट्राणाम्) धृतराष्ट्रके यानि आपके पक्षवालोंके (हृदयानि) हृदय (व्यदारयत्) विदीर्ण कर दिये । (19)

अध्याय 1 का श्लोक 20-21

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः । २० ।

अथ, व्यवस्थितान्, दृष्ट्वा, धार्तराष्ट्रान्, कपिध्वजः,
प्रवृत्ते, शस्त्रसम्पाते, धनुः, उद्यम्य, पाण्डवः ।।20।।

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत । २१ ।

हृषीकेशम्, तदा, वाक्यम्, इदम्, आह, महीपते,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, रथम्, स्थापय, मे, अच्युत ।।21।।

अनुवाद : (महीपते) हे राजन्! (अथ) इसके बाद (कपिध्वजः) कपिध्वज (पाण्डवः) अर्जुनने (व्यवस्थितान्) मोर्चा बाँधकर डटे हुए (धार्तराष्ट्रान्) धृतराष्ट्र सम्बन्धियोंको (दृष्ट्वा) देखकर (तदा) उस (शस्त्रसम्पाते) शस्त्र चलनेकी तैयारीके (प्रवृत्ते) समय (धनुः) धनुष (उद्यम्य) उठाकर (हृषीकेशम्) हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराजसे (इदम्) यह (वाक्यम्) वचन (आह) कहा (अच्युत) हे अच्युत! (मे) मेरे (रथम्) रथको (उभयोः) दोनों (सेनयोः) सेनाओंके (मध्ये) बीचमें (स्थापय) खड़ा कीजिये । (20-21)

अध्याय 1 का श्लोक 22 (अर्जुन उवाच)

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्नणसमुद्यमे । २२ ।

यावत्, एतान्, निरीक्षे, अहम्, योद्धुकामान्, अवस्थितान्,
कैः, मया, सह, योद्धव्यम्, अस्मिन्, रणसमुद्यमे ।।22।।

अनुवाद : (यावत्) जबतक कि (अहम्) मैं (अवस्थितान्) युद्ध-क्षेत्रमें डटे हुए (योद्धुकामान्) युद्धके अभिलाषी (एतान्) इन विपक्षी योद्धुओंको (निरीक्षे) भली प्रकार देख लूँ कि (अस्मिन्) इस (रणसमुद्यमे) युद्धरूप व्यापारमें (मया) मुझे (कैः) किन-किनके (सह) साथ (योद्धव्यम्) युद्ध करना योग्य है। (22)

अध्याय 1 का श्लोक 23

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः । २३ ।

योत्स्यमानान्, अवेक्षे, अहम्, ये, एते, अत्र, समागताः,
धार्तराष्ट्रस्य, दुर्बुद्धेः, युद्धे, प्रियचिकीर्षवः ।।23।।

अनुवाद : (दुर्बुद्धेः) दुर्बुद्धि (धार्तराष्ट्रस्य) धृतराष्ट्रके दुर्योधनका (युद्धे) युद्धमें (प्रियचिकीर्षवः) हित चाहनेवाले (ये) जो-जो (एते) ये राजालोग (अत्र) इस सेनामें (समागताः) आये हैं इन (योत्स्यमानान्) युद्ध करनेवालोंको (अहम्) मैं (अवेक्षे) देखूँगा। (23)

अध्याय 1 का श्लोक 24-25

(संजय उवाच)

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् । २४ ।

एवम्, उक्तः, हृषीकेशः, गुडाकेशेन, भारत,
सेनयोः, उभयोः, मध्ये, स्थापयित्वा, रथोत्तमम् ।।24।।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।

उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरुनिति । २५ ।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः, सर्वेषाम्, च, महीक्षिताम्,

उवाच, पार्थ, पश्य, एतान्, समवेतान्, कुरुन्, इति ।।25।।

अनुवाद : (भारत) हे धृतराष्ट्र! (गुडाकेशेन) अर्जुनद्वारा (एवम्) इस प्रकार (उक्तः) कहे हुए (हृषीकेशः) महाराज श्रीकृष्णचन्द्रने (उभयोः) दोनों (सेनयोः) सेनाओंके (मध्ये) बीचमें (भीष्मद्रोणप्रमुखतः) भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने (च) तथा (सर्वेषाम्) सम्पूर्ण (महीक्षिताम्) राजाओंके सामने (रथोत्तमम्) उत्तम रथको (स्थापयित्वा) खड़ा करके (इति) इस प्रकार (उवाच) कहा कि (पार्थ) हे पार्थ! युद्ध के लिये (समवेतान्) जुटे हुए (एतान्) इन (कुरुन्) कौरवोंको (पश्य) देख। (24-25)

अध्याय 1 का श्लोक 26-27

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितृन्थ पितामहान् ।

आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा । २६ ।

तत्र, अपश्यत्, स्थितान्, पार्थः, पितृन्, अथ, पितामहान्,

आचार्यान्, मातुलान्, भ्रातृन्, पुत्रान्, पौत्रान्, सखीन्, तथा (26)

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्। २७।

श्वशुरान्, सुहृदः, च, एव, सेनयोः, उभयोः, अपि,
तान्, समीक्ष्य, सः, कौन्तेयः, सर्वान्, बन्धून्, अवस्थितान्, ।। (27)

अनुवाद : (अथ) इसके बाद (पार्थः) पृथापुत्र अर्जुनने (तत्र) उन (उभयोः) दोनों (एव) ही (सेनयोः) सेनाओंमें (स्थितान्) स्थित (पितृन्) ताऊ-चाचोंको (पितामहान्) दादों-परदादोंको (आचार्यान्) गुरुओंको (मातुलान्) मामाओंको (भ्रातृन्) भाइयोंको (पुत्रान्) पुत्रोंको (पौत्रान्) पौत्रोंको (तथा) तथा (सखीन्) मित्रोंको (श्वशुरान्) ससुरोंको (च) और (सुहृदः) सुहृदोंको (अपि) भी (अपश्यत्) देखा। (तान्) उन (अवस्थितान्) उपस्थित (सर्वान्) सम्पूर्ण (बन्धून्) बन्धुओंको (समीक्ष्य) देखकर (सः) उस (कौन्तेयः) कुन्तीपुत्र अर्जुन ने। (26-27)

अध्याय 1 का श्लोक 28

(अर्जुन उवाच)

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्। २८।

कृपया, परया, आविष्टः, विषीदन्, इदम्, अब्रवीत्,
दृष्ट्वा, इमम्, स्वजनम्, कृष्ण, युयुत्सुम्, समुपस्थितम्।।28।।

अनुवाद : (परया) अत्यन्त (कृपया) करुणासे (आविष्टः) युक्त होकर (विषीदन्) शोक करते हुए (इदम्) यह वचन (अब्रवीत्) बोले। (कृष्ण) हे कृष्ण! युद्ध-क्षेत्रमें (समुपस्थितम्) डटे हुए (युयुत्सुम्) युद्धके अभिलाषी (इमम्) इस (स्वजनम्) स्वजन-समुदायको (दृष्ट्वा) देखकर (28)

अध्याय 1 का श्लोक 29

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते। २९।

सीदन्ति, मम, गात्राणि, मुखम्, च, परिशुष्यति,
वेपथुः, च, शरीरे, मे, रोमहर्षः, च, जायते।।29।।

अनुवाद : (मम) मेरे (गात्राणि) अंग (सीदन्ति) शिथिल हुए जा रहे हैं। (च) और (मुखम्) मुख (परिशुष्यति) सूखा जा रहा है (च) तथा (मे) मेरे (शरीरे) शरीरमें (वेपथुः) कम्पन (च) एवं (रोमहर्षः) रोमांच (जायते) हो रहा है। (29)

अध्याय 1 का श्लोक 30

गाण्डीवं स्त्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः। ३०।

गाण्डीवम्, स्त्रंसते, हस्तात्, त्वक्, च, एव, परिदह्यते,
न, च, शक्नोमि, अवस्थातुम्, भ्रमति, इव, च, मे, मनः।।30।।

अनुवाद : (हस्तात्) हाथसे (गाण्डीवम्) गाण्डीव धनुष (स्त्रंसते) गिर रहा है (च) और (त्वक्) त्वचा (एव) भी (परिदह्यते) बहुत जल रही है (च) तथा (मे) मेरा (मनः) मन (भ्रमति, इव) भ्रमित-सा हो रहा है इसलिए मैं (अवस्थातुम्) खड़ा रहनेको (च) भी (न शक्नोमि) समर्थ नहीं हूँ। (30)

अध्याय 1 का श्लोक 31

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे । ३१ ।

निमित्तानि, च, पश्यामि, विपरीतानि, केशव,

न, च, श्रेयः, अनुपश्यामि, हत्वा, स्वजनम्, आहवे ।। 31 ।।

अनुवाद : (केशव) हे केशव! मैं (निमित्तानि) लक्षणोंको (च) भी (विपरीतानि) विपरीत ही (पश्यामि) देख रहा हूँ तथा (आहवे) युद्धमें (स्वजनम्) स्वजनसमुदायको (हत्वा) मारकर (श्रेयः) कल्याण (च) भी (न) नहीं (अनुपश्यामि) देखता । (31)

अध्याय 1 का श्लोक 32

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा । ३२ ।

न, काङ्क्षे, विजयम्, कृष्ण, न, च, राज्यम्, सुखानि, च,

किम्, नः, राज्येन, गोविन्द, किम्, भोगैः, जीवितेन, वा ।। 32 ।।

अनुवाद : (कृष्ण) हे कृष्ण! मैं (न) न तो (विजयम्) विजय (काङ्क्षे) चाहता हूँ (च) और (न) न (राज्यम्) राज्य (च) तथा (सुखानि) सुखोंको ही (गोविन्द) हे गोविन्द! (नः) हमें ऐसे (राज्येन) राज्यसे (किम्) क्या प्रयोजन है (वा) अथवा ऐसे (भोगैः) भोगोंसे और (जीवितेन) जीवनसे भी (किम्) क्या लाभ है? । (32)

अध्याय 1 का श्लोक 33

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।

त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च । ३३ ।

येषाम्, अर्थे, काङ्क्षितम्, नः, राज्यम्, भोगाः, सुखानि, च,

ते, इमे, अवस्थिताः, युद्धे, प्राणान्, त्यक्त्वा, धनानि, च ।। 33 ।।

अनुवाद : (नः) हमें (येषाम्) जिनके (अर्थे) लिये (राज्यम्) राज्य (भोगाः) भोग (च) और (सुखानि) सुखादि (काङ्क्षितम्) अभीष्ट हैं (ते) वे ही (इमे) ये सब (धनानि) धन (च) और (प्राणान्) जीवन की आशा को (त्यक्त्वा) त्यागकर (युद्धे) युद्धमें (अवस्थिताः) खड़े हैं । (33)

अध्याय 1 का श्लोक 34

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।

मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा । ३४ ।

आचार्याः, पितरः, पुत्राः, तथा, एव, च, पितामहाः,

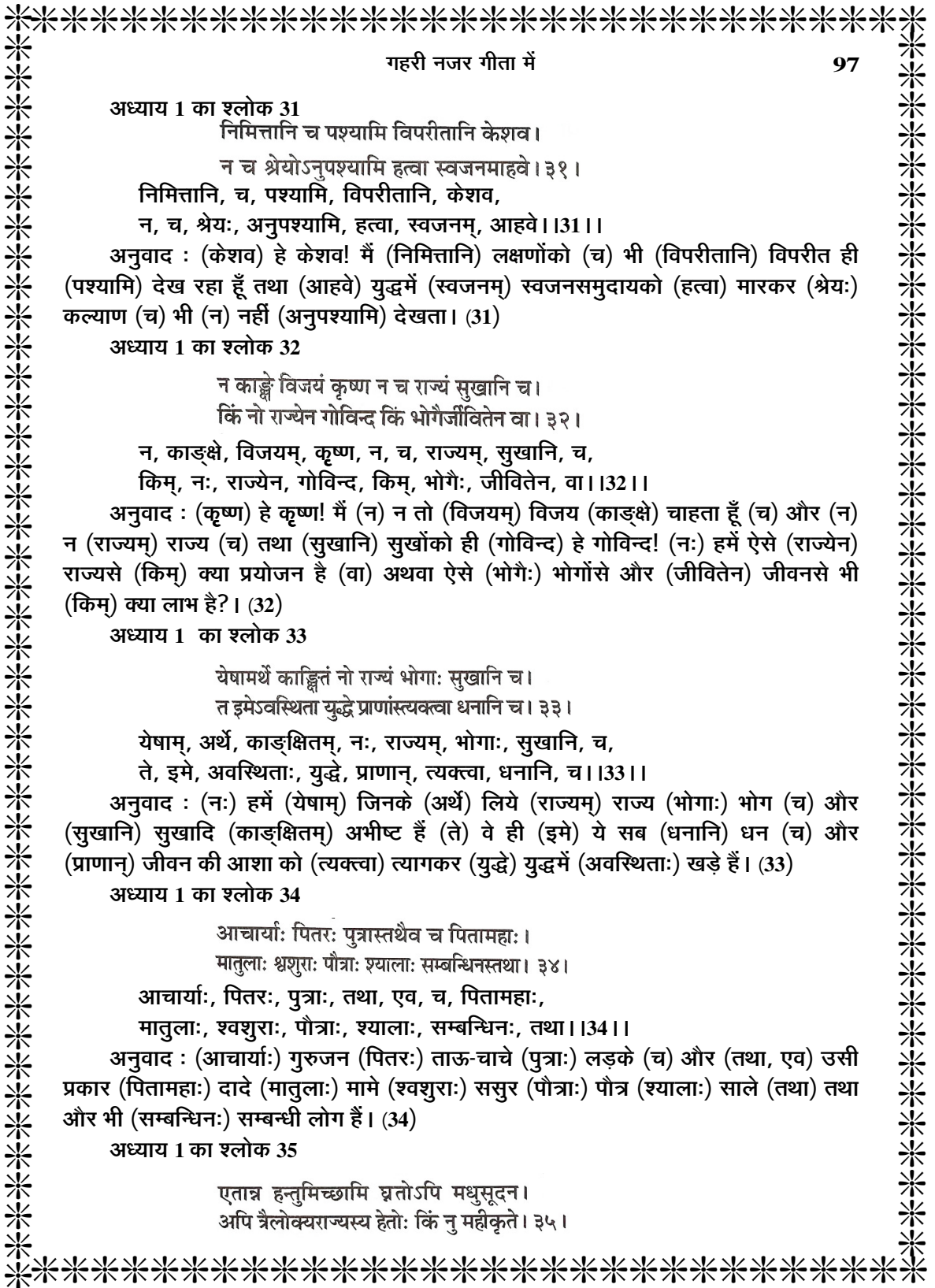
मातुलाः, श्वशुराः, पौत्राः, श्यालाः, सम्बन्धिनः, तथा ।। 34 ।।

अनुवाद : (आचार्याः) गुरुजन (पितरः) तारु-चाचे (पुत्राः) लड़के (च) और (तथा, एव) उसी प्रकार (पितामहाः) दादे (मातुलाः) मामे (श्वशुराः) ससुर (पौत्राः) पौत्र (श्यालाः) साले (तथा) तथा और भी (सम्बन्धिनः) सम्बन्धी लोग हैं । (34)

अध्याय 1 का श्लोक 35

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।

अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते । ३५ ।



एतान्, न, हन्तुम्, इच्छामि, घ्नतः, अपि, मधुसूदन,
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य, हेतोः, किम्, नु, महीकृते।।35।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! मुझे (घ्नतः) मारनेपर (अपि) भी अथवा (त्रैलोक्यराज्यस्य) तीनों लोकोंके राज्यके (हेतोः) लिये (अपि) भी मैं (एतान्) इन सबको (हन्तुम्) मारना (न) नहीं (इच्छामि) चाहता फिर (महीकृते) पृथ्वीके लिये तो (नु किम्) कहना ही क्या है?। (35)

अध्याय 1 का श्लोक 36

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।

पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः।३६।

निहत्य, धार्तराष्ट्रान्, नः, का, प्रीतिः, स्यात्, जनार्दन,
पापम्, एव, आश्रयेत्, अस्मान्, हत्वा, एतान्, आततायिनः।।36।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (धार्तराष्ट्रान्) धृतराष्ट्रके पुत्रोंको (निहत्य) मारकर (नः) हमें (का) क्या (प्रीतिः) प्रसन्नता (स्यात्) होगी? (एतान्) इन (आततायिनः) आततायियोंको (हत्वा) मारकर तो (अस्मान्) हमें (पापम्) पाप (एव) ही (आश्रयेत्) लगेगा। (36)

अध्याय 1 का श्लोक 37

तस्मान्नाहं वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।

स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।३७।

तस्मात्, न, अर्हाः, वयम्, हन्तुम्, धार्तराष्ट्रान्, स्वबान्धवान्,
स्वजनम्, हि, कथम्, हत्वा, सुखिनः, स्याम, माधव।।37।।

अनुवाद : (तस्मात्) अतएव (माधव) हे माधव! (स्वबान्धवान्) अपने ही बान्धव (धार्तराष्ट्रान्) धृतराष्ट्रके पुत्रोंको (हन्तुम्) मारनेके लिये (वयम्) हम (न अर्हाः) योग्य नहीं हैं (हि) क्योंकि (स्वजनम्) अपने ही कुटुम्बको (हत्वा) मारकर हम (कथम्) कैसे (सुखिनः) सुखी (स्याम) होंगे?। (37)

अध्याय 1 का श्लोक 38-39

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।

कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्।३८।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।

कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।३९।

यद्यपि, एते, न, पश्यन्ति, लोभोपहतचेतसः,
कुलक्षयकृतम्, दोषम्, मित्रद्रोहे, च, पातकम्।।38।।
कथम्, न, ज्ञेयम्, अस्माभिः, पापात्, अस्मात्, निवर्तितुम्,
कुलक्षयकृतम्, दोषम्, प्रपश्यद्भिः, जनार्दन।।39।।

अनुवाद : (यद्यपि) यद्यपि (लोभोपहतचेतसः) लोभसे भ्रष्टचित हुए (एते) ये लोग (कुलक्षयकृतम्) कुलके नाशसे उत्पन्न (दोषम्) दोषको (च) और (मित्रद्रोहे) मित्रोंसे विरोध करनेमें (पातकम्) पापको (न) नहीं (पश्यन्ति) देखते तो भी (जनार्दन) हे जनार्दन! (कुलक्षयकृतम्) कुलके नाशसे उत्पन्न (दोषम्) दोषको (प्रपश्यद्भिः) जाननेवाले (अस्माभिः) हमलोगोंको (अस्मात्) इस (पापात्)

पापसे (निवर्तितुम्) हटनेके लिये (कथम्) क्यों (न) नहीं (ज्ञेयम्) विचार करना चाहिये?। (38-39)

अध्याय 1 का श्लोक 40

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।

धर्मं नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत। ४०।

कुलक्षये, प्रणश्यन्ति, कुलधर्माः, सनातनाः,

धर्मं, नष्टे, कुलम्, कृत्स्नम्, अधर्मः, अभिभवति, उत।।40।।

अनुवाद : (कुलक्षये) कुलके नाशसे (सनातनाः) सनातन (कुलधर्माः) कुलधर्म (प्रणश्यन्ति) नष्ट हो जाते हैं (धर्मं) धर्मके (नष्टे) नाश हो जानेपर (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (कुलम्) कुलमें (अधर्मः) पाप (उत) भी (अभिभवति) बहुत फैल जाता है। (40)

अध्याय 1 का श्लोक 41

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।

स्त्रीषु दुष्टासु वाष्ण्यं जायते वर्णसङ्करः। ४१।

अधर्माभिभवात्, कृष्ण, प्रदुष्यन्ति, कुलस्त्रियः,

स्त्रीषु, दुष्टासु, वाष्ण्यं, जायते, वर्णसंकरः।।41।।

अनुवाद : (कृष्ण) हे कृष्ण! (अधर्माभिभवात्) पापके अधिक बढ़ जानेसे (कुलस्त्रियः) कुलकी स्त्रियाँ (प्रदुष्यन्ति) अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और (वाष्ण्यं) हे वाष्ण्य! (स्त्रीषु) स्त्रियोंके (दुष्टासु) दूषित चरित्र वाली हो जानेपर (वर्णसंकर) वर्णशंकर संतान (जायते) उत्पन्न होती है। (41)

अध्याय 1 का श्लोक 42

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।

पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः। ४२।

संकरः, नरकाय, एव, कुलघ्नानाम्, कुलस्य, च,

पतन्ति, पितरः, हि, एषाम्, लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।।42।।

अनुवाद : (संकरः) वर्णसंकर (कुलघ्नानाम्) कुलघातियोंको (च) और (कुलस्य) कुलको (नरकाय) नरकमें ले जानेके लिये (एव) ही होता है (लुप्तपिण्डोदक) गुप्त शारीरिक विलास जो नर-मादा के बीज और रज रूप जल की (क्रियाः) क्रियासे (एषाम्) इनके (पितरः) वंश (हि) भी (पतन्ति) अधोगतिको प्राप्त होते हैं। (42)

अध्याय 1 का श्लोक 43

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः।

उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः। ४३।

दोषैः, एतैः, कुलघ्नानाम्, वर्णसंकरकारकैः,

उत्साद्यन्ते, जातिधर्माः, कुलधर्माः, च, शाश्वताः।।43।।

अनुवाद : (एतैः) इन (वर्णसंकरकारकैः) वर्णसंकरकारक (दोषैः) दोषोंसे (कुलघ्नानाम्) कुलघातियोंके (शाश्वताः) सनातन (कुलधर्माः) कुल-धर्म (च) और (जातिधर्माः) जाति-धर्म (उत्साद्यन्ते) नष्ट हो जाते हैं। (43)

अध्याय 1 का श्लोक 44

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम्। ४४।

उत्सन्नकुलधर्माणाम्, मनुष्याणाम्, जनार्दन,
नरके, अनियतम्, वासः, भवति, इति, अनुशुश्रुम्।।४४।।

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (उत्सन्नकुल धर्माणाम्) जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है ऐसे (मनुष्याणाम्) मनुष्योंका (अनियतम्) अनिश्चित कालतक (नरके) नरकमें (वासः) वास (भवति) होता है (इति) ऐसा हम (अनुशुश्रुम्) सुनते आये हैं। (44)

अध्याय 1 का श्लोक 45

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः। ४५।

अहो, बत, महत्, पापम्, कर्तुम्, व्यवसिताः, वयम्,
यत्, राज्यसुखलोभेन, हन्तुम्, स्वजनम्, उद्यताः।।४५।।

अनुवाद : (अहो) हा! (बत) शोक! (वयम्) हमलोग बुद्धिमान् होकर भी (महत्) महान् (पापम्) पाप (कर्तुम्) करनेको (व्यवसिताः) तैयार हो गये हैं (यत्) जो (राज्यसुखलोभेन) राज्य और सुखके लोभसे (स्वजनम्) स्वजनोंको (हन्तुम्) मारनेके लिये (उद्यताः) उद्यत हो गये हैं। (45)

अध्याय 1 का श्लोक 46

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्। ४६।

यदि, माम्, अप्रतीकारम्, अशस्त्रम्, शस्त्रपाणयः,
धार्तराष्ट्राः, रणे, हन्युः, तत्, मे, क्षेमतरम्, भवेत्।।४६।।

अनुवाद : (यदि) यदि (माम्) मुझ (अशस्त्रम्) शस्त्ररहित एवं (अप्रतीकारम्) सामना न करनेवालेको (शस्त्रपाणयः) शस्त्र हाथमें लिये हुए (धार्तराष्ट्राः) धृतराष्ट्रके पुत्र (रणे) रणमें (हन्युः) मार डालें तो (तत्) वह मरना भी (मे) मेरे लिये (क्षेमतरम्) अधिक कल्याण-कारक (भवेत्) होगा। (46)

अध्याय 1 का श्लोक 47

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः। ४७।

एवम्, उक्त्वा, अर्जुनः, सङ्ख्ये, रथोपस्थे, उपाविशत्,
विसृज्य, सशरम्, चापम्, शोकसंविग्नमानसः।।४७।।

अनुवाद : (सङ्ख्ये) रणभूमिमें (शोकसंविग्न) शोकसे उद्विग्न (मानसः) मनवाला (अर्जुनः) अर्जुन (एवम्) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर (सशरम्) बाणसहित (चापम्) धनुषको (विसृज्य) त्यागकर (रथोपस्थे) रथके पिछले भागमें (उपाविशत्) बैठ गया। (47)

(इति अध्याय प्रथम)

□□□

दूसरा अध्याय

॥ सारांश ॥

अध्याय 2 के श्लोक 1 से 3 में वर्णन है कि दुःखी व रोते हुए अर्जुन को देख कर श्री कृष्ण के शरीर में प्रवेश "काल" (ब्रह्म) भगवान कहने लगा कि इस अवसर पर आपका कायरता दिखाना न तो स्वर्ग प्राप्ति है, न कीर्ति प्राप्ति है तथा श्रेष्ठ व्यक्तियों का काम नहीं है। इसलिए हे अर्जुन हीजड़ा न बन कर बोदेपन को त्याग कर युद्ध के लिए तैयार हो जा। अध्याय 2 के श्लोक 4 से 6 में अर्जुन कह रहा है कि भगवन अपने पूजनीय बड़ों (द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र) व बन्धुओं को मार कर पाप का भागी होने से अच्छा तो हम भिक्षा का अन्न खाना उचित समझते हैं और इस रक्त से युक्त राज को भोग कर पाप प्राप्त करेंगे। फिर न जाने कौन मरे और कौन बचे? अध्याय 2 के श्लोक 7 से 9 में अर्जुन कहता है मैं आपका शिष्य हूँ तथा आपकी शरण में हूँ। मेरी बुद्धि काम करना बन्द कर चुकी है। जो मेरे हित में हो वही सलाह (राय) दीजिए। यदि मुझे कोई सारी पृथ्वी का राज्य प्रदान करे तथा देवताओं का स्वामी अर्थात् इन्द्र का शासन भी प्रदान करे तो भी युद्ध करके पाप का भार सिर पर रखना नहीं चाहूंगा अर्थात् मुझे कोई कितना ही लालच दे, परंतु मैं नहीं देखता हूँ कि आपकी कोई शिक्षा मुझे शोक मुक्त कर देगी अर्थात् युद्ध के लिए तैयार कर देगी। (मैं युद्ध नहीं करूंगा।) इस प्रकार यह कह कर अर्जुन चुप हो कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

"ब्रह्म साधना से जन्म-मरण समाप्त नहीं होता"

अध्याय 2 के श्लोक 10 से 16 में वर्णन है कि अर्जुन को दुःख में ग्रस्त देख कर मुस्कराते हुए भगवान बोले कि हे अर्जुन शोक न करने वाली बात का शोक कर रहा है तथा ज्ञान कह रहा है पंडितों जैसा। विद्वान लोग मरने जीने की चिंता नहीं करते। यह नहीं है कि हम तुम और ये सभी सैनिक पहले कभी नहीं थे या आगे न होंगे। इसलिए दुःख-सुख सहन करने की हिम्मत रख और हम तुम सब जन्म-मरण में ही हैं।

अध्याय 2 के श्लोक 17 का भावार्थ है कि गीता ज्ञान दाता काल भगवान कह रहा है कि अर्जुन हम सब (मैं और तू तथा सर्व प्राणी) जन्म-मरण में हैं। वास्तव में अविनाशी तो उसी परमेश्वर (पूर्ण ब्रह्म) को ही जान जिससे यह सर्व ब्रह्माण्ड व्याप्त (व्यवस्थित) हैं। उस अविनाशी (सतपुरुष) का कोई नाश नहीं कर सकता। उसी की शक्ति प्रत्येक जीव में और कण-2 में विद्यमान है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर होते हुए भी उसका प्रकाश व उष्णता पृथ्वी पर प्रभाव बनाए हुए है। जैसे सौर ऊर्जा के संयन्त्र को शक्ति दूरस्थ सूर्य से प्राप्त होती है। उस संयन्त्र से जुड़े सर्व, पंखें, व प्रकाश करने वाले बल्ब आदि कार्य करते रहते हैं। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सत्यलोक में दूर विराजमान होकर सर्व प्राणियों की आत्मा रूपी संयन्त्र को शक्ति प्रदान कर रहा है। उसी की शक्ति से सर्व प्राणी व भूगोल गति कर रहे हैं। जिन शास्त्रविरुद्ध साधकों को परमात्मा का लाभ प्राप्त नहीं हो रहा उनके अन्तकरण पर पाप कर्मों के बादल छाए होते हैं। सतगुरु शरण में आने के पश्चात् सत्य साधना (शास्त्र विधि अनुसार) करने से वे पाप कर्मों के बादल समाप्त हो जाते हैं। जिस कारण से पूर्ण सन्त की शरण में रह कर मर्यादावत् साधना करने से परमात्मा से मिलने वाली शक्ति प्रारम्भ हो जाती है। कबीर परमेश्वर के शिष्य गरीबदास जी ने कहा है

जैसे सूरज के आगे बदरा ऐसे कर्म छया रे।

प्रेम की पवन करे चित मन्जन झल्के तेज नया रे ॥

सरलार्थ :- जैसे सूर्य के सामने बादल होते हैं ऐसे पाप कर्मों की छाया जीव व परमात्मा के मध्य हो जाती है। पूर्ण सन्त की शरण में शास्त्रविधि अनुसार साधना करने से प्रभु की भक्ति रूपी मन्जन से प्रभु प्रेम रूपी हवा चलने से पाप कर्म रूपी बादल हट कर नई शक्ति की चमक दिखाई देती है। अर्थात् परमात्मा से मिलने वाला लाभ प्रारम्भ हो जाता है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी को यन्त्र (मशीन) की तरह चलाता है। जैसे पानी के भरे मटकों में सूर्य प्रत्येक में दिखाई देता है। ऐसे परमात्मा जीव के हृदय में दिखाई देता है।

अध्याय 2 के श्लोक 18 का अनुवाद है कि यह पंच भौतिक शरीर नाशवान है। अविनाशी परमात्मा नाश रहित, प्रमाण रहित अर्थात् आम साधक नहीं समझ सकता, जीव आत्मा के साथ नित्य रहने वाला कहा गया है। जैसे उपरोक्त उदाहरण में सूर्य, सौर ऊर्जा संयन्त्र से अभेद रहता है उसी की शक्ति से ऊर्जा ग्रहण हो रही है। जिसे वैज्ञानिक ही जानते हैं। आम व्यक्ति नहीं समझ सकता की ये सर्व पंखे आदि कैसे कार्य कर रहे हैं। [गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 21-22-23 में और गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 8 में] इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन! युद्ध कर।

अध्याय 13 के श्लोक 21 का अनुवाद : प्रकृति में स्थित ही पुरुष अर्थात् परमात्मा प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है। जैसे सौर ऊर्जा का प्रयोग कोई पशु काटने की मशीन चलाने में प्रयोग करता है कोई जूस (रस) निकालने की मशीन चलाने में प्रयोग करता है। यह सर्व कार्य सौर ऊर्जा से ही होता है। इसी प्रकार परमात्मा की शक्ति युक्त साधक उसका जैसा प्रयोग करता है व श्रेय परमात्मा के गुण अर्थात् शक्ति को ही जाता है।

अध्याय 13 के श्लोक 22 का अनुवाद : इस देह में स्थित यह सत्पुरुष वास्तव में परमात्मा ही है वही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ संमति देने वाला होनेसे अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करनेवाला होने से भर्ता, जीवरूपसे भोक्ता ब्रह्म व परब्रह्म आदिका भी स्वामी होनेसे महेश्वर और परमात्मा ऐसा कहा गया है। अध्याय 13 के श्लोक 23 का अनुवाद : इस प्रकार सत्पुरुष को, काल भगवानको और गुणोंके सहित मायाको जो तत्वसे जानता है वह सब प्रकारसे कर्तव्य कर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। अध्याय 15 के श्लोक 8 का अनुवाद : हवा गन्धको ले जाती है क्योंकि गंध की वायु मालिक है, ऐसे परमात्मा भी सूक्ष्म शरीर युक्त जीवात्मा जिस पुराने शरीरको त्याग कर और जिस नए शरीरको प्राप्त होता है, ले जाता है।

भावार्थ :- परमात्मा की निराकार शक्ति आत्मा के साथ ऐसे जानों जैसे मोबाइल फोन रेंज से ही कार्य करता है। टॉवर एक स्थान पर होते हुए भी अपनी रेंज से अपने क्षेत्र वाले मोबाइल फोन के साथ अभेद है। इसको वही समझ सकता है जिसके पास मोबाइल फोन है। इसी प्रकार परमात्मा अपने निज स्थान सत्यलोक में रहता है या जहाँ भी आता जाता है अपनी निराकार शक्ति की रेंज को उसी तरह प्रत्येक ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्राणी व स्थान अर्थात् जड़ व चेतन पर फैलाए रहता है, जैसे सूर्य दूर स्थान पर रहते हुए भी अपना प्रकाश व अदृश्य उष्णता (गर्मी) को अपने क्षमता क्षेत्र पर कण-कण में फैलाए रहता है। इसी प्रकार परमात्मा के शरीर से निकल रहा प्रकाश व अदृश्य शक्ति सर्व जड़ व चेतन को व्यवस्थित किए हुए है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 61 में है कि पूर्ण परमात्मा प्रत्येक प्राणी को यन्त्र (मशीन) की तरह चलाता है। जैसे भिन्न-2 मटकों में सूर्य प्रत्येक में दिखाई देता है। ऐसे परमात्मा प्रत्येक प्राणी के हृदय में दिखाई देता है। परन्तु वास्तव में वह बहुत दूर स्थित होता है। इस प्रकार सर्व को व्यवस्थित किए है।

अध्याय 2 के श्लोक 19 से 21 तक का भाव है कि सर्वव्यापक पूर्ण परमात्मा आत्मा के साथ ऐसे रहता है जैसे वायु में कहीं-2 गन्ध होती है। वायु का और गंध का कभी न अलग होने वाला सम्बन्ध है। परंतु गंध का स्थानान्तरण होता है तब वायु साथ ही रहती है। इसी प्रकार वायु तो परमात्मा जानो और गंध को आत्मा समझो। जैसे सुगंध अच्छी आत्मा तथा दुर्गंध दुष्ट आत्मा जानो। फिर भी परमात्मा उन्हें कर्मों के अनुसार नए शरीरों में ले जाता है और फिर भी साथ होता है। जैसे सूर्य प्रत्येक प्राणी को अपने साथ ही नजर आता है। दूर रहते हुए भी सूर्य के निराकार प्रभाव उष्णता से प्रत्येक प्राणी प्रभावित रहता है। इसी प्रकार परमेश्वर सत्यलोक में विराजमान होकर सर्व प्राणियों को ऐसे व्यवस्थित रखता है। ठीक इसी प्रकार यह अध्याय 2 के श्लोक 17 से 21, 22-23 व 24-25 का भिन्न-2 भाव से अर्थ समझना है।

अध्याय 2 श्लोक 22-23 में जीवात्मा की स्थिति बताई है।

अध्याय 2 के श्लोक 22 का अनुवाद : जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है। वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।

अध्याय 2 के श्लोक 23 का अनुवाद : इस जीवात्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सूखा सकती। ईश्वरीय गुणों (शक्ति) से युक्त होते हुए भी आत्मा का अस्तित्व भिन्न है।

24-25 में फिर उस सर्वव्यापक परमात्मा की महिमा कही है।

अध्याय 2 के श्लोक 24 का अनुवाद : यह अच्छेद्य है यह परमात्मा अदाह्य अवलेद्य और निःसंदेह अशोष्य है तथा यह परमात्मा नित्य सर्वव्यापी अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है।

अध्याय 2 के श्लोक 25 का अनुवाद : यह परमात्मा गुप्त है परन्तु तेजोमय सूक्ष्म शरीर सहित है यह अचिन्त्य है और यह विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस परमात्मा को जो आत्मा के साथ अभेद रूप से रहता है, जिससे आत्मा विनाश रहित है। इस प्रकारसे जानकर तू शोक करनेके योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है। गीता अध्याय 7 श्लोक 25 में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म कह रहा है कि मैं अपनी योग माया से छुपा रहता हूँ। सब के सामने प्रकट नहीं होता मुझ अव्यक्त (छुपे हुए) को यह अज्ञानी प्राणी कृष्ण रूप में व्यक्ति आया मानते हैं। गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि उस अव्यक्त से भी परे जो आदि व्यक्त पूर्ण परमात्मा है वह सर्व प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

श्लोक 17 से 25 तक का भाव है कि अर्जुन सर्व प्राणी (मैं तथा तू) जन्म-मरण में हैं परंतु अविनाशी तो उसे जान जिससे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है इस अविनाशी (पूर्ण ब्रह्म) का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है। वह परमात्मा इस जीवात्मा के साथ ऐसे रहता है जैसे वायु में गंध है। वायु गंध का मालिक है। अच्छी आत्मा (सुगंध) तथा दुष्ट आत्मा (दुर्गन्ध) होती है। परंतु शुद्ध वायु निर्लेप है और दोनों का अभेद सम्बन्ध है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा के गुणों वाली ही है। फिर भी कर्म-भोग भोगती है। जैसे व्यक्ति पुराने वस्त्र त्याग कर नए वस्त्र पहन लेता है, इसी प्रकार जीवात्मा कर्मानुसार स्वर्ग-नरक, चौरासी लाख जूनियों में सुख व कष्ट पाती है परंतु परमात्मा को कष्ट नहीं है। जीवात्मा दुःखी व सुखी अवश्य होती है। यहां पर यह बात याद रखना जरूरी है कि गीता जी के अध्याय 13 के श्लोक 22-23 में तथा गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 8 में प्रमाण है कि पूर्ण परमात्मा का अंश जीवात्मा है। इसी के साथ सतपुरुष का अभेद सम्बन्ध है। जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार फल भोगती है। दुःख-सुख को महसूस करती है परंतु परमात्मा (सतपुरुष)

इससे परे है, निर्लेप है। इसलिए प्रिय पाठको यह भेद समझना जरूरी है। अमर-अछेद्य तो जीवात्मा भी है परंतु कर्मों के वश है तथा परमात्मा लिप्त नहीं है। यह गहरा भेद समझ कर गीता जी के निर्मल ज्ञान का पूर्ण लाभ उठा पाओगे। अध्याय 2 के श्लोक 26 से 30 में कहा है कि जीव आत्मा शरीर न रहने पर भी नहीं मरती है। चूंकि परमात्मा इसके साथ अदृश्य रूप से रहता है। जिस प्रकार पुराने कपड़े उतार कर नए पहन ले ऐसे ही यह शरीर समझ। जीव आत्मा को न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न जल में डूबोया जा सकता है, न वायु सुखा सकती है, यह अमर है। यह परमात्मा जो जीवात्मा के साथ उपद्रष्टा रूप में रहता है जो निर्विकार है। यदि जीवात्मा को नित्य मरने-जन्मने वाली भी मानें तो भी दुःखी नहीं होना चाहिए। चूंकि पुराने वस्त्र त्याग कर नए पहन लिए इसलिए शोक मत कर। जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा तथा जो मरेगा उसका जन्म अवश्य है। भगवान कह रहा है तू तथा मैं तथा ये सर्व प्राणी पहले भी थे तथा आगे भी होंगे। फिर क्यों चिंता करें?

।। नकली संत की कथा ।।

हरियाणा प्रांत के जीन्द जिले में एक पिण्डारा नामक तीर्थ है। वहां पर दो आश्रम हैं। एक समय वहां पर कोई पांच दिवसीय वार्षिक सतसंग उत्सव मनाया जा रहा था। उसमें यह दास भी श्रोता रूप में उपस्थित था। वहां पर 10-12 प्रवक्ता एक लम्बी स्टेज पर बैठे तथा प्रवचन शुरु हुए। सभी ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए। एक महात्मा जिसकी जानकारी स्टेज सैक्ट्री ने दी थी कि यह महापुरुष पहुँचे हुए विद्वान आत्मतत्व में प्रवेश हैं व गीता के मर्मज्ञ ज्ञाता हैं। उस महात्मा जी ने अपने वचन सुनाए। यह आत्मा अजर-अमर है। यह न मरती है और न जन्मती है और न ही सुख-दुःख का भोक्ता है। आत्मा को कोई कष्ट नहीं होता। यह अज्ञानी जन समूह अज्ञान वश दुःखी-सुखी होते हैं। जो भी कष्ट है वह शरीर को उसके कर्म का दण्ड होता है। मानो कोई हानि है तो तेरा क्या गया? इसलिए शोक क्या? तू क्या लेकर आया था जो तेरा नुकसान मानता है? लाभ होता है तो मेरा है ही नहीं। सुख-दुःख व लाभ-हानि को त्याग कर कर्म करो और कोई शारीरिक कष्ट है तो समझो शरीर ही दुःखी है। आपको क्या है? बस फिर आत्म तत्व में पहुँच गए। मुक्ति निश्चित है।

सर्व उपस्थित संगत उसकी विद्वता तथा ज्ञान के वचनों पर सबसे ज्यादा प्रभावित हो गई। उसने तीन दिन तक रात्री व दिन के सतसंग ऐसे ही किये। उसने बताया कि मैंने देखा एक व्यक्ति रो रहा है। कारण पूछा तो बताया कि मेरे पैर में असहनीय पीड़ा हो रही है इसलिए रो रहा हूँ। वह संत कहता है कि मैंने उस मूर्ख को कहा- क्यों चिल्लाता है, अज्ञानी? यह कष्ट तो शरीर को है। तुझे क्या है? बस यह विचार कर। वह दुःखी व्यक्ति चुप हो गया। फिर नहीं रोया। दुःख का अंत हुआ। इसी प्रकार अज्ञान वश यह नादान प्राणी कष्ट पाता है। यही ज्ञान भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को श्री गीता जी के माध्यम से दिया है।

चौथे दिन रात्री में भी उस महात्मा जी ने ऐसे ही ज्ञान योग से मुक्ति का मार्ग बताया। सतसंग रात्री का था जो रात्री के 1 बजे समाप्त हो गया। रात्री के दो बजे उसी महात्मा के पेट में दर्द हो गया। बुरी तरह रोने लगा - मर गया-मर गया की आवाज सुन कर काफी भक्त वृन्द वहां एकत्रित हुए। सलाह बनी की जल्दी ही जीन्द हॉस्पिटल में ले चलो। दर्द जान लेवा लग रहा है। दूसरे आश्रम से कार मंगवाई। तुरंत हॉस्पिटल में ले गए जो तीन कि.मी. पर ही था। सुबह 6 बजे वापिस आया। आराम हो गया। उसके पास अन्य महात्मा जो उनके सामने ज्ञान में फीके पड़ गए थे उस

ज्ञानी पुरुष से कहने लगे संत जी आप कह रहे थे कि दुःख तो शरीर को होता है आत्मा को नहीं। फिर आप क्यों रो रहे थे? इस पर वह अज्ञानी महात्मा क्रोध वश बोला “ज्यादा मत बोलो, अपना काम करो।”

यहां गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि --

गरीब, बीजक की बांता करै, बीजक नहीं हाथ। पृथ्वी डोबन उतरे, कह-2 मीठी बात।। गरीब, बीजक की बातां कहै, बीजक नहीं पास। औरों को प्रमोद ही, आपन चले निरास।। कबीर, करनी तज कथनी कथें, अज्ञानी दिनरात। कुकर ज्यों भोंकत फिरें, सुनिसुनाई बात।।

केवल कहने मात्र से बात नहीं बनती। परमात्मा प्राप्ति की तथा मुक्ति पाने के लिए शास्त्रानुकूल साधना करनी होती है, तब बात बनेगी, केवल ज्ञान कथने से नहीं। अध्याय 2 के श्लोक 31 से 37 में कहा है कि क्षत्री का धर्म नहीं है कि युद्ध में कायरता दिखाए और फिर युद्ध में मर भी गया तो स्वर्ग का दरवाजा खुला है। जीत गया तो राज्य का सुख। अर्जुन! तेरे तो दोनों हाथों में लड्डू हैं। क्षत्री की अपकिर्ती मरने से भी दुस्तर होती है। इसलिए अर्जुन मान जा मेरी बात, युद्ध करले। अध्याय 2 के श्लोक 38 में कहा है कि हार-जीत, दुःख-सुख, लाभ-हानि को समान समझ कर युद्ध कर तुझे पाप नहीं लगेंगे। कृपया पाठक विचार करें- बिना लाभ-हानि के युद्ध हो सकता है? क्या आवश्यकता पड़ी छाती में तीर खाने की? फिर स्वयं भगवान लाभ-हानि का लालच भी लगा रहे हैं (अध्याय 2 के श्लोक 37 में कहा है कि या तो तू युद्ध में मारा जा कर स्वर्ग प्राप्त करेगा या जीत कर पृथ्वी का राज करेगा। गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 32 में कहा है कि अपने आप खुले हुए स्वर्ग के द्वार को भाग्यशाली क्षत्री ही प्राप्त करते हैं कि युद्ध में मर कर स्वर्ग प्राप्ति तो निश्चित है।) अध्याय 2 के श्लोक 45 का अनुवाद - हे अर्जुन! तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) के द्वारा दिए जाने वाले लाभ के ज्ञान से तीनों गुणों से ऊपर उठ कर हर्ष शोक आदि द्वन्द्वों से रहित स्थाई वस्तु पूर्ण परमात्मा में स्थित योग क्षेम को न चाहने वाला आत्म तत्त्व को जानने वाला हो। अध्याय 2 के श्लोक 39 से 45 तक का अर्थ है समबुद्धि होकर कर्मबन्धन से मुक्त हो जा, ऐसे डगमग बुद्धि वाले कामयाब नहीं होते, राग-द्वेष मत रख तथा तीनों गुणों (ब्रह्मा-रजगुण, विष्णु-सतगुण, शिव-तमगुण की भक्ति) से भी रहित हो जा। योग क्षेम से भी रहित हो जा तथा पूर्ण परमात्मा के परायण (आश्रित) हो जा। नोट :- कृपया गुणों को समझने के लिए पढ़ें इस पुस्तक के पृष्ठ 23 पर।

“पूर्ण परमात्मा की साधना का वर्णन”

अध्याय 2 के श्लोक 46 का अनुवाद - जिस प्रकार सब ओर से (पूर्ण रूप से) परिपूर्ण (बहुत बड़े पानी से भरे) जलाशय (तालाब) को प्राप्त हो जाने पर छोटे से तलईया (जलाशय) के प्रति जो आस्था रह जाती है इसी प्रकार तत्त्व ज्ञान को प्राप्त तत्त्वदर्शी सन्त की आस्था अन्य ज्ञानों में रह जाती है। तत्त्वज्ञान के आधार से तत्त्वदृष्टा सन्त को (जिसे सतपुरुष पूर्ण परमात्मा की जानकारी हो जाए) अन्य भगवानों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा क्षर ब्रह्म - परब्रह्म व देवी-देवताओं) में आस्था कम रह जाती है अर्थात् फिर वह विद्वान पूर्ण परमात्मा के आश्रित हो जाता है। तीन लोक की साधना त्याग कर सतलोक की साधना करता है। पूर्व समय में सिंचाई तथा पीने के पानी की प्राप्ति का श्रोत जलाशय ही होता था। जो परिवार किसी छोटे तालाब पर निर्वाह कर रहा हो जिसका जल ग्रीष्म ऋतु में सूख जाता हो, फिर वर्षा होने पर भरता हो। यदि वर्षा न हो तो जल अभाव से संकट निश्चित होता है। उस परिवार को बहुत बड़ा जलाशय (झील) प्राप्त हो जाए जिसका जल दस वर्ष

वर्षा न होने से भी समाप्त न हो। फिर उस परिवार की आस्था पहले वाले छोटे जलाशय में जैसी रह जाती है, वह छोटा जलाशय बुरा नहीं लगता परंतु उसकी क्षमता का ज्ञान है कि यह तो अस्थाई लाभ है तथा बड़ा जलाशय (झील) स्थाई लाभदायक है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा सतपुरुष (कविर्देव) के लाभ को दिलाने वाला तत्त्वदर्शी संत मिलने के पश्चात् साधक की आस्था अन्य प्रभुओं में जैसे उपरोक्त छोटे जलाशय में रह जाती है, ऐसे रह जाती है। अन्य प्रभु बुरे भी नहीं लगते, परंतु उनकी क्षमता (शक्ति) का ज्ञान हो जाने से पूर्ण परमात्मा में स्वतः श्रद्धा अधिक बन जाती है। फिर साधक पूर्ण परमात्मा से ही लाभ प्राप्ति का प्रयत्न करता है, अन्य प्रभुओं की प्राप्ति नहीं करता। इसीलिए गीता ज्ञान दाता प्रभु ने श्रीमद्भगवत् गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि हे अर्जुन तू सर्व भाव से उस परमात्मा की शरण में जा जिस की कृप्या से तू परम शान्ति तथा शाश्वत् स्थान अर्थात् सत्यलोक (अविनाश लोक) को प्राप्त होगा। अध्याय 2 के श्लोक 47 में कहा है कि कर्म कर फल की इच्छा मत कर। गीता अध्याय 2 श्लोक 48 से 50 तक का भाव है कि शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म एक प्रभु का ही करना श्रेयकर है। आपको सिद्धि प्राप्त हो या न हो, इस बात को भूल जा, प्रभु जो करता है वह अच्छा ही होता है, यह ध्यान में रखकर साधना करता रह। सर्व पहले वाले भक्ति कर्म त्याग दे, चाहे वे तुझे अच्छे भी लगते हैं तथा अन्य दुष्कर्म जैसे मास-मदिरा, तम्बाखु, चोरी-ठगी, दुराचार आदि भी त्याग कर तत्त्वदर्शी संत द्वारा बताए भक्ति मार्ग के प्रत्येक नियम का पालन करते हुए साधना करना ही बुद्धिमता है। सुकृत अर्थात् अच्छे कर्म जो चाहे साधक के दृष्टिकोण से अच्छे भी लगते हों उन्हें गुरु आदेश से त्याग देने से ही लाभ है (जैसे किसी को बुलाकर पाठ आदि करवाना, भिखारी को पैसे देना, वह भिखारी उन पैसे की शराब सेवन कर लेता है तो आपको ही दोष लगेगा।) एक भिखारी को एक धार्मिक व्यक्ति ने सौ रूपये अच्छे कर्म (पुण्य) जान कर दे दिए। उस भिखारी ने मदिरा सेवन किया तथा अपनी पत्नी को पीट डाला। उसकी पत्नी बच्चों सहित कुएँ में गिरकर मृत्यु को प्राप्त हुई। ऐसा अपनी सूझ-बूझ का अच्छा कर्म अर्थात् पुण्य भी नहीं करना चाहिए। केवल गुरु आदेश का पालन करना ही सत्य भक्ति में हितकर है। यही प्रमाण गीता अध्याय 16 मन्त्र 23-24 में है।

अनामी (अनामय) लोक का प्रमाण अध्याय 2 के श्लोक 51 में।

अध्याय 2 के श्लोक 51 में स्पष्ट है कि जो भजन अभ्यास शास्त्रानुकूल अर्थात् मतानुसार (मतपरायण हो कर) करता है वह सतलोक में जाकर फिर वहाँ से आगे अनामी (अनायम् पदम् गच्छन्ति) लोक को चला जाता है अर्थात् अनामी परमात्मा को प्राप्त हो जाता है अर्थात् जन्म-मरण का रोग समाप्त हो जाता है। अनामी पुरुष का प्रमाण कृप्या देखें इसी पुस्तक के पृष्ठ नं. 154 पर शब्द 'कर नैनों दीदार महल में प्यारा है' की 29 नं. कड़ी -

तापर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई।

जो पहुँचेंगे जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है।।29।।

जैसे मृतलोक (पृथ्वी) का साधक चार पदों (मुक्ति) की प्राप्ति कर सकता है।

1 देवी-देवताओं, पितरों, भूतों की साधना से इन्हीं को प्राप्त होता है। परंतु यह सबसे घटिया साधना पद (मुक्ति) प्राप्ति है। अध्याय 9 के श्लोक 25 के अनुसार। अध्याय 9 के श्लोक 25 का अनुवाद : देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं पितरोंको पूजनेवाले पितरोंको प्राप्त होते हैं, भूतोंको पूजनेवाले भूतोंको प्राप्त होते हैं और मतानुसार अर्थात् शास्त्र अनुसार पूजन करनेवाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।

2 दूसरी गति या पद (मुक्ति) प्राप्ति तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) की पूजा है। यह पद (मुक्ति) प्राप्ति पूर्ण नहीं है अर्थात् घटिया है। अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा अध्याय 14 के श्लोक 5 से 9 तक।

कृप्या तीनों गुण क्या हैं? पढ़ें इसी पुस्तक के पृष्ठ 23 पर

अध्याय 14 के श्लोक 5 का अनुवाद : हे अर्जुन! सत्वगुण, रजोगुण, तमगुण ये प्रकृतिसे उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्माको शरीरमें बाँधते हैं।

अध्याय 14 के श्लोक 6 का अनुवाद : हे निष्पाप! उन तीनों गुणोंमें सत्वगुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करनेवाला और नकली अनामी है वह सुख के सम्बन्ध से और ज्ञानके सम्बन्ध से अर्थात् उसके अभिमान से बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 7 का अनुवाद : हे अर्जुन! रागरूप रजोगुणको कामना और आसक्तिसे उत्पन्न जान वह इस जीवात्माको कर्मोंके और उनके फलके सम्बन्ध से बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 8 का अनुवाद : हे अर्जुन! सब शरीरधारियों को मोहित करनेवाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद आलस्य और निद्राके द्वारा बाँधता है।

अध्याय 14 के श्लोक 9 का अनुवाद : हे अर्जुन! सतगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में तथा तमोगुण तो ज्ञान को ढककर प्रमाद में भी लगाता है।

3 तीसरी गति अर्थात् पद (मुक्ति) प्राप्ति ब्रह्म साधना जो वेदों व गीता जी के अनुसार करनी चाहिए। सर्व देवी-देवताओं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अर्थात् तीनों गुणों की साधना त्याग कर एक ऊँ (ओंकार) नाम का जाप गुरु धारण करके करते हुए ब्रह्म लोक (महास्वर्ग) में साधक चला जाता है जो हजारों गुणों तक वहाँ ब्रह्म लोक में आनन्द मनाता है। फिर पुण्यों के समाप्त होने पर मृतलोक में चौरासी लाख जूनियों में चक्र लगाता रहता है। यह भी गति-पद (मुक्ति) अच्छी नहीं है। इससे भी जीव पूर्ण रूप से सुखी नहीं। पूर्ण शांति को प्राप्त नहीं अर्थात् पूर्ण मुक्त नहीं है। परंतु इस ब्रह्म (काल) साधना से प्राणी अन्य पूजाओं से सौ गुणा सुखी है परंतु फिर भी काल (ब्रह्म-क्षर पुरुष) के जाल से मुक्त नहीं है। यह मुक्ति अच्छी नहीं अपितु व्यर्थ है। गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में स्वयं काल कह रहा है कि ये सर्व ज्ञानी आत्मा हैं तो उद्धार, परंतु ये भी मेरी (अनुत्तमाम्) अति घटिया (गतिम्) मुक्ति में ही आश्रित हुए प्रसन्न हैं।

4 चौथी मुक्ति (गति-पद) :- है परब्रह्म (अक्षर पुरुष) की भक्ति से चौथी गति (पद) को प्राप्त होता है। लेकिन परब्रह्म की साधना का ज्ञान वेदों व गीता जी में नहीं है। इनमें केवल ब्रह्म (क्षर पुरुष) तक की भक्ति तथा इसी की प्राप्ति का ज्ञान है। जैसे ऊँ मन्त्र का जाप केवल ब्रह्म साधना है। इसलिए जो साधक परब्रह्म की भक्ति निर्गुण मान कर करते हैं वे भी काल के जाल में ब्रह्म लोक में ही चले जाते हैं। क्योंकि निर्गुण उपासक ऋषि जन मान लेते हैं कि हम परब्रह्म साधना कर रहे हैं, परंतु काल (ब्रह्म) तक का ही लाभ प्राप्त करते हैं। काल प्रभु ने महास्वर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोकों की व्यवस्था कर रखी है। ब्रह्मलोक की प्राप्ति तीन लोक में सबसे उत्तम मानते हैं।

5 पाँचवीं मुक्ति :- पूर्ण परमात्मा का ज्ञान होने पर उसी परमात्मा प्राप्ति की साधना करते हैं। इसी प्रकार यह आत्मा तत्वदर्शी संत से उपदेश मंत्र प्राप्त करके सत्य भक्ति की कमाई करके उसके आधार से सतलोक चली जाती है। यह वह स्थान है जहाँ प्राणी हंस रूप में आकार में रहता है। तेज पुंज का शरीर हो जाता है। इतना नूरी शरीर बन जाता है मानो 16 सूर्यो जितनी रोशनी हो। यहाँ पर गए प्राणी (आत्मा) कभी नहीं मरते-जन्मते।

सतलोक वह स्थान है जिसमें हंस आत्मा आकार में मौज करती है। यदि पूर्ण परमात्मा में लीन होना है या इससे भी अच्छे लोक में जाना है उसकी साधना वहाँ (सतलोक में) करनी होती है जिससे यह हंस आत्मा आगे के स्थानों (लोकों) को प्राप्त करेगी। सतलोक से आगे अलख लोक है, अलख लोक में अलख पुरुष का राज्य है, अलख लोक से आगे अगम लोक है, अगम लोक में अगम पुरुष का राज्य है। अगम लोक से आगे अकह लोक अर्थात् अनामी लोक है। इसमें अनामी परमात्मा (पुरुष) का राज्य है। ऊपर के तीनों लोकों में एक ही परमात्मा (पूर्णब्रह्म कविर्देव) है वह तीन स्थितियों में रहता है। जैसे भारत के प्रधान मंत्री जी के शरीर का नाम कुछ और होता है, परंतु प्रधान मंत्री उनका पद का उपमात्मक नाम होता है। कई बार प्रधान मंत्री जी अपने पास अन्य विभाग रख लेता है। जैसे गृह विभाग अपने पास रख लिया। जब गृह मंत्रालय के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करता है तो अपने को गृह मंत्री लिखता है, उस समय उनकी शक्ति प्रधान मंत्री वाले हस्ताक्षरों से कहीं कम होती है। ठीक इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्म सतपुरुष का वास्तविक नाम कविर्देव भाषा भिन्न होने से कबीर, कबीरन्, खबीरा, हक्का कबीर, सत कबीर वास्तविक नाम है तथा उपमात्मक नाम से वह परमात्मा अलख लोक में अलख पुरुष बन कर, अगम लोक में अगम पुरुष बन कर, अकह लोक में अनामी (अनामय) बन कर रहता है जो आत्मा सतलोक में जा कर अनामी पुरुष की साधना करती है वह आत्मा भक्ति के कारण उस परमात्मा (अनामी-अनामय) की परम गति को प्राप्त हो कर भगवान में लीन हो जाती है। अध्याय 2 के श्लोक 51 में - 'अनामयम् पदम् गच्छन्ति' अर्थात् पूर्ण रूप से जन्म-मरण रूपी दीर्घ रोग से रहित हो कर अनामी (अनामय) पद (मुक्ति) स्थिति को प्राप्त हो जाता है इसको अनामय पद प्राप्ति कहा है। यहाँ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में क्षर पुरुष (काल) ने सतलोक की नकल करके नकली लोक बना रखे हैं। ज्योति निरंजन (ब्रह्म) ने प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक ब्रह्मलोक की रचना करवा रखी है। इसी ब्रह्मलोक में तीन गुप्त स्थानों की भी रचना करवा रखी है। एक सतोगुण प्रधान, दूसरा रजोगुण प्रधान, तीसरा तमोगुण प्रधान। इसी ब्रह्मलोक में एक महास्वर्ग की रचना करवा रखी है। उसी महास्वर्ग में नकली सतलोक, नकली अलख लोक, नकली अगम लोक व नकली अनामी लोक की रचना भी प्रकृति दुर्गा से करवा रखी है। फिर इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में भी नकली चारों लोकों की रचना करवा रखी है। यह प्राणियों को धोखे में रख कर वास्तविकता का पता नहीं लगने देता है। स्वयं कविर्देव (कबीर परमेश्वर) आकर अपनी सर्व जानकारी देते हैं।

प्रश्न :- चार मुक्तियों के विषय में तो शास्त्रों में लिखा है कि 4 है।

(1) सालोक्य=ईश्वर के लोक में निवास करना (2) सारूप्य = जैसा उपासनीय देव की आकृति वैसा बन जाना (3) सामिप्य=सेवक के समान उपासनीय देव के पास रहना (4) सायुज्य=उपास्य देव के साथ संयुक्त हो जाना। आप ने चार मुक्ति भिन्न बताई हैं तथा पाँचवी मुक्ति भी बताई है। जिस के विषय में कभी नहीं सुना व कहीं नहीं पढा।

उत्तर :- जो चार गति बताई है वे उपास्य देव की साधना बताई हैं। प्रत्येक प्रभु या देवताओं की साधना से ये चारों उपरोक्त मुक्तियों में से एक साधक को प्राप्त होती है तथा पाँचवी मुक्ति का ज्ञान स्वसम वेद में है।

-: शब्द :-

सतलोक में चल मेरी सुरतां, मत न लावै देरी।

साच कहूँ न झूठ रति भर, तू बात मान ले मेरी।।टेक।।

प्रथम जाना सतसंग के में चर्चा सुनिए आत्म ज्ञान की, सुनकै सतसंग जागी नहीं तो पूछ श्वान की।
 तीर्थ व्रत ये पित्र पूजा कोन्या किसे काम की, लै कै नाम गुरु से भक्ति करिए कबीर भगवान की ॥
 मत सुनना मन सैतान की, ये चौकस घालै घेरी ॥1॥
 काल लोक में कष्ट उठावै यह कोन्या तेरा ठिकाना, मात पिता संतान सम्पति का झूठा तन री ताना।
 जाप अजपा मिल जावै जब सुमरण में मन लाना, सार शब्द तेरे काटे बंधन आकाशै उड जाना ॥
 त्रिकुटी में आना हे सुरतां, मतना भटकै बेरी ॥2॥
 त्रिकुटी में पहुँच कै सुरतां चारों ओर लखावै, शब्द गुरु फिर प्रकट होवै उसते ब्याह करवावै।
 नूरी रूप गुरु का होकै तैरे आगे-आगे जावै, सतलोक में सेज बिछी तेरे चौकस लाड लडावै ॥
 जन्म मरन मिट जावै हे सुरतां, हो आनन्द काया तेरी ॥3॥
 सतलोक में जा कै हे सुरतां संकट कट जां सारे, अलख लोक और अगम लोक के दिखै सभी नजारे।
 लोक अनामी जावैगी वहां कोन्या मिलै चौबारे, आत्मा और परमात्मा वहां कोन्या रहते न्यारे ॥
 रामपाल प्रीतम प्यारे की आत्मा, अब पूर्ण आनन्द लेरी ॥4॥

अध्याय 2 के श्लोक 46 से 53 में कहा है कि वास्तव में पाप-पुण्य को भूल कर अर्थात् पाप-पुण्य का फल इसी लोक में त्याग कर पूर्ण परमात्मा की साधना में लग जा। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कि मेरे लोक में की हुई मेरी सर्व धार्मिक पूजा को मेरे में त्याग कर उस एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरण में जा फिर मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा। कर्मों में योग (भक्ति) करना कुशलता है। इसलिए योग (पूर्ण परमात्मा की भक्ति) में लगजा। समझदार साधक कर्मों से होने वाले फल को भी त्याग कर जन्म रूपी बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। जब तू मोह रहित हो जाएगा, उसी वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा। जब तेरी बुद्धि नाना प्रकार के मत भेदी शास्त्रों के ज्ञान से विचलित न रह कर एक तत्त्वज्ञान पर आधारित हो जाएगी, फिर तू योगी (भक्त) बनेगा जैसे छोटे तालाब (तलईया) के प्रति मनुष्य का मन अपने आप हट जाता है जब उसे बड़े तालाब (जलाशय) की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हो जाने के बाद छोटे भगवानों ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी-देवताओं, माता तथा काल (ब्रह्म) तथा परब्रह्म आदि से मन हट कर पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके उसके अनामी (अनामय) परम पद को अर्थात् सतलोक से भी आगे अनामी लोक में चला जाता है। जन्म-मरण से पूर्ण रूप से छूट जाता है। इसलिए तू पूर्ण परमात्मा का भक्त (योगी) हो जा। तब तू योगी अर्थात् सही भक्त होगा।

अध्याय 2 के श्लोक 54 में अर्जुन पूछता है कि पूर्ण रूप से एक पूर्ण परमात्मा में आश्रित अर्थात् पूर्ण परमात्मा में स्थिर बुद्धि रखने वाले भक्त के क्या लक्षण होते हैं? उसका बोलना-चलना बैठना आदि कैसा होता है?

गरीबदास जी महाराज इसी का उत्तर भी यह बताते हैं कि -

गरीब, राजिक रमता राम की, रजा धरे जो शीश। दासगरीब दर्श पर्श, तिस भेंटै जगदीश ॥

अध्याय 2 के श्लोक 55 से 68 में कहा है कि जब भक्त (योगी) इच्छाओं से रहित हो कर भाग्य पर संतुष्ट हैं, उस समय वह स्थिर बुद्धि वाला है। दुःख-सुख को बराबर समझता है व राग-द्वेष से रहित होता है। जिसने इन्द्रियों का दमन कर लिया है, बुरे विचारों से इच्छाएँ (कामना) उत्पन्न होती हैं। फिर क्रोध से समोह, समोह से मूर्खता, फिर ज्ञान नष्ट हो जाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है इसके बाद पतन निश्चित है। जो तत्त्वज्ञानी योग युक्त है वह शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म करता हुआ भी इन्द्रियों के वश नहीं होता। जल्दी ही स्थिर बुद्धि हो जाती है और उसके सर्व दुःखों का अंत हो जाता है। जब तक प्राणी निःइच्छा नहीं होता तब तक सुख कैसा? इन्द्रियाँ मन को ऐसे विवश कर

लेती हैं जैसे पानी में नौका वायु के वश हो जाती है अर्थात् जिसकी इन्द्रियों वश हैं उनकी बुद्धि स्थिर जान।

॥ वेदों में वर्णित साधना विधि से विकार नहीं मरते ॥

एक समय एक चुणक नामक ऋषि वेदों तथा गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 55 से 68 तक वर्णित साधना विधि के (मतानुसार) अनुसार अपने मन व इन्द्रियों को काबू करके कई हजार वर्षों तक साधना करता रहा। उस समय वे महायोगी माने जाते थे। बहुत मृदुभाषी, दुःख-सुख में एक रस रहने वाले तथा केवल एक लंगोटी (कोपीन) व एक झोंपड़ी (कुटिया) में रहा करते थे। जो मिल जाता उसी में संतुष्ट रहते थे। पूर्ण सिद्धि युक्त महापुरुष माने जाते थे।

एक मानधाता चकवै (चक्रवर्ती) राजा था। (चक्रवर्ती राजा उसे कहते हैं जिसका पूर्ण पृथ्वी पर राज्य हो)। मानधाता के मन में आई कि देखना चाहिए कि कोई व्यक्ति मेरे सामने सिर उठाने वाला तो पैदा नहीं हो गया है। इसके लिए राजा ने एक घोड़ा छोड़ा, जिसके गले में एक लकड़ी का बोर्ड (फट्टी) लटकाया जिस पर यह लिख दिया कि यह घोड़ा राजा मानधाता चकवै (चक्रवर्ती) का है। जिस किसी राजा को महाराजा मानधाता की आधीनता स्वीकार नहीं है वह इस घोड़े को पकड़ कर बाँध ले उसको राजा के साथ युद्ध करना पड़ेगा। साथ में सैकड़ों सैनिक भी अन्य घोड़ों पर सवार हो कर उस घोड़े के साथ-2 चल दिए। घोड़ा सारी पृथ्वी पर घूमकर वापिस आ रहा था किसी ने उस घोड़े को पकड़ने का साहस नहीं किया। चूंकि राजा मानधाता के पास 72 क्षौहिणी (बहतर करोड़) सेना थी। जब वे सैनिक तथा वही घोड़ा परम ऋषि चुणक के पास से निकलने लगे तो ऋषि ने सैनिकों से पूछा कि - कौन हो? कहाँ से आए हो और कहाँ जा रहे हो? यह खाली घोड़ा किस लिए है। इस पर कोई सवार क्यों नहीं? कृप्या बतलाईए। अभिमानी राजा के अभिमानी सैनिकों ने कहा तेरे मतलब की बात नहीं है। ऋषि जी बोले - राह-रस्ते व आने-जाने वालों से पूछ ही लिया करते हैं। बताईए क्या माजरा है? सैनिक कहने लगे यह राजा मानधाता चक्रवर्ती (चकवै) का घोड़ा है। इसको जो कोई पकड़ लेगा उसे राजा से युद्ध करना होगा। ऋषि ने पूछा क्या किसी ने नहीं पकड़ा? कुछ सैनिकों ने कहा कि सारी पृथ्वी पर किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ी इसे पकड़ने की। कुछ दूसरों ने कहा कि कोई कैसे पकड़ेगा? राजा के पास 72 करोड़ सेना है। चुणक ऋषि ने कहा कि यदि किसी ने भी नहीं बाँधा तो मैं बाँध लेता हूँ। यह कहते ही सैनिकों ने वह घोड़ा उसी वृक्ष से बाँध दिया जिसके नीचे ऋषि की कुटिया थी और कहा कि रे कंगाल, तेरे पास खाने के लिए तो अन्न (दाने) भी नहीं है और युद्ध करेगा राजा मानधाता चकवै से? क्यों तेरी सामत आई है। ऋषि बोला मेरे भाग्य में ऐसा ही है। जाओ कह दो अपने राजा से कि ऋषि युद्ध के लिए तैयार है। जब सैनिकों ने राजा से बताया कि आपका घोड़ा चुणक नाम के ऋषि ने बाँध लिया है और युद्ध के लिए तैयार है। राजा ने एक व्यक्ति को मारने के लिए 18 क्षौहिणी (करोड़) सेना भेजी। ऐसे अपनी सेना की 18-18 क्षौहिणी की चार टुकड़ियाँ बनाई। उधर चुणक ऋषि ने अपनी ब्रह्म (काल) साधना से प्राप्त सिद्धि से चार पुतलियाँ बनाई। ऋषि ने एक पुतली राजा की सेना पर छोड़ी जिसने 18 क्षौहिणी (करोड़) सेना को समाप्त कर दिया। ऐसे चारों पुतलियों ने 72 क्षौहिणी सेना का सर्व नाश कर दिया।

पूर्ण ब्रह्म की साधना के अतिरिक्त परब्रह्म, ब्रह्म, अन्य श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी व अन्य देवी देवताओं की पूजा से जैसा कर्म किया है वैसा ही फल मिलता है, पुण्य भोग स्वर्ग में तथा पाप भोग नरक तथा चौरासी लाख प्राणियों के शरीर में भी यातना सहनी पड़ती है।

महर्षि चुणक जी ब्रह्म (काल) उपासक थे तथा वेदों में वर्णित साधना विधि अनुसार साधना की। जिस कारण से पुण्यों का भोग महास्वर्ग (जो ब्रह्म लोक में बना है) में भोग कर पाप कर्मों का फल नरक तथा फिर पशु आदि के शरीर में भोगना पड़ेगा। जब यह चुणक ऋषि कुत्ता आदि बनेगा तो इसके सिर में जख्म होगा तथा कीड़े चलेंगे। जितने सैनिकों का वध वचन रूपी तीर से किया था वह अपना प्रतिशोध लेंगे। इसी लिए पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में स्वयं गीता जी को बोलने वाला ब्रह्म (काल) कह रहा है कि ये ज्ञानी आत्मा जिनको वेद पढ़कर यह ज्ञान तो हो गया कि एक प्रभु की भक्ति से पूर्ण मोक्ष होगा परंतु तत्त्वदर्शी संत न मिलने से स्वयं निकाले निष्कर्ष के आधार पर कि ओ३म् नाम का जाप तथा पाँचों यज्ञ ही पूर्ण ब्रह्म की साधना मान ली। परंतु यह साधना केवल ब्रह्म (काल) तक की है। पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म) की साधना तो तत्त्वदर्शी संत ही बताएगा (गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13 में)। इसलिए वे उद्धार ज्ञानी आत्मा मेरी (ब्रह्म-काल कह रहा है) अति अश्रेष्ठ (अनुत्तमाम्) गति (मुक्ति) में ही आश्रित रही।

विशेष :- अब पाठक वृन्द स्वयं विचार करें कि इतने अच्छे साधक दिखाई देने वाले ऋषि को क्या उपलब्धि हुई?

क्योंकि वेदों व गीता जी में ज्ञान तो श्रेष्ठ है कि जो साधक काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, राग-द्वेष रहित हो जाता है वही पूर्ण मुक्त है। परंतु भक्ति की साधना केवल काल (ब्रह्म) प्राप्ति की है जिससे विकार रहित नहीं हो सकता। उस परमात्मा को प्राप्त होने योग्य "मन्त्र के जाप से हो सकता है। वह किसी शास्त्र में नहीं है। वह मन्त्र केवल साहेब कबीर का पूर्ण संत ही बता सकता है। लाभ भी उसी संत से नाम लेने से होगा जिसे उपदेश देने का आदेश प्राप्त हो। फिर सारा जीवन गुरु मर्यादा में रह कर भक्ति करता हुआ सार नाम की प्राप्ति गुरु जी से करें। तब साधक सतलोक जा सकता है तथा विषयों (विकारों) को त्याग सकता है।

विशेष : ऋषि चुणक एक उदार आत्मा ज्ञानी पुरुष परमात्मा को चाहने वाले थे। जैसा मार्ग दर्शन शास्त्रों से हुआ तथा जैसा गुरु मिला उसके आधार पर वेदों में वर्णित मतानुसार हजारों वर्ष साधना की। फिर भी अभिमान (अहंकार) नहीं गया। मानधाता राजा का सर्वनाश किया तथा अपनी भक्ति की कमाई कम की और पाप के भागी बने। यह ब्रह्म साधना की घटिया गति (स्थिति) है। जिसका प्रमाण स्वयं ब्रह्म भगवान देते हैं (गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 18 में)। आदरणीय गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

गरीब, बहतर क्षौणी खा गया, चुणक ऋषिेश्वर एक। देह धारें जोरा फिरें, सभी काल के भेख॥

जैसे गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 2 में कहा है कि मेरी भक्ति वेदों व गीता में वर्णित विधि से करता है वह मेरे भाव में ही भावित रहता है तथा मेरे जैसे गुणों वाला अर्थात् काल का दूसरा रूप हो जाता है जैसे चुणक ऋषि। पुनर् जन्म जब मानव का होता है तो वह साधक उसी भाव में भावित रहता है अर्थात् अन्य देवों की उपासना नहीं करता, फिर भी वेदों अनुसार मेरी साधना करता है। यह भी बहुत जन्मों के उपरान्त मेरी साधना पर लगता है, यही संकेत गीता अध्याय 7 श्लोक 19 में भी दिया है कि बहुत जन्म-जन्मान्तर के पश्चात् कोई ज्ञानी आत्मा जो पहले मेरे भाव में भावित था, मेरी साधना करता है और यह बताने वाला कि पूर्ण परमात्मा ही वासुदेव है अर्थात् सर्वव्यापक सर्व का पालन कर्ता वही पूजा के योग्य है, वह महात्मा तो अति दुर्लभ है।

अध्याय 2 के श्लोक 69 से 72 में लिखा है कि रात्री में दो प्रकार के प्राणी जागते हैं। एक विषयों का प्रेमी [काम (सैक्स) वश, चोर या ज्यादा धन इकट्ठा करने वाला] विकारों में लीन

जागता है। उसके लिए वह रात ही दिन के समान है। दूसरा परमात्मा प्रेमी जागता है। उसने उस रात का पूरा लाभ लिया। जैसे सर्व नदियाँ समुद्र में स्वतः गिर जाती हैं ऐसे ही दोनों प्रकार के प्राणी अपने बुरे व अच्छे कर्मों के आधार पर नरक तथा स्वर्ग में स्वतः चले जाते हैं। जो व्यक्ति परमात्म तत्व को जान चुका है वह विषय वासनाओं से रहित सुख-दुःख व लाभ-हानि में समान रहता है। जैसे समुद्र में नदियाँ गिर कर भी समुद्र को विचलित नहीं करती। वह व्यक्ति सर्व इच्छा रहित, ममता व अहंकार रहित ही शांति को प्राप्त होता है। जो साधक विषय विकार रहित होकर मन वश करके इन्द्रियों का दमन करे व काम क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार को समाप्त करके अन्तिम समय (मृत्यु बेला) में भी विचलित नहीं होता, केवल वही प्राणी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा-पूर्ण ब्रह्म) को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा क्षमता रहित होने से पूर्ण परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

सार : यह क्षमता न विष्णु में, न ब्रह्मा में, न शिव में। फिर परमात्मा प्राप्ति असम्भव।

।। ब्रह्मा से मन व काम (सैक्स) वश नहीं हुआ ।।

ब्रह्मा की कहानी सुनो :- ब्रह्मा जी बहुत ही विद्वान् देव हैं। चारों वेदों के ज्ञाता माने जाते हैं तथा ब्रह्मापुरी में देवताओं को ज्ञान सुनाया करते हैं।

एक दिन बहुत से नौजवान देव ब्रह्मा जी की सभा में ज्ञान सुनने हेतु आए हुए थे। ब्रह्मा जी कह रहे थे कि देवताओं हमारा सबसे पहला दुश्मन कामदेव (सैक्स) है। इससे बचने के लिए एक मात्र उपाय है कि दूसरे की पत्नी को माँ समान व पुत्री को बेटी समान समझें। यदि कोई ऐसा विचार नहीं रखता है तो वह नीच आत्मा है। उसके दर्शन भी अशुभ होते हैं आदि-आदि। ब्रह्मा जी की पुत्री सरस्वती जो कुंवारी थी को अपनी माता जी से गृहस्थ का ज्ञान हुआ कि जवान लड़की ने शादी करके अपना घर बसाना चाहिए। नहीं तो स्त्री का आदर कम हो जाता है। इस बात को सुनकर सरस्वती हम उम्र सहेलियों (देव स्त्रियों) के पास गईं। उसने उनको माता द्वारा शादी करने का वृत्तांत सुनाया। तब सभी ने मिल कर कहा कि सरस्वती जवानी ढल जाने के बाद आपको कोई देव स्वीकार नहीं करेगा। शादी के आनन्द से वंचित रहकर मानव शरीर का कोई लाभ नहीं है। अन्य बहुत अश्लील बातों से सरस्वती में पति प्राप्ति की प्रबल इच्छा प्रेरित की। साथ में कहा कि आज सुअवसर है कि सर्वदेव आपके पिता के दरबार में आए हुए हैं। अपना पति चुन ले। यह बात सुनकर सरस्वती (ब्रह्मा की पुत्री) स्नान आदि करके, हार सिंगार (श्रृंगार) करके सुन्दर वस्त्र पहन कर पति प्राप्ति के लिए ब्रह्मा जी की सभा में गईं। सर्व देवों को विशेष अदा के साथ देखती हुई चली। उसी समय ब्रह्मा जी अपनी पुत्री के यौवन को देखकर ज्ञान-ध्यान भूलकर अपनी बेटी पर मोहित होकर आसन छोड़कर कामवासना वश होकर सरस्वती की कौली (बाथ भरना - दोनों भुजाओं से दबोच लेना) भर ली। वासना विकार वश होकर दुष्कर्म पर उतारू हुआ ही था कि इतने में भगवान शिव ने ब्रह्मा जी के शिर पर थाप (थपड़) मारी और कहा क्या कर रहे हो? ऐसा अपराध! ब्रह्मा यह शरीर त्याग दे नहीं तो कुत्ते की जूनी में जाएगा। उसी समय ब्रह्मा जी योग ध्यान में आया। अब पाठकजन स्वयं विचार करें फिर आम (साधारण) जीव कैसे ज्ञान योगयुक्त व वासना विकार रहित हो सकता है। यह सब काल (महाविष्णु, ज्योति निरंजन) का जाल है। आदरणीय गरीबदास साहेबजी महाराज कहते हैं -

गरीब, बीजक की बातें कहें, बीजक नहीं हाथ। पृथ्वी डोबन उतरे, कह-2 मीठी बात ।।
कहन सुनन की करते बाता। कोई न देखा अमृत खाता ।। ब्रह्मा पुत्री देख कर, हो गए डामा डोल ।।



॥दूसरे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक॥

परमात्मने नमः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

अध्याय 2 का श्लोक 1 (संजय उवाच)

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।१।

तम्, तथा, कृपया, आविष्टम्, अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्,
विषीदन्तम्, इदम्, वाक्यम्, उवाच, मधुसूदनः।।१।।

अनुवाद : (तथा) और उस प्रकार (कृपया) करुणासे (आविष्टम्) व्याप्त और (अश्रुपूर्णा कुलेक्षणम्) आँसुओंसे पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले (विषीदन्तम्) शोकयुक्त (तम्) मोह रूपी अंधकार में डूबे उस अर्जुनके प्रति (मधुसूदनः) भगवान् मधुसूदनने (इदम्) यह (वाक्यम्) वचन (उवाच) कहा। (1)

अध्याय 2 का श्लोक 2 (भगवान उवाच)

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।२।

कुतः, त्वा, कश्मलम्, इदम्, विषमे, समुपस्थितम्,
अनार्यजुष्टम्, अस्वर्ग्यम्, अकीर्तिकरम्, अर्जुन।।२।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (त्वा) तुझे इस (विषमे) दुःखदाई असमयमें (इदम्) यह (कश्मलम्) मोह (कुतः) किस हेतुसे (समुपस्थितम्) प्राप्त हुआ? क्योंकि (अनार्यजुष्टम्) यह अश्रेष्ठ पुरुषोंका चरित है (अस्वर्ग्यम्) न स्वर्गको देनेवाला है और (अकीर्तिकरम्) अपकीर्तिको करनेवाला ही है। (2)

अध्याय 2 का श्लोक 3

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।३।

क्लैब्यम्, मा, स्म, गमः, पार्थ, न, एतत्, त्वयि, उपपद्यते,
क्षुद्रम् हृदयदौर्बल्यम्, त्यक्त्वा, उत्तिष्ठ, परन्तप।।३।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (क्लैब्यम्) नपुंसकताको (मा, स्म, गमः) मत प्राप्त हो (त्वयि) तुझमें (एतत्) यह (न, उपपद्यते) उचित नहीं जान पड़ती। (परन्तप) हे परंतप! (क्षुद्रम् हृदयदौर्बल्यम्) हृदयकी तुच्छ दुर्बलताको (त्यक्त्वा) त्यागकर (उत्तिष्ठ) युद्धके लिये खड़ा हो जा। (3)

अध्याय 2 का श्लोक 4 (अर्जुन उवाच)

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।४।

कथम्, भीष्मम्, अहम्, सङ्ख्ये, द्रोणम्, च, मधुसूदन,
इषुभिः, प्रति, योत्स्यामि, पूजाहो, अरिसूदन।।4।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! (अहम्) मैं (सङ्ख्ये) रणभूमिमें (कथम्) किस प्रकार (इषुभिः) बाणोंसे (भीष्मम्) भीष्मपितामह (च) और (द्रोणम्) द्रोणाचार्यके (प्रति योत्स्यामि) विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि (अरिसूदन) हे अरिसूदन! वे दोनों ही (पूजाहो) पूजनीय हैं। (4)

अध्याय 2 का श्लोक 5

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।५।

गुरुन्, अहत्वा, हि, महानुभावान्, श्रेयः, भोक्तुम्,
भैक्ष्यम्, अपि, इह, लोके, हत्वा, अर्थकामान्, तु,
गुरुन्, इह, एव, भुजीय, भोगान्, रुधिरप्रदिग्धान्,।। 5।।

अनुवाद : (महानुभावान्) महानुभाव (गुरुन्) गुरुजनोंको (अहत्वा) न मारकर मैं (इह) इस (लोके) लोकमें (भैक्ष्यम्) भिक्षाका अन्न (अपि) भी (भोक्तुम्) खाना (श्रेयः) कल्याणकारक समझता हूँ (हि) क्योंकि (गुरुन्) गुरुजनोंको (हत्वा) मारकर भी (इह) इस लोकमें (रुधिरप्रदिग्धान्) रुधिरसे सने हुए (अर्थकामान्) अर्थ और कामरूप (भोगान् एव) भोगोंको ही (तु) तो (भुजीय) भोगूँगा। (5)

अध्याय 2 का श्लोक 6

न चैतद्विद्यः कतरन्नो गरीयो-
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः। ६।

न, च, एतत्, विध्मः, कतरत्, नः, गरीयः, यत्, वा,
जयेम, यदि, वा, नः, जयेयुः, यान् एव, हत्वा, न,
जिजीविषामः, ते, अवस्थिताः, प्रमुखे, धार्तराष्ट्राः।।6।।

अनुवाद : (च) तथा (एतत्) यह (न) नहीं (विध्मः) जानते कि (नः) हमारे लिये युद्ध करना और न करना इन (कतरत्) दोनोंमेंसे कौन-सा (गरीयः) श्रेष्ठ है (यत्, वा) अथवा यह भी नहीं जानते कि (जयेम) उन्हें हम जीतेंगे (यदि, वा) या (नः) हमको वे (जयेयुः) जीतेंगे। और (यान्) जिनको (हत्वा) मारकर हम (न, जिजीविषामः) जीना भी नहीं चाहते (ते) वे (एव) ही (धार्तराष्ट्राः) धृतराष्ट्रके पुत्र (प्रमुखे) मुकाबलेमें (अवस्थिताः) खड़े हैं। (6)

अध्याय 2 का श्लोक 7

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्नश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्। ७।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः, पृच्छामि, त्वाम्,
धर्मसम्मूढचेताः, यत्, श्रेयः, स्यात्, निश्चितम्, ब्रूहि,
तत्, मे, शिष्यः, ते, अहम्, शाधि, माम्, त्वाम्, प्रपन्नम्।।7।।

अनुवाद : (कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः) कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा (धर्मसम्मूढचेताः) धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं (त्वाम्) आपसे (पृच्छामि) पूछता हूँ कि (यत्) जो साधन (निश्चितम्) निश्चित (श्रेयः) कल्याणकारक (स्यात्) हो (तत्) वह (मे) मेरे लिए (ब्रूहि) कहिये क्योंकि (अहम्) मैं (ते) आपका (शिष्यः) शिष्य हूँ इसलिए (त्वाम्) आपके (प्रपन्नम्) शरण हुए (माम्) मुझको (शाधि) शिक्षा दीजिये। (7)

अध्याय 2 का श्लोक 8

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं-
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्। ८।

न, हि, प्रपश्यामि, मम, अपनुद्यात्, यत्, शोकम्, उच्छोषणम्, इन्द्रियाणाम्,
अवाप्य, भूमौ, असपत्नम्, ऋद्धम्, राज्यम्, सुराणाम्, अपि, च, आधिपत्यम्।।8।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (भूमौ) भूमिमें (असपत्नम्) निष्कण्टक (ऋद्धम्) धनधान्य-सम्पन्न (राज्यम्) राज्यको (च) और (सुराणाम्) देवताओंके (आधिपत्यम्) स्वामीपनेको (अवाप्य) प्राप्त होकर (अपि) भी मैं उस उपाय को (न) नहीं (प्रपश्यामि) देखता हूँ (यत्) जो (मम) मेरी (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंके (उच्छोषणम्) सूखानेवाले (शोकम्) शोकको (अपनुद्यात्) समाप्त कर सकें। (8)

भावार्थ :- अर्जुन कह रहा है कि भगवन यदि मुझे सारी पृथ्वी का राज्य प्राप्त हो चाहे देवताओं का भी स्वामी अर्थात् इन्द्र पद प्राप्त हो, मैं नहीं देखता हूँ कि कोई मुझे युद्ध के लिए तैयार कर सकता है अर्थात् मैं युद्ध नहीं करूंगा, ऐसे कह कर चुप हो गया।

अध्याय 2 का श्लोक 9

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह। ९।
एवम्, उक्त्वा, हृषीकेशम्, गुडाकेशः, परन्तप,
न, योत्स्ये, इति, गोविन्दम्, उक्त्वा, तूष्णीम्, बभूव, ह।।9।।

अनुवाद : (परन्तप) हे राजन्! (गुडाकेशः) निद्राको जीतनेवाले अर्जुन (हृषीकेशम्) अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति (एवम्) इस प्रकार (उक्त्वा) कहकर फिर (गोविन्दम्) श्रीगोविन्द भगवान्से (न, योत्स्ये) युद्ध नहीं करूंगा (इति) यह (ह) स्पष्ट (उक्त्वा) कहकर (तूष्णीम्) चुप (बभूव) हो गये। (9)

अध्याय 2 का श्लोक 10

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः।१०।

तम्, उवाच, हृषीकेशः, प्रहसन्, इव, भारत,

सेनयोः, उभयोः, मध्ये, विषीदन्तम्, इदम्, वचः।।10।।

अनुवाद : (भारत) हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! (हृषीकेशः) अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज (उभयोः) दोनों (सेनयोः) सेनाओंके (मध्ये) बीचमें (विषीदन्तम्) शोक करते हुए (तम्) उस अर्जुनको (प्रहसन्, इव) हँसते हुए से (इदम्) यह (वचः) वचन (उवाच) बोले। (10)

अध्याय 2 का श्लोक 11 भगवान उवाच- भगवान बोले

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।११।।

अशोच्यान्, अन्वशोचः, त्वम्, प्रज्ञावादान्, च, भाषसे,

गतासून्, अगतासून्, च, न, अनुशोचन्ति, पण्डिताः।।11।।

अनुवाद : (त्वम्) तू (अशोच्यान्) न शोक करने योग्य मनुष्योंके लिये (अन्वशोचः) शोक करता है (च) और (प्रज्ञावादान्) पण्डितोंके से वचनोंको (भाषसे) कहता है परंतु (गतासून्) जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये (च) और (अगतासून्) जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए भी (पण्डिताः) पण्डितजन (न, अनुशोचन्ति) शोक नहीं करते। (11)

अध्याय 2 का श्लोक 12

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।१२।।

न, तु, एव, अहम्, जातु, न, आसम्, न, त्वम्, न, इमे, जनाधिपाः,

न, च, एव, न, भविष्यामः, सर्वे, वयम्, अतः, परम्।।12।।

अनुवाद : (न) न (तु) तो ऐसा (एव) ही है कि (अहम्) मैं (जातु) किसी कालमें (न) नहीं (आसम्) था अथवा (त्वम्) तू (न) नहीं था अथवा (इमे) ये (जनाधिपाः) राजालोग (न) नहीं थे (च) और (न) न ऐसा (एव) ही है कि (अतः) इससे (परम्) आगे (वयम्) हम (सर्वे) सब (न) नहीं (भविष्यामः) रहेंगे। (12)

अध्याय 2 का श्लोक 13

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।१३।।

देहिनः, अस्मिन्, यथा, देहे, कौमारम्, यौवनम्, जरा,

तथा, देहान्तरप्राप्तिः, धीरः, तत्र, न, मुह्यति।।13।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (देहिनः) जीवात्माकी (अस्मिन्) इस (देहे) देहमें (कौमारम्) बालकपन (यौवनम्) जवानी और (जरा) वृद्धावस्था होती है (तथा) वैसे ही (देहान्तरप्राप्तिः) अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है (तत्र) उस विषयमें (धीरः) धीर पुरुष (न, मुह्यति) मोहित नहीं होता। (13)

अध्याय 2 का श्लोक 14

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।१४।।

मात्रास्पर्शाः, तु, कौन्तेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः,
आगमापायिनः, अनित्याः, तान्, तितिक्षस्व, भारत ॥14॥

अनुवाद : (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र! (शीतोष्णसुखदुःखदाः) सर्दी गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले (मात्रास्पर्शाः) इन्द्रिय और विषयोंके संयोग (तु) तो (आगमापायिनः) उत्पत्ति विनाशशील और (अनित्याः) अनित्य हैं इसलिए (भारत) हे भारत! (तान्) उनको तू (तितिक्षस्व) सहन कर। (14)

अध्याय 2 का श्लोक 15

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते। १५।

यम्, हि, न, व्यथयन्ति, एते, पुरुषम्, पुरुषर्षभ,
समदुःखसुखम्, धीरम्, सः, अमृतत्वाय, कल्पते ॥15॥

अनुवाद : (हि) क्योंकि (पुरुषर्षभ) हे पुरुषश्रेष्ठ! (समदुःखसुखम्) दुःख-सुखको समान समझनेवाले (यम्) जिस(धीरम्) धीर अर्थात् तत्त्वदर्शी (पुरुषम्) पुरुषको (एते) ये (न व्यथयन्ति) व्याकुल नहीं करते (सः) वह (अमृतत्वाय) पूर्ण परमात्मा के आनन्द के (कल्पते) योग्य होता है। (15)

अध्याय 2 का श्लोक 16

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः। १६।

न, असतः, विद्यते, भावः, न, अभावः, विद्यते, सतः,
उभयोः, अपि, दृष्टः, अन्तः, तु, अनयोः, तत्त्वदर्शिभिः ॥16॥

अनुवाद : (असतः) असत् वस्तु की तो (भावः) सत्ता (न) नहीं (विद्यते) जानी जाती (तु) और (सतः) सत्का (अभावः) अभाव (न) नहीं (विद्यते) जाना जाता इस प्रकार (अनयोः) इन (उभयोः) दोनों की (अपि) भी (अन्तः) तत्त्व, वास्तविकता को (तत्त्वदर्शिभिः) तत्त्वज्ञानी अर्थात् तत्त्वदर्शी संतों द्वारा (दृष्टः) देखा गया है (इसी का प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में है)। (16)

अध्याय 2 का श्लोक 17

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति। १७।

अविनाशि, तु, तत्, विद्धि, येन्, सर्वम्, इदम्, ततम्,
विनाशम्, अव्ययस्य, अस्य, न, कश्चित्, कर्तुम्, अर्हति ॥17॥

अनुवाद : (अविनाशि) नाशरहित (तु) तो तू (तत्) उसको (विद्धि) जान (येन्) जिससे (इदम्) यह (सर्वम्) सम्पूर्ण जगत् दृश्यवर्ग (ततम्) व्याप्त है। (अस्य) इस (अव्ययस्य) अविनाशीका (विनाशम्) विनाश (कर्तुम्) करनेमें (कश्चित्) कोई भी (न, अर्हति) समर्थ नहीं है ॥ (17)

अध्याय 2 का श्लोक 18

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत। १८।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत। १८।

अन्तवन्तः, इमे, देहाः, नित्यस्य, उक्ताः, शरीरिणः,

अनाशिनः, अप्रमेयस्य, तस्मात्, युध्यस्व, भारत।।18।।

अनुवाद : (इमे) ये (देहाः) पंच भौतिक शरीर (अन्तवन्तः) नाशवान् है (शरीरिणः) अविनाशी परमात्मा जो आत्मा सहित शरीर में नित्य रहता है। (अप्रमेयस्य) साधारण साधक पूर्ण परमात्मा व आत्मा के अभेद सम्बन्ध से अपरिचित है इसलिए प्रमाण रहित को (नित्यस्य) आत्मा के साथ नित्य रहने वाला (अनाशिनः) अविनाशी (उक्ताः) कहा गया है। (तस्मात्) इसलिये (भारत) हे भरतवंशी अर्जुन! (युध्यस्व) युद्ध कर। (18)

भावार्थ :- परमात्मा की निराकार शक्ति आत्मा के साथ ऐसे जानों जैसे मोबाइल फोन रेंज से ही कार्य करता है। टॉवर एक स्थान पर होते हुए भी अपनी रेंज से अपने क्षेत्र वाले मोबाइल फोन के साथ अभेद है। इसको वही समझ सकता है जो मोबाइल फोन रखता है। इसी प्रकार परमात्मा अपने निज स्थान सत्यलोक में रहता है या जहाँ भी आता जाता है अपनी निराकार शक्ति की रेंज को उसी तरह प्रत्येक ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्राणी व स्थान अर्थात् जड़ व चेतन पर फैलाए रहता है। जैसे सूर्य दूर स्थान पर रहते हुए भी अपना प्रकाश व अदृश्य उष्णता (गर्मी) को अपने क्षमता क्षेत्र सर्व ब्रह्माण्डों पर कण-कण में फैलाए रहता है। इसी प्रकार परमात्मा के शरीर से निकल रहा प्रकाश व अदृश्य शक्ति सर्व जड़ व चेतन को संभाले हुए है।

अध्याय 2 का श्लोक 19

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।१९।

यः, एनम्, वेत्ति, हन्तारम्, यः, च, एनम्, मन्यते, हतम्,

उभौ तौ, न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते।।19।।

अनुवाद : (यः) जो (एनम्) इसको (हन्तारम्) मारनेवाला (वेत्ति) समझता है (च) तथा (यः) जो (एनम्) इसको (हतम्) मरा (मन्यते) मानता है (तौ) वे (उभौ) दोनों ही (न) नहीं (विजानीतः) जानते क्योंकि (अयम्) वह वास्तवमें (न) न तो किसीको (हन्ति) मारता है और (न) न किसीके द्वारा (हन्यते) मारा जाता है। (19)

भावार्थ :- पूर्ण ब्रह्म का अभेद सम्बन्ध होने से आत्मा मरती नहीं तथा पूर्ण प्रभु दयालु है वह किसी को मारता नहीं। जो कहे कि आत्मा मरती है व पूर्ण परमात्मा किसी को मारता है, वे दोनों ही अज्ञानी हैं।

अध्याय 2 का श्लोक 20

न जायते म्रियते वा कदाचि-

न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-

न हन्यते हन्यमाने शरीरे।२०।

न, जायते, म्रियते, वा, कदाचित्, न, अयम्, भूत्वा, भविता, वा, न,

भूयः, अजः, नित्यः, शाश्वतः, अयम्, पुराणः, न, हन्यते, हन्यमाने, शरीरे।।20।।

अनुवाद : (अयम्) यह (कदाचित्) किसी कालमें भी (न) न तो (जायते) जन्मता है (वा) और (न) न (म्रियते) मरता ही है (वा) तथा (न) न यह (भूत्वा) उत्पन्न होकर (भूयः) फिर (भविता)

होनेवाला ही है क्योंकि (अयम्) यह (अजः) अजन्मा (नित्यः) नित्य (शाश्वतः) सनातन और (पुराणः) पुरातन है (शरीरे) शरीरके (हन्यमाने) मारे जानेपर भी यह (न) नहीं (हन्यते) मारा जाता। (20)

अध्याय 2 का श्लोक 21

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्। २१।

वेद, अविनाशिनम्, नित्यम्, यः, एनम्, अजम्, अव्ययम्,

कथम्, सः, पुरुषः, पार्थ, कम्, घातयति, हन्ति, कम्।।21।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पृथापुत्र अर्जुन! (यः) जो व्यक्ति (एनम्) इस आत्म सहित परमात्मा को (अविनाशिनम्) नाशरहित (नित्यम्) नित्य (अजम्) अजन्मा और (अव्ययम्) अविनाशी (वेद) जानता है (सः) वह (पुरुषः) व्यक्ति (कम्) किसको (घातयति) मरवाता है और (कथम्) कैसे (कम्) किसको (हन्ति) मारता है?

(अध्याय 2 श्लोक 22-23 में जीवात्मा की स्थिति बताई है।)(21)

अध्याय 2 का श्लोक 22

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-

न्यन्यानि संयाति नवानि देही। २२।

वासांसि, जीर्णानि, यथा, विहाय, नवानि, गृह्णातिः, नरः, अपराणि,

तथा, शरीराणि, विहाय, जीर्णानि, अन्यानि, संयाति, नवानि, देही।।22।।

अनुवाद : (यथा) जैसे (नरः) मनुष्य (जीर्णानि) पुराने (वासांसि) वस्त्रोंको (विहाय) त्यागकर (अपराणि) दूसरे (नवानि) नये वस्त्रोंको (गृह्णातिः) ग्रहण करता है (तथा) वैसे ही (देही) जीवात्मा (जीर्णानि) पुराने (शरीराणि) शरीरोंको (विहाय) त्यागकर (अन्यानि) दूसरे (नवानि) नये शरीरोंको (संयाति) प्राप्त होता है। (22)

अध्याय 2 का श्लोक 23

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। २३।

न, एनम्, छिन्दन्ति, शस्त्राणि, न, एनम्, दहति, पावकः,

न, च, एनम्, क्लेदयन्ति, आपः, न, शोषयति, मारुतः।।23।।

अनुवाद : (एनम्) इसे (शस्त्राणि) शस्त्र (न) नहीं (छिन्दन्ति) काट सकते (एनम्) इसको (पावकः) आग (न) नहीं (दहति) जला सकती (एनम्) इसको (आपः) जल (न) नहीं (क्लेदयन्ति) गला सकता (च) और (मारुतः) वायु (न) नहीं (शोषयति) सूखा सकती। (23)

अध्याय 2 का श्लोक 24

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोध्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः। २४।

अच्छेद्यः, अयम्, अदाह्यः, अयम्, अक्लेद्यः, अशोष्यः, एव, च,
नित्यः, सर्वगतः, स्थाणुः, अचलः, अयम्, सनातनः।।24।।

अनुवाद : (अयम्) यह (अच्छेद्यः) अच्छेद्य है (अयम्) यह परमात्मा (अदाह्यः) अदाह्य (अक्लेद्यः) अक्लेद्य (च) और (एव) निःसंदेह (अशोष्यः) अशोष्य है तथा (अयम्) यह परमात्मा (नित्यः) नित्य (सर्वगतः) सर्वव्यापी (अचलः) अचल (स्थाणुः) स्थिर रहनेवाला और (सनातनः) सनातन है। (24)

अध्याय 2 का श्लोक 25

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।

तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।२५।

अव्यक्तः, अयम्, अचिन्त्यः, अयम्, अविकार्यः, अयम्, उच्यते,
तस्मात्, एवम्, विदित्वा, एनम्, न, अनुशोचितुम्, अर्हसि।।25।।

अनुवाद : (अयम्) यह परमात्मा इस आत्मा के साथ (अव्यक्तः) गुप्त रहता है (अयम्) यह (अचिन्त्यः) अचिन्त्य है और (अयम्) यह (अविकार्यः) विकाररहित (उच्यते) कहा जाता है। (तस्मात्) इससे हे अर्जुन! (एनम्) इस परमात्मा को (एवम्) इस प्रकारसे (विदित्वा) जानकर तू (अनुशोचितुम्) शोक करनेके (न, अर्हसि) योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है। भावार्थ है कि जब परमात्मा जीव के साथ है तो जीव का अहित नहीं होता। (25)

अध्याय 2 का श्लोक 26

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।

तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।२६।

अथ, च, एनम्, नित्यजातम्, नित्यम्, वा, मन्यसे, मृतम्,
तथापि त्वम्, महाबाहो, न, एवम्, शोचितुम्, अर्हसि।।26।।

अनुवाद : (च) और (अथ) यदि इसके बाद (त्वम्) तू (एनम्) इन्हें (नित्यजातम्) सदा जन्मनेवाला (वा) या (नित्यम्) सदा (मृतम्) मरनेवाला (मन्यसे) मानता है (तथापि) तो भी (महाबाहो) हे महाबाहो! तू (एवम्) इस प्रकार (शोचितुम्) शोक करनेको (न, अर्हसि) योग्य नहीं है। (26)

अध्याय 2 का श्लोक 27

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।२७।

जातस्य, हि, ध्रुवः, मृत्युः, ध्रुवम्, जन्म, मृतस्य, च,
तस्मात्, अपरिहार्ये, अर्थे, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि।।27।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (जातस्य) जन्मे हुएकी (मृत्युः) मृत्यु (ध्रुवः) निश्चित है (च) और (मृतस्य) मरे हुएका (जन्म) जन्म (ध्रुवम्) निश्चित है। (तस्मात्) इससे भी इस (अपरिहार्ये) बिना उपायवाले (अर्थे) विषयमें (त्वम्) तू (शोचितुम्) शोक करनेके (न, अर्हसि) योग्य नहीं है (27)

अध्याय 2 का श्लोक 28

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।२८।

अव्यक्तादीनि, भूतानि, व्यक्तमध्यानि, भारत,
अव्यक्तनिधनानि, एव, तत्र, का, परिदेवना।।28।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (भूतानि) सम्पूर्ण प्राणी (अव्यक्तादीनि) जन्मसे पहले अप्रकट थे और (अव्यक्त निधनानि, एव) मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं केवल (व्यक्तमध्यानि) बीच में ही प्रकट हैं फिर (तत्र) ऐसी स्थितिमें (का) क्या (परिदेवना) शोक करना है?(28)

अध्याय 2 का श्लोक 29

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्ददति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।२९।

आश्चर्यवत्, पश्यति, कश्चित्, एनम्, आश्चर्यवत्,
वदति, तथा, एव, च, अन्यः, आश्चर्यवत्, च, एनम्, अन्यः,
शृणोति, श्रुत्वा, अपि, एनम्, वेद, न, च, एव, कश्चित्।।29।।

अनुवाद : (कश्चित्) कोई एक ही (एनम्) इस परमात्मा सहित आत्माको (आश्चर्यवत्) आश्चर्यकी भाँति (पश्यति) देखता है (च) और (तथा) वैसे (एव) ही (अन्यः) दूसरा कोई महापुरुष ही (आश्चर्यवत्) आश्चर्यकी भाँति (वदति) वर्णन करता है (च) तथा (अन्यः) दूसरा (एनम्) इसे (आश्चर्यवत्) आश्चर्यकी भाँति (शृणोति) सुनता है (च) और (कश्चित्) कोई (श्रुत्वा) सुनकर (अपि) भी (एनम्) इसको (न, एव) नहीं (वेद) जानता। (29)

अध्याय 2 का श्लोक 30

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।३०।

देही, नित्यम्, अवध्यः, अयम्, देहे, सर्वस्य, भारत,
तस्मात्, सर्वाणि, भूतानि, न, त्वम्, शोचितुम्, अर्हसि।।30।।

अनुवाद : (भारत) हे अर्जुन! (अयम्) यह (देही) जीवाआत्मा परमात्मा के साथ (सर्वस्य) सबके (देहे) शरीरोंमें (नित्यम्) सदा ही (अवध्यः) अविनाशी है (तस्मात्) इस कारण (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणियोंके लिये (त्वम्) तू (शोचितुम्) शोक करनेको (न, अर्हसि) योग्य नहीं है। (30)

अध्याय 2 का श्लोक 31

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।३१।

स्वधर्मम्, अपि, च, अवेक्ष्य, न, विकम्पितुम्, अर्हसि,
धर्म्यात्, हि, युद्धात्, श्रेयः, अन्यत्, क्षत्रियस्य, न, विद्यते।।31।।

अनुवाद : (च) तथा (स्वधर्मम्) अपनी शास्त्र अनुकूल धार्मिक पूजाओं को (अवेक्ष्य) देखकर (अपि) भी तू (विकम्पितुम्) भय करने (न, अर्हसि) योग्य नहीं है (हि) क्योंकि (क्षत्रियस्य) क्षत्रियके लिये (धर्म्यात्) धर्मयुक्त (युद्धात्) युद्धसे बढ़कर (अन्यत्) दूसरा कोई (श्रेयः) कल्याणकारी कर्तव्य (न) नहीं (विद्यते) जाना जाता है। (31)

विशेष :- गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित गीता अध्याय 10 श्लोक 17 में विद्याम का अर्थ जानना अर्थात् जानूँ किया है।

अध्याय 2 का श्लोक 32

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। ३२।

यदृच्छया, च, उपपन्नम्, स्वर्गद्वारम्, अपावृतम्,

सुखिनः, क्षत्रियाः, पार्थ, लभन्ते, युद्धम्, ईदृशम्।।32।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यदृच्छया) अपने-आप (उपपन्नम्) प्राप्त हुए (च) और (अपावृतम्) खुले हुए (स्वर्गद्वारम्) स्वर्गके द्वाररूप (ईदृशम्) इस प्रकारके (युद्धम्) युद्धको (सुखिनः) भाग्यवान् (क्षत्रियाः) क्षत्रियलोग ही (लभन्ते) पाते हैं। (32)

अध्याय 2 का श्लोक 33

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि। ३३।

अथ, चेत्, त्वम्, इमम्, धर्म्यम्, सङ्ग्रामम्, न, करिष्यसि,

ततः, स्वधर्मम्, कीर्तिम्, च, हित्वा, पापम्, अवाप्स्यसि।।33।।

अनुवाद : (अथ) किंतु (त्वम्) तू (इमम्) इस (धर्म्यम्) धार्मिकता युक्त (चेत्) ज्ञान के आधार से (सङ्ग्रामम्) युद्धको (न) नहीं (करिष्यसि) करेगा (ततः) वही (स्वधर्मम्) स्वधर्म (च) और (कीर्तिम्) कीर्तिको (हित्वा) खोकर (पापम्) पापको (अवाप्स्यसि) प्राप्त होगा। (33)

अध्याय 2 का श्लोक 34

अकीर्तिं चापि भूतानि
कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।

सम्भावितस्य चाकीर्ति-
मरणादतिरिच्यते । ३४।

अकीर्तिम्, च, अपि, भूतानि, कथयिष्यन्ति, ते, अव्ययाम्,

सम्भावितस्य, च, अकीर्तिः, मरणात्, अतिरिच्यते।।34।।

अनुवाद : (च) तथा (भूतानि) सब लोग (ते) तेरी (अव्ययाम्) बहुत कालतक रहनेवाली (अकीर्तिम्) अपकीर्तिका (अपि) भी (कथयिष्यन्ति) कथन करेंगे (च) और (सम्भावितस्य) माननीय पुरुष के लिये (अकीर्तिः) अपकीर्ति (मरणात्) मरणसे भी (अतिरिच्यते) बढ़कर है। (34)

अध्याय 2 का श्लोक 35

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्। ३५।

भयात्, रणात्, उपरतम्, मंस्यन्ते, त्वाम्, महारथाः,

येषाम्, च, त्वम्, बहुमतः, भूत्वा, यास्यसि, लाघवम्।।35।।

अनुवाद : (च) और (येषाम्) जिनकी दृष्टिमें (त्वम्) तू पहले (बहुमतः) बहुत सम्मानित (भूत्वा) होकर अब (लाघवम्) लघुताको (यास्यसि) प्राप्त होगा वे (महारथाः) महारथी लोग (त्वाम्) तुझे (भयात्) भयके कारण (रणात्) युद्धसे (उपरतम्) हटा हुआ (मंस्यन्ते) मानेंगे। (35)

अध्याय 2 का श्लोक 36

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् । ३६ ।

अवाच्यवादान्, च, बहून्, वदिष्यन्ति, तव, अहिताः,
निन्दन्तः, तव, सामर्थ्यम्, ततः, दुःखतरम्, नु, किम् ।।36।।

अनुवाद : (तव) तेरे (अहिताः) वैसी लोग (तव) तेरे (सामर्थ्यम्) सामर्थ्यकी (निन्दन्तः) निन्दा करते हुए तुझे (बहून्) बहुत-से (अवाच्यवादान्) न कहने योग्य वचन (च) भी (वदिष्यन्ति) कहेंगे (ततः) उससे (दुःखतरम्) अधिक दुःख (नु) और (किम्) क्या होगा? । (36)

अध्याय 2 का श्लोक 37

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः । ३७ ।

हतः, वा, प्राप्स्यसि, स्वर्गम्, जित्वा, वा, भोक्ष्यसे, महीम्,
तस्मात्, उत्तिष्ठ, कौन्तेय, युद्धाय, कृतनिश्चयः ।।37।।

अनुवाद : (वा) या तो तू युद्धमें (हतः) मारा जाकर (स्वर्गम्) स्वर्गको (प्राप्स्यसि) प्राप्त होगा (वा) अथवा संग्राममें (जित्वा) जीतकर (महीम्) पृथ्वीका राज्य (भोक्ष्यसे) भोगेगा । (तस्मात्) इस कारण (कौन्तेय) हे अर्जुन! तू (युद्धाय) युद्धके लिये (कृतनिश्चयः) निश्चय करके (उत्तिष्ठ) खड़ा हो जा । (37)

अध्याय 2 का श्लोक 38

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि । ३८ ।

सुखदुःखे, समे, कृत्वा, लाभालाभौ, जयाजयौ,
ततः, युद्धाय, युज्यस्व, न, एवम्, पापम्, अवाप्स्यसि ।।38।।

अनुवाद : (जयाजयौ) जय-पराजय (लाभालाभौ) लाभ-हानि और (सुखदुःखे) सुख-दुःखको (समे) समान (कृत्वा) समझकर (ततः) उसके बाद (युद्धाय) युद्धके लिये (युज्यस्व) तैयार हो जा (एवम्) इस प्रकार (पापम्) पापको (न) नहीं (अवाप्स्यसि) प्राप्त होगा । (38)

अध्याय 2 का श्लोक 39

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये
बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ
कर्मबन्धं प्रहास्यसि । ३९ ।

एषा, ते, अभिहिता, साङ्ख्ये, बुद्धिः, योगे, तु, इमाम्, शृणु,
बुद्ध्या, युक्तः, यया, पार्थ, कर्मबन्धम्, प्रहास्यसि ।।39।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (एषा) यह (बुद्धिः) ज्ञानवाणी (ते) तेरे लिये (साङ्ख्ये) ज्ञानयोगके विषयमें (अभिहिता) कही गयी (तु) और अब तू (इमाम्) इसको (योगे) योगके विषयमें (शृणु) सुन (यया) जिस (बुद्ध्या) बुद्धिसे (युक्तः) युक्त हुआ तू (कर्मबन्धम्) कर्मके बन्धनको (प्रहास्यसि)

भलीभाँति त्याग देगा यानी सर्वथा नष्ट कर डालेगा। गीता अध्याय 6 श्लोक 46 में कहा है कि ज्ञान योगियों और कर्मयोगियों से तत्त्वदर्शी सन्त अर्थात् योगी श्रेष्ठ है। इसी गीता अध्याय 5 श्लोक 2 में शास्त्रविरुद्ध ज्ञान योगी अर्थात् सन्यासी तथा कर्मयोगी दोनों को ही अश्रेष्ठ कहा है। (39)

अध्याय 2 का श्लोक 40

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्। ४०।

न, इह, अभिक्रमनाशः, अस्ति, प्रत्यवायः, न, विद्यते,
स्वल्पम्, अपि, अस्य, धर्मस्य, त्रायते, महतः, भयात्।।40।।

अनुवाद : (इह) इस योगमें (अभिक्रमनाशः) आरम्भका अर्थात् बीजका नाश (न) नहीं (अस्ति) है और (प्रत्यवायः) उलटा फलरूप दोष भी (न) नहीं (विद्यते) जानते बल्कि (अस्य) इस योगरूप (धर्मस्य) धर्मका (स्वल्पम्) थोड़ा-सा भक्ति धन (अपि) भी (महतः) महान् (भयात्) भयसे (त्रायते) रक्षा कर लेता है। (40)

अध्याय 2 का श्लोक 41

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। ४१।

व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, एका, इह, कुरुनन्दन,
बहुशाखाः, हि, अनन्ताः, च, बुद्धयः, अव्यवसायिनाम्।।41।।

अनुवाद : (कुरुनन्दन) हे अर्जुन! (इह) इस योगमें (व्यवसायात्मिका) निश्चयात्मिका (बुद्धिः) बुद्धि व ज्ञान वाणी (एका) एक ही होती है किंतु (अव्यवसायिनाम्) अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्योंकी (बुद्धयः) बुद्धियाँ अर्थात् ज्ञान विचार धाराएँ (हि) निश्चय ही (बहुशाखाः) बहुत भेदोंवाली (च) और (अनन्ताः) अनन्त होती है। (41)

अध्याय 2 का श्लोक 42-43-44

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः। ४२।

याम्, इमाम्, पुष्पिताम्, वाचम्, प्रवदन्ति, अविपश्चितः,
वेदवादरताः, पार्थ, न, अन्यत्, अस्ति, इति, वादिनः।।42।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति। ४३।

कामात्मानः, स्वर्गपराः, जन्मकर्मफलप्रदाम्,
क्रियाविशेषबहुलाम्, भोगैश्वर्यगतिम्, प्रति।।43।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते। ४४।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्, तया, अपहतचेतसाम्,
व्यवसायात्मिका, बुद्धिः, समाधौ, न, विधीयते।।44।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (कामात्मानः) जो भोगों में तन्मय हो रहे हैं (वेदवादरताः) वेद

वाक्यों में ही प्रीति रखते हैं (स्वर्गपराः) जिनकी बुद्धिमें स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है (अन्यत्) दूसरी (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा (वादिनः) कहनेवाले हैं (अविपश्चितः) वे अविवेकीजन (इमाम्) इस प्रकारकी (याम्) जिस (पुष्पिताम्) पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त (वाचम्) वाणीको (प्रवदन्ति) कहा करते हैं (जन्मकर्मफलप्रदाम्) जन्मरूप कर्मफल देनेवाली (भोगैश्वर्यगतिम् प्रति) भोग तथा ऐश्वर्यकी प्राप्ति के लिए (क्रियाविशेषबहुलाम्) बहुत-सी क्रियाओंको वर्णन करनेवाली है। (तया) उस वाणीद्वारा (अपहतचेतसाम्) जिनका चित्त हर लिया गया है। (भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्) जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी (समाधौ) परमात्मा के चिन्तन में (व्यवसायात्मिका) निश्चयात्मिका (बुद्धिः) बुद्धि (न) नहीं (विधीयते) जान पड़ती। (42-43-44)

अध्याय 2 का श्लोक 45

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्। ४५।

त्रैगुण्यविषयाः, वेदाः, निस्त्रैगुण्यः, भव, अर्जुन,

निर्द्वन्द्वः, नित्यसत्त्वस्थः, निर्योगक्षेमः, आत्मवान्।।45।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (त्रैगुण्यविषयाः) तीनों गुणों अर्थात् रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव के भोगों के (वेदाः) ज्ञान से (निस्त्रैगुण्यः) तीनों गुणों से ऊपर उठ कर (निर्द्वन्द्वः) हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे रहित (नित्यसत्त्वस्थः) नित्यवस्तु सत्यपुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मामें स्थित (निर्योगक्षेमः) योग क्षेमको अर्थात् भक्ति के प्रतिफल में संसारिक सुख न चाहनेवाला (आत्मवान्) आत्म विश्वासी (भव) हो। (45)

अध्याय 2 का श्लोक 46

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः। ४६।

यावान्, अर्थः, उदपाने, सर्वतः, सम्प्लुतोदके,

तावान्, सर्वेषु, वेदेषु, ब्राह्मणस्य, विजानतः।।46।।

अनुवाद : (सर्वतः) सब ओरसे (सम्प्लुतोदके) परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त हो जाने पर (उदपाने) छोटे जलाशयमें मनुष्यका (यावान्) जितना (अर्थः) प्रयोजन रहता है पूर्ण परमात्माको (विजानतः) तत्वसे जाननेवाले (ब्राह्मणस्य) विद्वानका (सर्वेषु) समस्त (वेदेषु) ज्ञानों में (तावान्) उतना ही प्रयोजन रह जाता है। (46)

भावार्थ :- जिस प्रकार बहुत बड़े जलाशय (जिस का जल दस वर्ष वर्षा न होने पर भी समाप्त न हो) के प्राप्त हो जाने के पश्चात् छोटे जलाशय (जिस का जल एक वर्षा न होने पर समाप्त हो जाए) में जैसी श्रद्धा रह जाती है (छोटा जलाशय बुरा नहीं लगता परन्तु उसकी क्षमता का ज्ञान हो जाता है) इसी प्रकार तत्वज्ञान की प्राप्ति पर अन्य ज्ञानों (चारों वेदों अठारह पुराणों व गीता जी आदि) में ऐसी श्रद्धा रह जाती है। क्योंकि उनमें पर्याप्त ज्ञान नहीं है। इसी प्रकार तत्वज्ञान के आधार से पूर्ण परमात्मा के गुणों का ज्ञान हो जाने पर अन्य परमात्माओं (परब्रह्म, ब्रह्म तथा श्री ब्रह्मा, श्री विष्णु तथा श्री शिव व दुर्गा) में ऐसी ही श्रद्धा रह जाती है। ये अन्य देवता बुरे नहीं लगते परन्तु इनसे मिलने वाला लाभ पर्याप्त नहीं है। (46)

अध्याय 2 का श्लोक 47

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि। ४७।

कर्मणि, एव, अधिकारः, ते, मा, फलेषु, कदाचन,
मा, कर्मफलहेतुः, भूः, मा, ते, संगः, अस्तु, अकर्मणि।।47।।

अनुवाद : (ते) तेरा (कर्मणि) कर्म करनेमें (एव) ही (अधिकारः) अधिकार है उसके (फलेषु) फलोंमें (कदाचन) कभी (मा) नहीं। इसलिए तू (कर्मफलहेतुः) कर्मोंके फलका हेतु (मा, भूः) मत हो तथा (ते) तेरी (अकर्मणि) कर्म न करनेमें भी (संगः) आसक्ति (मा) न (अस्तु) हो। (47)

अध्याय 2 का श्लोक 48

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। ४८।

योगस्थः, कुरु, कर्माणि, संगम्, त्यक्त्वा, धनजय,
सिद्धयसिद्धयोः, समः, भूत्वा, समत्वम्, योगः, उच्यते।।48।।

अनुवाद : (धनजय) हे धनजय! (संगम्) तू आसक्तिको (त्यक्त्वा) त्यागकर तथा (सिद्धयसिद्धयोः) सिद्धि और असिद्धिमें (समः) समान बुद्धिवाला (भूत्वा) होकर (योगस्थः) शास्त्रानुकूल भक्ति योगमें स्थित हुआ (कर्माणि) शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्तव्यकर्मोंको (कुरु) कर (समत्वम्) एक रूप ही (योगः) योग अर्थात् वास्तविक भक्ति (उच्यते) कहलाता है। (48)

अध्याय 2 का श्लोक 49

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः। ४९।

दूरेण, हि, अवरम्, कर्म, बुद्धियोगात्, धनजय,
बुद्धौ, शरणम्, अन्विच्छ, कृपणाः, फलहेतवः।।49।।

अनुवाद : (बुद्धियोगात्) अपने आप निकाला भक्ति मार्ग का निष्कर्ष अर्थात् मनमाना आचरण अर्थात् अपनी बुद्धियोगसे (कर्म) भक्ति कर्म (दूरेण) अत्यन्त ही (अवरम्) निम्न श्रेणीका है। इसलिये (धनजय) हे धनजय! तू (बुद्धौ) एक पूर्ण परमात्मा का ज्ञान देने वाले संत की (शरणम्) शरण (अन्विच्छ) ढूँढ़ अर्थात् तत्त्वदर्शी संतों द्वारा बताया एक पूर्ण प्रभु की भक्ति साधन का ही आश्रय ग्रहण कर (हि) क्योंकि (फलहेतवः) फलके हेतु बननेवाले (कृपणाः) अत्यन्त दीन हैं। (49)

अध्याय 2 का श्लोक 50

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्। ५०।

बुद्धियुक्तः, जहाति, इह, उभे, सुकृतदुष्कृते,
तस्मात् योगाय, युज्यस्व, योगः, कर्मसु, कौशलम्।।50।।

अनुवाद : (बुद्धियुक्तः) समबुद्धियुक्त अर्थात् तत्त्वदर्शी संत द्वारा बताया वास्तविक एक रूप शास्त्र अनुकूल भक्ति मार्ग पर लगा साधक पुरुष (सुकृतदुष्कृते) अच्छे कर्म जैसे मनमानी पूजाएँ जो सुकृत मान कर कर रहा था या मेरे बताए मार्ग अनुसार ओम् का जाप व यज्ञ आदि पुण्य करता था उस पुण्य को तथा बुरे कर्म जैसे मांस-मदिरा-तम्बाखु आदि नशीली वस्तुओं के सेवन रूपी दुष्कर्म

पाप इन (उभे) दोनोंको (इह)इसी लोक में अर्थात् काल लोक में (जहाति) त्याग देता है अर्थात् जैसे पूर्ण संत कहता है वैसे ही करता है (तस्मात्) इसलिए तू (योगाय) शास्त्र विधि अनुसार साधना अर्थात् समत्वरूप योगमें (युज्यस्व) लग जा यह (योगः) तत्त्वदर्शी संत द्वारा बताया भक्ति मार्ग ही (कर्मसु) भक्ति कर्मों में (कौशलम्) कुशलता है अर्थात् बुद्धिमत्ता है। (50)

यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है जिसमें कहा है कि मेरी सर्व धार्मिक पूजाओं को मेरे में त्याग कर उस पूर्ण परमात्मा की शरण में जा तब मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा।

अध्याय 2 का श्लोक 51

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।५१।

कर्मजम्, बुद्धियुक्ताः, हि, फलम्, त्यक्त्वा, मनीषिणः,

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदम्, गच्छन्ति, अनामयम्।।51।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (बुद्धियुक्ताः) तत्वज्ञान के आधार से समबुद्धिसे युक्त (मनीषिणः) ज्ञानीजन (कर्मजम्) कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाले (फलम्) फलको (त्यक्त्वा) त्यागकर (जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः) जन्म रूपबन्धनसे पूर्ण रूप से मुक्त हो (अनामयम्) अनामी अर्थात् जन्म-मरण रोग रहित (पदम्) परम पद अर्थात् सतलोक को (गच्छन्ति) चले जाते हैं अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जन्म-मरण का रोग पूर्णरूप से समाप्त हो जाता है। (51)

अध्याय 2 का श्लोक 52

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।५२।

यदा, ते, मोहकलिलम्, बुद्धिः, व्यतितरिष्यति,

तदा, गन्तासि, निर्वेदम्, श्रोतव्यस्य, श्रुतस्य, च।।52।।

अनुवाद : (यदा) जिस कालमें (ते) तेरी (बुद्धिः) बुद्धि (मोहकलिलम्) मोहरूप अर्थात् अज्ञान रूप दलदलको (व्यतितरिष्यति) भलीभाँति पार कर जाएगी अर्थात् आपको तत्वज्ञान हो जायेगा (तदा) उस समय तू (श्रुतस्य) सुने हुए (च) और (श्रोतव्यस्य) सुननेमें आनेवाले इस लोक और परलोक अर्थात् स्वर्ग-महास्वर्ग सम्बन्धी सभी भोगों का सुना सुनाया लोकवेद (निर्वेदम्) वेद विस्द्ध ज्ञान अर्थात् ज्ञानहीन वार्ता (गन्तासि) जैसा गया गुजरा महसूस होगा। (52)

अध्याय 2 का श्लोक 53

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।५३।

श्रुतिविप्रतिपन्ना, ते, यदा, स्थास्यति, निश्चला,

समाधौ, अचला, बुद्धिः, तदा, योगम्, अवाप्स्यसि।।53।।

अनुवाद : (श्रुतिविप्रतिपन्ना) भाँति-भाँतिके वचनोंको सुननेसे विचलित हुई (ते) तेरी (बुद्धिः) बुद्धि (अचला) स्थिर होकर (यदा) जब (समाधौ) तत्वज्ञान के आधार से एक परमात्मा के चिन्तन में (अचला)स्थाई रूप से (स्थास्यति) ठहर जायेगी (तदा) तब तू (योगम्) योग अर्थात् भक्तिको (अवाप्स्यसि) प्राप्त हो जायेगा। तब तेरी भक्ति प्रारम्भ हो जायेगी। अर्थात् तब तू योगी बनेगा। गीता अध्याय 6 श्लोक 46 में कहा है कि अर्जुन तू योगी बन। (53)

अध्याय 2 का श्लोक 54 (अर्जुन उवाच)

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत् ब्रजेत किम्। ५४।

स्थितप्रज्ञस्य, का, भाषा, समाधिस्थस्य, केशव,

स्थितधीः, किम्, प्रभाषेत, किम्, आसीत्, ब्रजेत, किम्।।54।।

अनुवाद : (केशव) हे केशव! (समाधिस्थस्य) सहज समाधिमें स्थित (स्थितप्रज्ञस्य) परमात्माको प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुषका (का) क्या (भाषा) परिभाषा अर्थात् लक्षण है? वह (स्थितधीः) स्थिरबुद्धि पुरुष (किम्) कैसे (प्रभाषेत) बोलता है (किम्) कैसे (आसीत्) बैठता है और (किम्) कैसे (ब्रजेत) चलता है। (54)

अध्याय 2 का श्लोक 55 (भगवान उवाच)

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्यार्थं मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते। ५५।

प्रजहाति, यदा, कामान्, सर्वान्, पार्थ, मनोगतान्

आत्मनि, एव, आत्मना, तुष्टः, स्थितप्रज्ञः, तदा, उच्यते।।55।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (यदा) जिस कालमें यह पुरुष (मनोगतान्) मनमें स्थित (सर्वान्) सम्पूर्ण (कामान्) कामनाओंको (प्रजहाति) भलीभाँति त्याग देता है और (आत्मना) आत्मासे अर्थात् समर्पण भाव से (आत्मनि) आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा में (एव) ही (तुष्टः) संतुष्ट रहता है, (तदा) उस कालमें वह (स्थितप्रज्ञः) स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थाई बुद्धि वाला (उच्यते) कहा जाता है अर्थात् फिर वह विचलित नहीं होता, केवल तत्त्वदर्शी संत के तत्त्वज्ञान पर पूर्ण रूप से आधारित रहता है। वह योगी है। (55)

अध्याय 2 का श्लोक 56

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते। ५६।

दुःखेषु, अनुद्विग्नमनाः, सुखेषु, विगतस्पृहः,

वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीः, मुनिः, उच्यते।।56।।

अनुवाद : (दुःखेषु) दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर (अनुद्विग्नमनाः) जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता (सुखेषु) सुखोंकी प्राप्तिमें (विगतस्पृहः) जो सर्वथा इच्छा रहित है तथा (वीतरागभयक्रोधः) जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं ऐसा (मुनिः) मुनि अर्थात् साधक (स्थितधीः) स्थिरबुद्धि (उच्यते) कहा जाता है। (56)

अध्याय 2 का श्लोक 57

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। ५७।

यः, सर्वत्र, अनभिस्नेहः, तत्, तत्, प्राप्य, शुभाशुभम्,

न, अभिनन्दति, न, द्वेष्टि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।।57।।

अनुवाद : (यः) जो (सर्वत्र) सर्वत्र (अनभिस्नेहः) स्नेहरहित हुआ (तत् तत्) उस-उस (शुभाशुभम्) शुभ या अशुभ वस्तु को (प्राप्य) प्राप्त होकर (न) न (अभिनन्दति) प्रसन्न होता है और

(न) न (द्वेष्टि) द्वेष करता है। (तस्य) उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थिर है। (57)

अध्याय 2 का श्लोक 58

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।५८।

यदा, संहरते, च, अयम्, कूर्मः, अंगानि, इव, सर्वशः,

इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।।58।।

अनुवाद : (च) और जिस प्रकार (कूर्मः) कछुआ (सर्वशः) सब ओरसे अपने (अंगानि) अंगोंको (इव) जैसे समेट लेता है वैसे ही (यदा) जब (अयम्) यह पुरुष (इन्द्रियार्थेभ्यः) इन्द्रियोंके विषयोंसे (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको (संहरते) सब प्रकारसे हटा लेता है तब (तस्य) उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थिर है ऐसा समझना चाहिए। (58)

अध्याय 2 का श्लोक 59

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।५९।

विषयाः, विनिवर्तन्ते, निराहारस्य, देहिनः,

रसवर्जम्, रसः, अपि, अस्य, परम्, दृष्ट्वा, निवर्तते।।59।।

अनुवाद : (निराहारस्य) इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले (देहिनः) पुरुषके भी केवल (विषयाः) विकार (विनिवर्तन्ते) निवृत्त हो जाते हैं (रसवर्जम्) आसक्ति निवृत्त नहीं होती। (अस्य) इस स्थिर बुद्धि वालेके (परम्) उत्तम (दृष्ट्वा) देखने अर्थात् विकारों से होने वाली हानि को जानने वाले के (रसः) आसक्ति (अपि) भी (निवर्तते) निवृत्त हो जाती है। (59)

अध्याय 2 का श्लोक 60

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।६०।

यततः, हि, अपि, कौन्तेय, पुरुषस्य, विपश्चितः,

इन्द्रियाणि, प्रमाथीनि, हरन्ति, प्रसभम्, मनः।।60।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (हि) क्योंकि (प्रमाथीनि) ये प्रमथन स्वभाववाली (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ (यततः) यतन करते हुए (विपश्चितः) बुद्धिमान् (पुरुषस्य) पुरुषके (मनः) मनको (अपि) भी (प्रसभम्) बलात् (हरन्ति) हर लेती हैं। (60)

अध्याय 2 का श्लोक 61

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत् मत्परः।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।६१।

तानि, सर्वाणि, संयम्य, युक्तः, आसीत्, मत्परः,

वशे, हि, यस्य, इन्द्रियाणि, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता।।61।।

अनुवाद : (तानि) उन (सर्वाणि) सम्पूर्ण इन्द्रियोंको (संयम्य) वशमें करके (युक्तः) समाहित चित हुआ (मत्परः) शास्त्रानुसार साधना (आसीत्) में दृढता से लगे (हि) क्योंकि (यस्य) जिस पुरुषकी (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ (वशे) वशमें होती है (तस्य) उसकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थिर हो जाती है अर्थात् मन व इन्द्रियों के ऊपर बुद्धि की प्रभुता रहती है। (61)

अध्याय 2 का श्लोक 62

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते। ६२।

ध्यायतः, विषयान्, पुंसः, संग, तेषु, उपजायते, संग्गात्,
सजायते, कामः, कामात्, क्रोधः, अभिजायते।। 62।।

अनुवाद : (विषयान्) विषयोंका (ध्यायतः) चिन्तन करनेवाले (पुंसः) पुरुषकी (तेषु) उन विषयोंमें (संग) आसक्ति (उपजायते) उत्पन्न हो जाती है (संग्गात्) आसक्तिसे (कामः) उन विषयोंकी कामना (सजायते) उत्पन्न होती है और (कामात्) कामना में विघ्न पड़ने से (क्रोधः) क्रोध (अभिजायते) उत्पन्न होता है। (62)

अध्याय 2 का श्लोक 63

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति। ६३।

क्रोधात्, भवति, सम्मोहः, सम्मोहात्, स्मृतिविभ्रमः,

स्मृतिभ्रंशात्, बुद्धिनाशः, बुद्धिनाशात्, प्रणश्यति।।63।।

अनुवाद : (क्रोधात्) क्रोधसे (सम्मोहः) अत्यन्त मूढ़भाव (भवति) उत्पन्न हो जाता है (सम्मोहात्) मूढ़भावसे (स्मृतिविभ्रमः) स्मृतिमें भ्रम हो जाता है (स्मृतिभ्रंशात्) स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे (बुद्धिनाशः) बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्तिका नाश हो जाता है। और (बुद्धिनाशात्) बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे (प्रणश्यति) गिर जाता है। (63)

अध्याय 2 का श्लोक 64

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति। ६४।

रागद्वेषवियुक्तैः, तु, विषयान्, इन्द्रियैः, चरन्,

आत्मवश्यैः, विधेयात्मा, प्रसादम्, अधिगच्छति।।64।।

अनुवाद : (तु) परंतु (विधेयात्मा) तत्त्वज्ञान से अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक (आत्मवश्यैः) अपने वशमें की हुई (रागद्वेषवियुक्तैः) राग-द्वेषसे रहित (इन्द्रियैः) इन्द्रियोंद्वारा (विषयान्) विषयोंमें (चरन्) विचरण करता हुआ भी उसमें लीन न होकर (प्रसादम्) प्रसन्नताको (अधिगच्छति) प्राप्त होता है। (64)

अध्याय 2 का श्लोक 65

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते। ६५।

प्रसादे, सर्वदुःखानाम्, हानिः, अस्य, उपजायते,

प्रसन्नचेतसः, हि, आशु, बुद्धिः, पर्यवतिष्ठते।।65।।

अनुवाद : (प्रसादे) अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर (अस्य) इसके (सर्वदुःखानाम्) सम्पूर्ण दुःखोंका (हानिः) अभाव (उपजायते) हो जाता है और उस (प्रसन्नचेतसः) प्रसन्न-चित्तवाले कर्मयोगीकी (बुद्धिः) बुद्धि (आशु) शीघ्र (हि) ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही (पर्यवतिष्ठते) भलीभाँति स्थिर हो जाती है। (65)

अध्याय 2 का श्लोक 66

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् । ६६ ।

न, अस्ति, बुद्धिः, अयुक्तस्य, न, च, अयुक्तस्य, भावना,

न, च, अभावयतः, शान्तिः, अशान्तस्य, कुतः, सुखम् ॥66॥

अनुवाद : (अयुक्तस्य) न जीते हुए मन और इन्द्रियोवाले पुरुषमें (बुद्धिः) निश्चयात्मिका बुद्धि (न) नहीं (अस्ति) होती (च) और उस (अयुक्तस्य) अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें (भावना) भावना भी (न) नहीं होती (च) तथा (अभावयतः) भावनाहीन मनुष्यको (शान्तिः) शान्ति (न) नहीं मिलती और (अशान्तस्य) शान्तिरहित मनुष्यको (सुखम्) सुख (कुतः) कैसे मिल सकता है? (66)

भावार्थ :- जिस साधक का संशय निवारण नहीं हो जाता अर्थात् जिसे तत्त्वदर्शी संत नहीं मिलता जिससे उसकी बुद्धि एक परमात्मा की भक्ति के स्थान पर नाना प्रकार की साधना व कामना करता रहता है, उस साधक को कोई लाभ नहीं होता ।

अध्याय 2 का श्लोक 67

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि । ६७ ।

इन्द्रियाणाम्, हि, चरताम्, यत्, मनः, अनु, विधीयते,

तत्, अस्य, हरति, प्रज्ञाम्, वायुः, नावम्, इव, अम्भसि ॥67॥

अनुवाद : (हि) क्योंकि (इव) जैसे (अम्भसि) जलमें चलनेवाली (नावम्) नावको (वायुः) वायु (हरति) हर लेती है वैसे ही (चरताम्) विषयोंमें विचरती हुई (इन्द्रियाणाम्) इन्द्रियोंमेंसे (मनः) मन (यत्) जिस इन्द्रियके (अनु) अधूरे (विधीयते) ज्ञान पर आधारित हो जाता है (तत्) जिस कारण से (अस्य) इस अयुक्त पुरुष की (प्रज्ञाम्) बुद्धि हर ली जाती है । (67)

अध्याय 2 का श्लोक 68

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता । ६८ ।

तस्मात् यस्य, महाबाहो, निगृहीतानि, सर्वशः,

इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेभ्यः, तस्य, प्रज्ञा, प्रतिष्ठिता ॥68॥

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये (महाबाहो) हे महाबाहो! (यस्य) जिस पुरुषकी (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ तत्त्वज्ञान के आधार से (इन्द्रियार्थेभ्यः) इन्द्रियोंके विषयोंसे (सर्वशः) सब प्रकार (निगृहीतानि) निग्रह की हुई हैं (तस्य) उसीकी (प्रज्ञा) बुद्धि (प्रतिष्ठिता) स्थिर है । (68)

अध्याय 2 का श्लोक 69

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः । ६९ ।

या, निशा, सर्वभूतानाम्, तस्याम्, जागर्ति, संयमी,

यस्याम्, जाग्रति, भूतानि, सा, निशा, पश्यतः, मुनेः ॥69॥

अनुवाद : (सर्वभूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियों के लिये (या) जो (निशा) रात्रिके समान है (तस्याम्) उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दकी प्राप्तिमें (संयमी) स्थितप्रज्ञ योगी (जाग्रति) जागता

हैं और (यस्याम्) जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्ति में (भूतानि) सब प्राणी (जाग्रति) जागते हैं (पश्यतः) परमात्माके तत्त्वको जाननेवाले (मुनेः) मुनिके लिये (सा) वह (निशा) रात्रिके समान है। (69)

अध्याय 2 का श्लोक 70

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं-

समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे

स शान्तिमाप्नोति न कामकामी। ७०।

आपूर्यमाणम्, अचलप्रतिष्ठम्, समुद्रम्, आपः, प्रविशन्ति, यद्वत्,

तद्वत्, कामाः, यम्, प्रविशन्ति, सर्वे, सः, शान्तिम्, आप्नोति, न, कामकामी।।70।।

अनुवाद : (यद्वत्) जैसे नाना नदियोंके (आपः) जल जब (आपूर्यमाणम्) सब ओरसे परिपूर्ण (अचलप्रतिष्ठम्) अचल प्रतिष्ठावाले (समुद्रम्) समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही (प्रविशन्ति) समा जाते हैं (तद्वत्) वैसे ही (सर्वे) सब (कामाः) भोग (यम्) जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही (प्रविशन्ति) समा जाते हैं (सः) वही पुरुष (शान्तिम्) परम शान्तिको (आप्नोति) प्राप्त होता है (कामकामी) भोगोंको चाहनेवाला (न) नहीं। (70)

अध्याय 2 का श्लोक 71

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति। ७१।

विहाय, कामान्, यः, सर्वान्, पुमान्, चरति, निःस्पृहः,

निर्ममः, निरहंकारः, सः, शान्तिम्, अधिगच्छति।।71।।

अनुवाद : (यः) जो (पुमान्) पुरुष (सर्वान्) सम्पूर्ण (कामान्) कामनाओंको (विहाय) त्यागकर (निर्ममः) ममता रहित (निरहंकारः) अहंकाररहित और (निःस्पृहः) स्पृहारहित हुआ (चरति) विचरता है (सः) वही (शान्तिम्) शान्तिको (अधिगच्छति) प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है। (71)

अध्याय 2 का श्लोक 72

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति। ७२।

एषा, ब्राह्मी, स्थितिः, पार्थ, न, एनाम्, प्राप्य, विमुह्यति,

स्थित्वा, अस्याम्, अन्तकाले, अपि, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋच्छति।।72।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (एषा) यह इच्छाओं आदि का त्याग, अहंकार रहित उपरोक्त स्थिति (ब्राह्मी) परमात्मा को प्राप्त साधक की (स्थितिः) स्थिति है। (एनाम्) इसको (प्राप्य) प्राप्त (न) न होकर साधक (विमुह्यति) विषयों में मोहित हो जाता है और (अन्तकाले) अन्त समय में (अस्याम्) जिस साधक के विकार समाप्त नहीं हुए वह इस स्थितिमें (स्थित्वा) स्थित होकर (अपि) भी (ब्रह्मनिर्वाणम्) पूर्ण परमात्माको (ऋच्छति) प्राप्त होने की क्षमता समाप्त हो जाती है अर्थात् पूर्ण परमात्मा प्राप्ति के लाभ से वंचित रह जाता है। (72)

भावार्थ :- जो साधक पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके साधना सम्पन्न नजर आता है, परंतु

विषय विकार त्याग नहीं करता, वह सर्व नाम प्राप्त करके भी पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति से वंचित रह जाता है। गीता अध्याय 2 श्लोक 70 में दोनों प्रकार के व्यक्तियों के विषय में कहा गया है। इसलिए श्लोक 71 में विकार रहित साधक के विषय में कहा है तथा श्लोक 72 में मोहित साधक के विषय में कहा है।

(इति अध्याय दूसरा)



* तीसरा अध्याय *

॥ सारांश ॥

गीता अध्याय 3 के श्लोक 1-2 में अर्जुन ने पूछा है कि हे जनार्दन! यदि आप कर्मों से बुद्धि (ज्ञान) को श्रेष्ठ मानते हो तो मुझे गुम राह किस लिए कर रहो हो? आप ठीक से सलाह दें जिससे मेरा कल्याण हो। आपकी ये दोतरफा (दोगली) सी बातें मुझे भ्रम में डाल रही हैं।

॥ शास्त्र विधि रहित पूजा अर्थात् मनमाना आचरण का विवरण ॥

गीता अध्याय 3 के श्लोक 3 से 8 में भगवान ने कहा है कि हे निष्पाप! (अर्जुन) इस लोक में ज्ञानी तो ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं तथा योगी कर्म योग को फिर भी ऐसा कोई नहीं है जो कर्म किए बिना बचे। फिर निष्कर्मता नहीं बन सकती और कर्म त्यागने मात्र से भी उद्देश्य (सिद्धि) प्राप्त नहीं हो सकता। अध्याय 3 श्लोक 4 में निष्कर्मता का भावार्थ है कि जैसे किसी व्यक्ति ने एक एकड़ गेहूँ की पक्की हुई फसल काटनी है तो उसे काटना प्रारम्भ करके ही फसल काटने वाला कार्य पूरा किया जाएगा तब कार्य शेष नहीं रहेगा इस प्रकार कार्य पूरा होने से ही निष्कर्मता प्राप्त होती है। ठीक इसी प्रकार शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म प्रारम्भ करने से ही परमात्मा प्राप्ति रूपी कार्य पूरा होगा। फिर निष्कर्मता बनेगी। कोई कार्य शेष नहीं रहेगा। यदि भक्ति कर्म नहीं करेंगे तो यह त्रिगुण माया (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) बलपूर्वक अन्य दुष्कर्मों में लगाएगी। चूंकि स्वभाव वश माया (प्रकृति) से उत्पन्न तीनों गुण (रज-ब्रह्मा, सत-विष्णु, तम-शिव) जीव से जबरदस्ती कर्म करवाते हैं। जो मूर्ख भक्तजन (साधक) कर्म इन्द्रियों को हठ पूर्वक रोक कर एक स्थान पर भजन पर बैठते हैं तो उनका मन ज्ञान इन्द्रियों के प्रभाव से प्रभावी रहता है। वे लोग दिखावा आडम्बर वश समाधिस्थ दिखाई देते हैं। वे पाखण्डी हैं अर्थात् कर्म त्याग से भजन नहीं बनता। करने योग्य कर्म करता रहे तथा ज्ञान से मन व इन्द्रियों को अच्छे कर्मों में संलग्न रखे तथा शास्त्रों की विधि से करने योग्य कर्म (भक्ति) करना श्रेष्ठ है यदि सांसारिक कर्म नहीं करेगा तो तेरा पेट गुजारा (परिवार पोषण) कैसे होगा? अध्याय 3 के श्लोक 9 में कहा है कि निष्काम भाव से शास्त्र अनुकूल किये हुए धार्मिक कर्म (यज्ञ) लाभदायक हैं।

विशेष :- उपरोक्त गीता अध्याय 3 श्लोक 6 से 9 तक एक स्थान पर एकान्त में विशेष आसन पर बैठ कर कान-आंखें आदि बन्द करके हठ करने की मनाही की है तथा शास्त्रों में वर्णित भक्ति विधि अनुसार साधना करना श्रेयकर बताया है। प्रत्येक सद्ग्रन्थों में सांसारिक कार्य करते-करते नाम जाप व यज्ञादि करने का भक्ति विधान बताया है।

प्रमाण :- पवित्र गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में कहा है कि मुझ ब्रह्म का उच्चारण करके सुमरण करने का केवल एक मात्र ओं अक्षर है जो इसका जाप अन्तिम स्वांस तक कर्म करते-करते भी करता है वह मेरे वाली परमगति को प्राप्त होता है।

फिर अध्याय 8 श्लोक 7 में कहा है कि हर समय मेरा स्मरण भी कर तथा युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे आदेश का पालन करते हुए अर्थात् सांसारिक कर्म करते-करते साधना करता हुआ मुझे ही प्राप्त होगा। भले ही अपनी परमगति को गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अति अश्रेष्ठ अर्थात् अति व्यर्थ बताया है। फिर भी ब्रह्म साधना की विधि यही है। फिर अध्याय 8 श्लोक 8 से 10 तक विवरण दिया है कि चाहे उस परमात्मा अर्थात् पूर्णब्रह्म की भक्ति करो, जिसका विवरण गीता अध्याय 18

श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में दिया है। उसका भी यही विधान है कि जो साधक पूर्ण परमात्मा की साधना तत्त्वदर्शी संत से उपदेश प्राप्त करके नाम जाप करता हुआ तथा सांसारिक कार्य करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है वह उस परम दिव्य पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा को ही प्राप्त होता है। तत्त्वदर्शी संत का संकेत गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में दिया है। तत्त्वदर्शी संत की पहचान गीता अध्याय 15 श्लोक 1 में है यही प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 तथा 13 में दिया है। यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 का भावार्थ :-

पवित्र वेदों को बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा के विषय में कोई तो कहता है कि वह अवतार रूप में उत्पन्न होता है अर्थात् आकार में कहा जाता है, कोई उसे कभी अवतार रूप में आकार में न आने वाला अर्थात् निराकार कहता है। उस पूर्ण परमात्मा का तत्त्वज्ञान तो धीराणाम् अर्थात् तत्त्वदर्शी संत ही बताएँगे कि वास्तव में पूर्ण परमात्मा का शरीर कैसा है? वह कैसे प्रकट होता है? पूर्ण परमात्मा की पूरी जानकारी धीराणाम् अर्थात् तत्त्वदर्शी संतों से सुनों। मैं वेद ज्ञान देने वाला ब्रह्म भी नहीं जानता। फिर भी अपनी भक्ति विधि को बताते हुए अध्याय 40 मंत्र 15 में कहा है कि मेरी साधना ओ३म् नाम का जाप कर्म करते-करते कर, विशेष आस्था के साथ सुमरण कर तथा मनुष्य जीवन का मुख्य कर्तव्य जान कर सुमरण कर, इससे मृत्यु उपरान्त अर्थात् शरीर छूटने पर मेरे वाला अमरत्व अर्थात् परमगति को प्राप्त हो जाएगा। जैसे सूक्ष्म शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है, कुछ समय तक अमर हो जाता है। जिस कारण स्वर्ग में चला जाता है। फिर जन्म-मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

॥ यज्ञों का लाभ केवल सांसारिक सुविधाएँ, मुक्ति नहीं ॥

अध्याय 3 के श्लोक 10 में कहा है कि प्रजापति ने कल्प (सृष्टिकाल) के प्रारम्भ में कहा था कि सब प्रजा यज्ञ करें। इससे तुम्हें सांसारिक भोग प्राप्त होंगे, न कि मुक्ति। इसका जीवित प्रमाण है कि यज्ञों से सांसारिक भोगों व स्वर्ग प्राप्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं। {यज्ञ भी आवश्यक हैं परंतु पूर्ण गुरु से नाम ले कर गुरु मर्यादा में रहते हुए अंतिम समय तक अनन्य मन से नाम जाप (अभ्यास योग) करता रहे वह साधक अंत में अपने इष्ट लोक में चला जाता है तथा वही यज्ञों में प्रतिष्ठित इष्ट (पूर्ण परमात्मा) ही मन इच्छित यज्ञों का फल देता है। प्रमाण के लिए गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 14-15 में देखें। अध्याय 3 के श्लोक 11 में कहा है कि देवता यज्ञ से उन्नत होकर आप को उन्नत करें अर्थात् धनवान बनाएंगे। इस प्रकार एक दूसरे का सहयोग रखो।

अध्याय 3 का श्लोक 10

सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्टा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः,

अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ॥10॥

अनुवाद : (प्रजापतिः) प्रजापति ने (पुरा) कल्पके आदिमें (सहयज्ञाः) यज्ञसहित (प्रजाः) प्रजाओंको (सृष्टा) रचकर उनसे (उवाच) कहा कि (अनेन) अन्न द्वारा होने वाला धार्मिक कर्म जिसे धर्म यज्ञ कहते हैं, जिसमें भण्डारे करना आदि है, इस यज्ञके द्वारा (प्रसविष्यध्वम्) वृद्धिको प्राप्त होओ और (वः) तुम को (एषः) यह पूर्ण परमात्मा (इष्टकामधुक्) यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट ही इच्छित भोग प्रदान करनेवाला (अस्तु) हो।

अध्याय 3 का श्लोक 11

देवान्, भावयत, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः,

परस्परम् भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ ॥11॥

हिन्दी अनुवाद :- यज्ञ के द्वारा देवताओं अर्थात् संसार रूपी वृक्ष की शाखाओं को उन्नत करो

और वे देवता अर्थात् शाखाएँ तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार एक दूसरे को उन्नत करके परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में वर्णित उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष है, उस की जड़ (मूल) तो पूर्ण परमात्मा है तथा तना परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष है तथा डार क्षर पुरुष (ब्रह्म) है व तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी रूपी शाखायें हैं। वृक्ष को मूल(जड़) से ही खुराक अर्थात् आहार प्राप्त होता है। जैसे हम आम का पौधा लगायेंगे तो मूल को सींचेंगे, जड़ से खुराक तना में जायेगी, तना से मोटी डार में, डार से शाखाओं में जायेगी, फिर उन शाखाओं को फल लगेंगे, फिर वह टहनियां अपने आप फल देंगी। इसी प्रकार पूर्णब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म रूपी मूल की पूजा अर्थात् सिंचाई करने से अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म रूपी तना में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी, फिर अक्षर पुरुष से क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म रूपी डार में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर ब्रह्म से तीनों गुण अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी रूपी तीनों शाखाओं में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर इन तीनों देवताओं रूपी टहनियों को फल लगेंगे अर्थात् फिर तीनों प्रभु श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी हमें संस्कार आधार पर ही कर्म फल देते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16 व 17 में भी है कि दो प्रभु इस पृथ्वी लोक में हैं, एक क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म, दूसरा अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म। ये दोनों प्रभु तथा इनके लोक में सर्व प्राणी तो नाशवान हैं, वास्तव में अविनाशी तथा तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करने वाला परमेश्वर परमात्मा तो उपरोक्त दोनों भगवानों से भिन्न है। देखें चित्र सीधा बीजा हुआ भक्ति रूपी पौधा पृष्ठ 363 पर।

॥ जो धर्म नहीं करते वे चोर व पापी प्राणी हैं ॥

गीता अध्याय 3 के श्लोक 12 में कहा है कि यज्ञ से पुष्ट(इष्ट) देवता आपको सांसारिक सुविधा(धन) कर्मफल के आधार पर देते हैं। फिर जो उसका कुछ अंश धर्म में नहीं लगाते अर्थात् जो धर्म यज्ञ आदि नहीं करते वे (संविधान तोड़े हुए हैं) पापी हैं, चोर हैं। गीता अध्याय 3 के श्लोक 13 में वर्णन है कि यज्ञ में प्रतिष्ठित (पूर्ण परमात्मा) इष्टदेव को भोग लगाकर फिर भण्डारा करें। वे साधक यज्ञ के द्वारा होने वाले लाभ को प्राप्त हो जाएंगे। [सर्व पापों से मुक्त होने का अभिप्राय यह है कि जो यज्ञ नहीं करते वे पापी कहे हैं और जो शास्त्र विधि के अनुसार (मतानुसार) यज्ञ करते हैं वे उन सर्व पापों से बच जाते हैं जो यज्ञ न करने से लगने थे] यदि कोई यज्ञ आदि नहीं करता वह तो चोर बताया है। प्रतिदिन तथा सतसंग के समय भोजन प्रसाद बनता है। सर्व प्रथम कुछ भोजन अलग निकाल कर पूर्ण परमात्मा को भोग लगाया जाना चाहिए। उसके पश्चात् शेष भोजन भण्डारा वितरित किया जाना चाहिए। प्रभु के भोग से बचा शेष भोजन व प्रसाद खाने वाले के कुछ पाप विनाश हो जाते हैं। इस प्रकार पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके फिर उसके बताए अनुसार सर्व भक्ति कार्य करने से साधक पूर्ण मुक्त हो जाता है।

॥ ब्रह्म (काल) की उत्पत्ति पूर्ण परमात्मा से ॥

गीता अध्याय 3 के श्लोक 14-15 में कहा है कि प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न वर्षा से होता है, वर्षा यज्ञ से होती है, यज्ञ शुभ कर्मों से उत्पन्न होते हैं तथा कर्म, ब्रह्म (काल) द्वारा उत्पन्न हुए और ब्रह्म (काल) अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। वही सर्वव्यापी अविनाशी परमात्मा सदा ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है अर्थात् यज्ञों से होने वाला लाभ भी वही (सतपुरुष ही) देता है। इसलिए यज्ञों का भी पूर्ण लाभ पूर्ण परमात्मा से ही सिद्ध हुआ। इन दोनों श्लोकों में स्पष्ट है कि काल (ब्रह्म)

की उत्पत्ति अविनाशी परमात्मा से हुई है। वही सर्वव्यापी परमात्मा ही यज्ञों द्वारा पूज्य है तथा वही फल देता है। 'सर्वगतम् ब्रह्म' का अर्थ है सर्वव्यापी भगवान। जैसे काल (ब्रह्म) भगवान तो केवल तीन लोक व इक्कीस ब्रह्माण्डों में व्यापक है। परब्रह्म केवल सात संख ब्रह्माण्डों में व्यापक है। परंतु पूर्णब्रह्म (सतपुरुष) असंख ब्रह्माण्डों (सर्व ब्रह्माण्डों) जिसमें ब्रह्म व परब्रह्म के ब्रह्माण्ड और अन्य ब्रह्माण्ड भी शामिल हैं, में व्यापक है। इसलिए सर्वव्यापक परमात्मा "पूर्ण ब्रह्म" हुआ जो सर्वव्यापक भगवान और कुल मालिक है। जैसे --

ईश = क्षर पुरुष = ब्रह्म (इक्कीस ब्रह्माण्ड में व्यापक है)
 ईश्वर = अक्षर पुरुष = परब्रह्म (सात संख ब्रह्माण्ड में व्यापक है)
 परमेश्वर=परम अक्षर पुरुष=पूर्णब्रह्म (सतपुरुष) जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों में सर्वव्यापक है।

जैसे मन्त्री अपने विभाग में व्यापक है, मुख्य मन्त्री अपने राज्य (स्टेट) में व्यापक है और प्रधान मन्त्री पूरे देश (राष्ट्र) के सब राज्यों (स्टेट्स) में व्यापक है और राष्ट्रपति भी सर्व राष्ट्र में व्यापक है प्रत्येक प्रभु में शक्ति है परंतु कुल मालिक (पूर्ण शक्ति युक्त) प्रधान मन्त्री तथा राष्ट्रपति हैं। इसी प्रकार ब्रह्म (ईश/काल) के तीनों पुत्र (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) राज्य अर्थात् एक ब्रह्माण्ड में विभागीय मन्त्री (स्वामी) हैं। ब्रह्मा सर्व जीवों के शरीर बनाने वाले विभाग का मालिक है, परंतु सब का मालिक नहीं है। इसी प्रकार विष्णु स्थिती करने वाले विभाग में मालिक है, परंतु सब का मालिक नहीं है। इसी प्रकार शिव (संहार करने) विनाश करने के विभाग के मालिक हैं परंतु सब के मालिक नहीं हैं। इसी प्रकार ब्रह्म (ईश/ज्योतिनिरंजन/काल) केवल इक्कीस ब्रह्माण्ड के मालिक हैं, सब के मालिक नहीं हैं। इसी प्रकार अक्षर पुरुष (ईश्वर/परब्रह्म) केवल सात संख ब्रह्माण्ड के मालिक हैं सर्व के मालिक नहीं हैं।

हाँ, पूर्णब्रह्म (परमेश्वर/सतपुरुष) अनंत करोड़ ब्रह्माण्डों जिसमें ब्रह्मा-विष्णु-शिव के तीनों (स्वर्ग-मृत्यु-पाताल) लोक, ब्रह्म के इक्कीस ब्रह्माण्ड व परब्रह्म के सात संख ब्रह्माण्ड भी शामिल हैं, का मालिक है अर्थात् कुल का मालिक सर्वव्यापक परमात्मा (सर्वगतम् ब्रह्म/ सतपुरुष) ही है जो सर्व साधनाओं का फल दाता है। जैसे वृक्ष की जड़ें (मूल) ही पूर्ण वृक्ष की पालन कर्ता हैं। ऐसे --

कबीर, अक्षर पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वाकी डार। तीनों देवा साखा हैं, पात रूप संसार॥
 कबीर, एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय। माली सीचै मूल कूं, फूलै फलै अघाय॥

गीता अध्याय 3 के श्लोक 16 में लिखा है कि जो यज्ञ नहीं करता वह व्यर्थ जीवन जी रहा है। जो व्यक्ति इस लोक में बने भक्ति नियमों (भजन करना, यज्ञ, दान, दया) का पालन नहीं करता, मौज मारता रहता है, वह पाप आत्मा व्यर्थ संसार में आया है।

गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि -

जिन पुत्र नहीं यज्ञ करी, पिंड प्रधान पुराण। नाहक जग में अवतरे, जिनसे नीका श्वान॥

[परंतु मुक्ति नहीं है बल्कि यह लेन-देन बताया। इसी प्रकार गीता जी के अध्याय 3 के श्लोक 9 से 16 तक का भावार्थ है कि यज्ञ करने से मात्र एक सांसारिक सुविधा उपलब्ध होती है, मुक्ति नहीं। साथ में यह भी सिद्ध हुआ कि यह सर्व सुविधा भी पूर्णब्रह्म सतपुरुष (मूल जड़ों) द्वारा दी जाती है जो स्वयं कबीर साहेब (कविर्देव) हैं।] मुझ दास के अतिरिक्त सर्व श्रीमद्भगवद् गीता जी के अनुवाद कर्ताओं ने ब्रह्म का अर्थ वेद तथा परमात्मा दोनों किया है। इससे उनकी अल्पज्ञता का ही प्रमाण है, ब्रह्म का अर्थ परमात्मा होता है, वेद नहीं। जैसे एक तो राजा होता है, वह तो ब्रह्म जानों तथा एक उसके द्वारा बनाया गया संविधान होता है वह वेद जानों। कोई अनजान राजा का अर्थ

नरेश न करके संविधान करे तो उचित नहीं। इसलिए ब्रह्म का अर्थ परमात्मा होता है। जैसे किसी उपायुक्त के कार्यालय के अन्य अधिकारी व कर्मचारी आपस में चर्चा करते समय बार-बार उपायुक्त साहेब न कह कर केवल साहेब ही प्रयोग करते हैं। उपायुक्त साहेब का कोई आदेश एक-दूसरे को सुनाते समय कहते हैं कि साहेब ने कहा है कि अमुक दस्तावेज तैयार करो। उनके लिए उपायुक्त साहेब स्वयं ही जाना माना होता है।

इसी प्रकार कौल (ज्योति निरंजन-काल) के इक्कीस ब्रह्मण्डों में इसी क्षर पुरुष को साहेब अर्थात् ब्रह्म नाम से जाना जाता है। इसलिए उपरोक्त श्लोकों में जाना-माना होने के कारण लिखा है कि ब्रह्म (काल) की उत्पत्ति अविनाशी परमात्मा (सर्व व्यापक पूर्ण परमात्मा) से हुई है। वही सर्वगतम् ब्रह्म अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा ही यज्ञों में प्रतिष्ठित है।

गीता अध्याय 3 के श्लोक 17-18 का अर्थ है कि जो व्यक्ति आत्म-तत्व का ध्यान करता है उसे अन्य यज्ञों की भी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि ध्यान भी एक यज्ञ है तथा ध्यान वही व्यक्ति अधिक करता है जो वान परस्थ हो जाता है जैसे श्रंगी ऋषि हुआ था। वह भी ध्यान में रहता था। फिर वह अन्य यज्ञ नहीं कर सकता। परंतु तत्वज्ञान हो जाने के पश्चात् साधक न तो शास्त्र विधि रहित साधना (मनमाना आचरण) करता है तथा न ही स्वार्थवश करवाता है। उसका उद्देश्य स्वार्थवश धन उपार्जन नहीं रहता। इसलिए कहा है कि कोई कार्य नहीं रहता अर्थात् निरंतर प्रभु चिन्तन में ही मग्न रहता है।

॥ मनोकामना पूर्ति की इच्छा के बिना किया हुआ धर्म पूर्ण लाभदायक ॥

गीता अध्याय 3 के श्लोक 19-20 में प्रमाण है कि -

बिन इच्छा जो देत है, सो दान कहावै। फल बाचैं नहीं तासका, सो अमरापुर जावै।
राजा जनक भी यज्ञ आदि करते थे परंतु इच्छा रूपी नहीं। मनुष्य का कर्तव्य समझ कर किया गया यज्ञ परमात्मा प्राप्ति में सहयोग देता है तथा यज्ञ का फल भी देता है।

॥ कथनी और करनी में अंतर ॥

गीता अध्याय 3 के श्लोक 21 से 24 में कहा है कि हे अर्जुन! ज्ञानी साधु संतों ने अच्छे कर्म शास्त्र अनुकूल करने चाहिए। चूंकि उर्हीं (संत जनों) का अनुसरण अन्य समाज भी करता है। जबकि मुझे तीन लोक में कोई कर्म करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि तीन लोक की सर्व सुविधा में बिन कर्म किए भी प्राप्त कर सकता हूँ। फिर भी अच्छे कर्म करता हूँ ताकि अन्य प्राणी भी मेरा अनुसरण करें, नहीं तो मैं समाज का नाश करने वाला वर्णशंकरता को पैदा करने वाला साबित हो जाऊँ।

विचार करें :- कुंवारी राधा से रमण (काम क्रीड़ा), कुंवारी कुब्जा से भोग विलास, गोपियों के वस्त्र हरण करना तथा उनको जल से निःवस्त्र बाहर निकालना। गोपियों ने जल से बाहर आते समय एक हाथ से गुप्तांग को ढका हुआ था तथा दूसरे से अपनी छातियों को छुपा रखा था। फिर भी भगवान बोले ऐसे नहीं, दोनों हाथ ऊपर करो, तब कपड़े मिलेंगे। जब सब गोपियों ने दोनों हाथ ऊपर किए, उस समय वे बिल्कुल नग्न थीं। तब भगवान कृष्ण जी ने उनके कपड़े दिए। अधिक जानकारी के लिए पढ़ें "श्री मद्भागवत सुधा सागर"।

फिर रूकमणी को जबरदस्ती उठा कर भाग जाना और जब उसके भाई रूकमी ने अपनी बहन की इज्जत बचाने के लिए पीछा किया तो श्री कृष्ण जी ने उसे रथ से बांध कर घसीटा।

फिर अर्जुन को क्षत्री धर्म पालन न करने से होने वाली हानि जोर देकर समझाना तथा स्वयं

काल्यवन राजा के सामने युद्ध छोड़ कर भाग जाना, क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध आचरण है।

युधिष्ठिर से झूठ बुलवाना कि कह दे कि अश्वत्थामा (द्रोणाचार्य का पुत्र) मर गया आदि-2। कथनी और करनी में अंतर भी यह सिद्ध करता है कि भगवान कृष्ण जी ने श्रीमद् भगवद् गीता नहीं कही। भगवान गीता जी में कहता है कि यदि सोच समझ कर कर्म न करूं तो मैं वर्णशंकरता का कारण साबित होऊँ। फिर कथन से विरुद्ध आचरण। पवित्र श्रीमद् भगवद् गीता जी श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रविष्ट करके काल (ब्रह्म) भगवान ने अपना उल्लु सीधा (युद्ध करवा कर लाखों व्यक्तियों का संहार करवाना था) करने के लिए कही, क्योंकि काल (ब्रह्म) ने गीता अध्याय 11 श्लोक 48 में कहा है कि मैं किसी को किसी भी साधना से दर्शन नहीं दूंगा। परंतु सर्व कार्य मेरे द्वारा गुप्त शक्ति (निराकार शक्ति) से किए जाएंगे।

॥ विद्वानों (शिक्षित) व्यक्तियों को चाहिए कि वे शास्त्रों अनुसार साधना करें :- ॥

गीता अध्याय 3 श्लोक 25 से 29 तक का भावार्थ :- पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 श्लोक 13 में वेद ज्ञान दाता ब्रह्म ने कहा है कि जिस व्यक्ति को अक्षर ज्ञान है उसे विद्वान कहते हैं जिसे अक्षर ज्ञान नहीं है उसे अविद्वान कहते हैं। परन्तु विद्वान तथा अविद्वान की वास्तविक जानकारी तत्त्वदर्शी सन्त ही बताते हैं उनसे सुनों। पूर्ण परमात्मा कविदेव जी ने अपनी अमृतवाणी कविगिर (कविर्वाणी) में विद्वान तथा अविद्वान की परिभाषा बताई है। कहा है कि जिसे तत्त्वज्ञान है वह वास्तव में विद्वान है। केवल अक्षर ज्ञान (किसी भाषा का ज्ञान) होने से विद्वान नहीं होता। क्योंकि जो संस्कृत भाषा में विद्वान माना जाता है वह पंजाबी भाषा को न जानने वाला उस भाषा में अविद्वान है।

इसी आधार से गीता अध्याय 3 श्लोक 25 से 29 तक के ज्ञान को जानना है। श्लोक 25 में कहा है कि शास्त्रअनुकूल साधना रूपी कर्तव्य कर्म में आसक्त अविद्वान अर्थात् अशिक्षित जिस प्रकार भक्ति कर्तव्य कर्म करते हैं। विद्वान (शिक्षित) भी लोक संग्रह अर्थात् अधिक अनुयाई इकट्ठे करना चाहता हुआ उसी प्रकार करे (जैसे अविद्वान अर्थात् भोले भाले अशिक्षित शास्त्रअनुकूल साधना तत्त्वदर्शी सन्त से प्राप्त करके करते हैं इस प्रकार पाप को प्राप्त नहीं होगा।) अध्याय 3 श्लोक 26 का भावार्थ है कि तत्त्वदर्शी सन्त द्वारा शास्त्रविधि अनुसार साधना प्राप्त अशिक्षित व्यक्ति की बुद्धि में शिक्षित (अक्षर ज्ञान युक्त) व्यक्ति भ्रम उत्पन्न न करे अपितु स्वयं भी शास्त्रअनुसार साधना करे तथा उनको भी प्रोत्साहित करे जैसे परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी तत्त्वदर्शी संत की भूमिका करने के लिए काशी नगर में जुलाहा जाति में प्रकट हुए। लोग उन्हें अशिक्षित अर्थात् अविद्वान मानते थे। परन्तु वे सर्व विद्वानों के विद्वान तथा सर्व भगवानों के भगवान थे। अन्य अशिक्षित व्यक्तियों को शास्त्रविधि अनुसार साधना प्रदान करते थे। अन्य अक्षर ज्ञानयुक्त व्यक्ति (ब्राह्मण) उन मन्दबुद्धि वाले भोले-भाले व्यक्तियों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर देते थे कहा करते यह जुलाहा तो अशिक्षित है। यह क्या जाने शास्त्रों के गूढ़ रहस्य को तुम्हारी साधना व्यर्थ है। वे भोले-भाले अशिक्षित विचलित हो जाते थे तथा मार्ग भ्रष्ट होकर जीवन व्यर्थ कर लेते थे। गीता अध्याय 3 श्लोक 26 में यही कहा है कि वह विद्वान (शिक्षित व्यक्ति) यदि जनता को शिष्य रूप में इकट्ठा करना चाहता है तो स्वयं भी शास्त्रअनुसार साधना करे तथा उन भोले भालो से भी करावे। श्लोक 27 से 29 का भावार्थ है कि प्राणी जब तक पूर्ण सन्त की शरण ग्रहण नहीं करता तब तक अपने संस्कार ही प्राप्त करता है। संस्कार का फल तीनों भगवानों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव) द्वारा दिया जाता है तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा

तमगुण शिव) प्रकृति अर्थात् दुर्गा से उत्पन्न है। वह शिक्षित व्यक्ति तत्त्वज्ञान से अपरिचित होने से मूढ़ कहा जाता है फिर वह अहंकार वश अपने को कर्मों का कर्ता मानता है। अहंकार वश सर्व शास्त्रों को तत्त्वज्ञानी द्वारा अच्छी तरह समझ कर भी अपने अहंकार युक्त हठ को स्वभाव वश नहीं छोड़ता अर्थात् वास्तविकता को आँखों देखकर भी स्वीकार नहीं करता परन्तु तत्त्वदर्शी सन्त तत्त्वज्ञान के आधार से प्रत्येक प्रभु की शक्ति से परिचित होकर इन भगवानों व शास्त्रों विरुद्ध साधना पर आसक्त नहीं होता। वे शिक्षित परन्तु तत्त्वज्ञान से अपरिचित स्वयं तो तीनों प्रभुओं में अपने स्वभाव वश आसक्त रहते हैं उनको चाहिए कि वे उन पूर्णतया न समझने वाले मन्द बुद्धि अर्थात् भोले-भाले अशिक्षितों को पूर्णतया शास्त्र समझ कर भी अहंकार वश सत्य न स्वीकार करने वाले विद्वान अर्थात् शिक्षित जन विचलित न करें। इसलिए उन अशिक्षितों को श्लोक 35 में सावधान किया है कि दूसरों की शास्त्रविरुद्ध साधना जो गुण रहित है चाहे कितनी ही तड़क-भड़क वाली व देखने व सुनने में अच्छी हो उसे स्वीकार न करें। अपनी शास्त्र अनुकूल साधना को मरते दम तक करता रहे। दूसरों की साधना भय उत्पन्न कर देती है जिस कारण मन्द बुद्धि व्यक्ति वास्तविक साधना को त्याग कर गुण रहित धर्म (धार्मिक क्रिया) को स्वीकार कर लेते हैं। जो बहुत हानिकारक होती है।

गीता अध्याय 3 के श्लोक 30 में कहा है कि अर्जुन अब ज्ञान योग द्वारा मेरे पर आश्रित होकर अर्थात् सर्व धार्मिक कर्मों को मुझ में त्याग कर निःइच्छा, ममता रहित, दुःख त्याग कर युद्ध कर।

विचार करें :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 31-32 का सार है कि जो ऊपर लिखे मेरे मत का अनुसरण करते हैं वे बुरे कर्मों से बच जाते हैं। जो ऐसा नहीं करते वे मूर्ख-अज्ञानी हैं। वे सर्व शास्त्र विरुद्ध ज्ञानों पर आसक्त हैं जो हानिकारक है। उनका पतन निश्चय है। ऊपर लिखे मत (सलाह) से तात्पर्य यह है कि देवी-देवताओं, प्रेतों व पित्रों की पूजा न करके केवल परमात्मा की आराधना करनी चाहिए। यज्ञ व ऊँ नाम का जाप भी निष्काम भाव से अपना मानव कर्तव्य जान कर तथा पूरा गुरु बनाकर शास्त्र अनुकूल करना चाहिए। शिक्षित व्यक्तियों को शास्त्रविधि अनुसार साधना कर रहे अशिक्षितों को भ्रमित नहीं करना चाहिए अपितु स्वयं भी उसी शास्त्रविधि अनुसार साधना को स्वीकार करके आत्मकल्याण कराना चाहिए।

विचार करें :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 33-34 में कहा है कि शिक्षित व्यक्ति जो तत्त्वज्ञान हीन हैं वे मूढ़ स्वभाव वश आँखों देखकर भी सत्य को स्वीकार नहीं करते तथा उन चातुर (शिक्षित) व्यक्तियों के अनुयाई भी अपने स्वभाववश सत्य को स्वीकार न करके उन चालाक गुरुओं के साथ ही चिपके रहते हैं वे भी मूढ़ हैं। समझाने से भी नहीं मानते। हठ करके भी उन्हें समझाना अति कठिन है। कबीर परमेश्वर से तत्त्वज्ञान प्राप्त करके सन्त गरीबदास जी महाराज ने कहा है :- गरीब चातुर प्राणी चोर हैं, मूढ़ मुग्ध हैं ठोठ। सन्तों के नहीं काम के इनको दे गल जोट ॥

इसी अध्याय 3 श्लोक 33-34 में यह भी कहा है कि राग द्वेष नहीं करना चाहिए। स्वयं भगवान कृष्ण जी पाण्डवों के राग में महाभारत के युद्ध के दौरान अश्वत्थामा (द्रौणाचार्य के पुत्र) के बारे में युधिष्ठिर से भी झूठ बुलवाई तथा बबरु भान (जिसे श्याम जी भी कहते हैं) का सिर कटवाया कहीं बबरु भान पाण्डवों को पराजित न कर दे। क्योंकि बबरु भान एक बलशाली योद्धा तथा धनुषधारी था जिसने एक ही तीर से पीपल के पेड़ के सभी पत्ते छेद दिए थे और कसम उठा रखी थी कि जो सेना हारती दिखाई देगी उसी के पक्ष में युद्ध करूंगा। कृष्ण जी में प्रवेश काल ने पाण्डवों को विजयी करना था।

एक समय भस्मागिरी ने भगवान शिव को वचन बद्ध करके भस्म कंडा मांग कर शिव को मारना चाहा था। पार्वती को पत्नी बनाने का दुषविचार करके शिव के पीछे भागा तो भगवान श्री विष्णु जी ने शिव जी के राग में पार्वती का रूप बनाया तथा भस्मागिरी को गंडहथ नाच नचा कर भस्म किया। “गरीब, शिव शंकर के राग में, बहे कृष्ण मुरारी।” राग द्वेष से भगवान भी नहीं बचे क्योंकि पाण्डवों से राग तो कौरवों से द्वेष तथा शिवजी से राग तो भस्मागिरी से द्वेष स्वयं सिद्ध है। आम प्राणी (अर्जुन) कैसे राग द्वेष से बच सकता है? द्वेष बिना युद्ध हो ही नहीं सकता। इससे सिद्ध है कि गीता जी में ज्ञान तो काल भगवान (ब्रह्म) ने सही दिया परंतु जीव में विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, राग-द्वेष तथा शब्द-स्पर्श, रूप, रस, गंध) भर दिए जिनसे परवश होकर भगवान काल के अवतार भी विवश हो गए जिसके कारण काल जाल से नहीं निकल सकते। इसको (काल को) डर बना रहता है कि कहीं जीव तरे जाल से निकल न जाएं। इसलिए पूर्ण सन्त की शरण ग्रहण करके पूर्ण परमात्मा की भक्ति करो।

॥ दूसरों की दिखावटी घटिया साधना से अपनी शास्त्रविधि अनुसार साधना अच्छी ॥

विचार करें :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 35 में कहा है कि दूसरों की गलत साधना (गुण रहित) जो शास्त्रानुकूल नहीं है। चाहे वह कितनी ही अच्छी नजर आए या वे नादान चाहे आपको कितना ही डराये उनकी साधना भयवश होकर स्वीकार नहीं करनी चाहिए। अपनी शास्त्रानुकूल गुरु जी द्वारा दिया गया उपदेश पर दृढ़ विश्वास के साथ लगे रहना चाहिए। विचलित नहीं होना चाहिए। अपनी सत्य पूजा अंतिम स्वांस तक करनी चाहिए तथा अपनी सत्य साधना में मरना भी बेहतर है।

॥ एक दुःखी परिवार की कहानी ॥

उदाहरण :- भक्त रमेश जैन पुत्र श्री ओ३मप्रकाश जैन, 509६3, शांती नगर, पटियाला चौक, जीन्द (हरियाणा) में रहता है। जिसका टेलिफोन नं. 01681-225903 है। इसकी पत्नी का नाम भक्तमती कमलेश है तथा चार संतान हैं - दो लड़की तथा छोटे दो जुड़वा लड़के (सुनिल व अनिल) हैं। इस परिवार पर कर्मदण्ड की मार इतनी थी कि सुनकर भी कलेजा कांप उठता है। भक्त रमेश जैन की पटियाला चौक, जीन्द (हरियाणा) में रंग रोगन की दुकान है। इसकी पत्नी कमलेश को दमा बहुत वर्षों से था। एक लड़की बड़ी से छोटी जो उस समय 8 वर्ष की थी को बचपन से दौरे पड़ते थे। सब जगह डॉ. व हस्पतालों से ईलाज करवा लिया था। लेकिन आराम नहीं मिला। अपनी परम्परागत पूजा जैन धर्म की भी करते थे। इसके साथ-साथ अन्य संतों, सेवड़ों व झाड़ा आदि लगाने वालों से भी राहत चाही। देवी-देवताओं की पूजा, पित्रों की पूजा, गुगा पीर की पूजा, हनुमान की पूजा, राम-कृष्ण की पूजा, मन्दिर में मूर्ति पूजा, श्राद्ध निकालना आदि सब करते थे। दोनों लड़के (सुनिल-अनिल) जन्म से बीमार रहते थे। उस समय (जब यह परिवार जनवरी 1995 में नाम लेकर कबीर साहिब की शरण में इस दास के माध्यम से आया) जुड़वाँ बच्चों की आयु 5 वर्ष की थी। भक्त रमेश व बहन कमलेश ने बताया कि इन लड़कों पर दवाई खर्च लगभग तीन लाख रूपए हो चुका है और कमलेश व लड़की की बीमारी का खर्च अलग था। एक साधारण दुकानदार भला इतने खर्च को किस प्रकार सहन करे? जो पैसा बचता सब बीमार पर लग जाता था। कर्ज भी काफी हो गया था। फिर उन्होंने सतसंग सुना कि दुःखी जीव जो परमात्मा कबीर साहिब की शरण में आकर ठीक हो गए और सत भक्ति पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष कबीर साहिब) की कर रहे हैं। अन्य सर्व पूजा जो काल तक की करते थे त्याग कर सुखी हो गए, उनकी जुबानी सुन

कर विश्वास हो गया कि अब हमें सही ठिकाना (सतमार्ग) पाया है और जनवरी 1995 में उन्होंने नाम ले लिया। अपने पूर्ण ब्रह्म कबीर साहिब के चरणों में सच्चे दिल से भक्ति करने लग गए और शास्त्रानुकूल साधना गुरु जी के बताए अनुसार शुरु कर दी।

कुछ दिनों बाद बहन कमलेश को दमा नहीं रहा, न ही लड़की को दौरे तथा दोनों लड़के भी पूर्णरूप से स्वस्थ हो गए। उन्होंने सुख की स्वांस ली। फिर लगभग नौ महीने के बाद गुगापीर की पूजा का दिन आ गया। उस दिन कमलेश की पड़ोसन ने आकर कहा 'क्या कमलेश गुगा पीर की पूजा नहीं करनी?' बहन कमलेश ने कहा 'हमने कबीर साहिब की शरण (नाम मन्त्र) ले रखी है और हमारे गुरु जी ने सर्व देवी-देवताओं की पूजा तथा व्रत आदि मना कर रखे हैं।' यह सुन कर पड़ोसन ने कहा 'नादान अपनी पुरानी साधना नहीं छोड़ा करते। मैंने भी अमुक संत से नाम ले रखा है। मैं तो सारी पूजा करती हूँ। एक हमारे रिस्तेदार ने गुगापीर की पूजा नहीं की थी। उसका एक ही लड़का था वही मर गया। अब तू देख ले।' इस बात से भयभीत हो कर भक्तमति कमलेश ने गुगापीर की पूजा कर ली। अगले ही दिन लड़की को दौरा आ गया, दोनों लड़के सिविल हस्पताल (जीन्द) में दाखिल हो गए और कमलेश को दमा फिर शुरु हो गया। कबीर साहिब कहते हैं :-

कबीर, सौ वर्ष तो गुरु की पूजा, एक दिन आनउपासी। वो अपराधी आत्मा, पड़े कालकी फांसी।

भक्त रमेश का सारा परिवार फिर मेरे (संत रामपाल दास के) पास आया। अपनी गलती की क्षमा याचना की। फिर दोबारा उपदेश (नाम) दिया। उसके बाद वह पूरा परिवार बिल्कुल स्वस्थ है। कोई आन उपासना नहीं करते हैं। पुराना मकान बेच कर नई कोठी बना ली है और कर्ज मुक्त भी हो गए हैं। आज (दिनांक : 02-01-2006) दस वर्ष से ज्यादा हो चुके हैं। सबको कहते हैं कि हमारे जैसा दुःखी कोई नहीं था। जैसी कबीर साहिब ने हमारी प्रार्थना सुनी ऐसी सब जीवों की सुनें और गुरुदेव जी (रामपाल दास महाराज) से नाम लेकर अपना जीवन धन्य बनाएँ तथा काल-जाल से निकलें।

॥ मान बड़ाई जान की दुश्मन ॥

विचार करें :- गीता अध्याय 3 के श्लोक 33, 34, 35 का भाव है कि सर्व प्राणी प्रकृति (माया) के वश ही हैं। स्वभाववश कर्म करते हैं। ऐसे ही ज्ञानी भी अपनी आदत वश कर्म करते हैं फिर हट क्या करेगा?

सार : -- अज्ञानी अपनी गलत पूजा को नहीं त्यागते चाहे कितना आग्रह करें, चाहे सद्ग्रन्थों के प्रमाण भी दिखा दिए जाएँ वे नहीं मानते। इसी प्रकार ज्ञानी-विद्वान पुरुष मान वश पैसा प्राप्ति व अधिक शिष्य बनाने की इच्छा से सच्चाई का अनुसरण नहीं करते। दोनों (ज्ञानी व अज्ञानी) स्वभाव वश चल रहे हैं। इसलिए भक्ति मार्ग गलत दिशा पकड़ चुका है तथा इन दोनों को समझाना व्यर्थ है।

गरीब, चातूर प्राणी चोर हैं, मूढ मुग्ध हैं ठोठ। संतों के नहीं काम के, इनकू दे गल जोट ॥

नकली नामों से मुक्ति नहीं

एक सुशिक्षित सभ्य व्यक्ति मेरे पास आया। वह उच्च अधिकारी भी था तथा किसी अमुक पंथ व संत से नाम भी ले रखा था व प्रचार भी करता था वह मेरे (संत रामपाल दास) से धार्मिक चर्चा करने लगा। उसने बताया कि "मैंने अमुक संत से नाम ले रखा है, बहुत साधना करता हूँ। उसने

कहा मुझे पाँच नामों का मन्त्र (उपदेश) प्राप्त है जो काल से मुक्त कर देगा।" मैंने (रामपाल दास ने) पूछा कौन-2 से नाम हैं। वह भक्त बोला यह नाम किसी को नहीं बताने होते। उस समय मेरे पास बहुत से हमारे कबीर साहिब के यथार्थ ज्ञान प्राप्त भक्त जन भी बैठे थे जो पहले नाना पंथों से नाम उपदेशी थे। परंतु सच्चाई का पता लगने पर उस पंथ को त्याग कर इस दास (रामपाल दास) से नाम लेकर अपने भाग्य की सराहना कर रहे थे कि ठीक समय पर काल के जाल से निकल आए। पूरे परमात्मा (पूर्ण ब्रह्म) को पाने का सही मार्ग मिल गया। नहीं तो अपनी गलत साधना वश काल के मुख में चले जाते।

उन्हीं भक्तों में से एक ने कहा कि मैं भी पहले उसी पंथ से नाम उपदेशी (नामदानी) था। यही पाँच नाम मैंने भी ले रखे थे परंतु वे पाँचों नाम काल साधना के हैं, सतपुरुष प्राप्ति के नहीं हैं। वे पाँचों नाम मैंने [भक्त जो दूसरे पंथ से आया था अब कबीर साहिब के अनुसार इस दास (रामपाल दास) से नाम ले रखा है कह रहा है उस अमुक संत-पंथ के उपदेशी सभ्य व्यक्ति को] भी ले रखे थे। वे नाम हैं - 1. ज्योति निरंजन 2. आँकार 3. रंरकार 4. सोहं 5. सत्यनाम।

तब मैंने उस पुण्यात्मा को समझाया कि आप जरा विचार करो। संतमत सतसंग साहिब कबीर से चला है। साहिब कबीर स्वयं पूर्ण परमात्मा हैं। उन्होंने ही इस काल लोक में आकर अपनी जानकारी आप ही देनी पड़ी। क्योंकि काल ने साहिब कबीर का ज्ञान गुप्त कर रखा है। चारों वेदों, अठारह पुराणों, गीता जी व छः शास्त्रों में केवल ब्रह्म (काल ज्योति निरंजन) की उपासना की जानकारी है। सतपुरुष की उपासना का ज्ञान नहीं है।

एक तुलसी दास जी हाथ रस वाले (जिनको उस तुलसी दास जिसने रामायण का हिन्दी निरूपण किया का अवतार मानते हैं) ने कबीर सागर, कबीर वाणी साखी व बीजक पढ़ा। फिर उसने उसमें से यही पाँच नाम निकाल लिए। वास्तव में इन पाँच नामों में सतनाम की जगह 'शक्ति' शब्द है। परंतु तुलसी दास (हाथरस वाले) ने शक्ति शब्द की जगह सतनाम जोड़ कर पाँच नाम का मन्त्र बनाकर काल साधना ही समाज में प्रवेश कर दी। अपने द्वारा रची घट रामायण प्रथम भाग पृष्ठ 27 पर स्वयं इन्हीं पाँचों नामों को काल के नाम कहा है तथा सत्यनाम तथा आदिनाम (सारनाम) बिना सत्यलोक प्राप्ति नहीं हो सकती, कहा है। इन्हीं पाँचों नामों को कबीर साहिब ने भी काल साधना के बताए हैं। इन्हीं पाँचों नामों को लेकर बड़े-2 भक्तजन समूह इकत्रित हो गए जो मुक्त नहीं हो सकते और कबीर साहेब ने कहा है कि इनसे न्यारा नाम सत्यनाम है उसका जाप पूरे अधिकारी गुरु से लेकर पूरा जीवन गुरु मर्यादा में रहते हुए सार नाम की प्राप्ति पूरे गुरु से करनी चाहिए।

सतनाम के प्रमाण के लिए कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 266-267) से सहाभार

अक्षर आदि जगतमें, जाका सब विस्तार।

सतगुरु दया सो पाइये, सतनाम निजसार।।112।।

सतगुरुकी परतीति करि, जो सतनाम समाय।

हंस जाय सतलोक को, यमको अमल मिटाय।।117।।

वह सतनाम-सारनाम उपासक सतलोक चला जाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हम सबने कबीर साहिब के ज्ञान को पुनः पढ़ना चाहिए तथा सोचना चाहिए कि सतलोक प्राप्ति केवल कबीर साहिब के द्वारा दिए गए मन्त्र से होगी।

।। धर्मदास को सतनाम कबीर साहेब ने दिया ।।

जो मन्त्र (नाम) साहिब कबीर ने धर्म दास जी को दिया । प्रमाण :—

कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 284-285) से सहाभार
(चौका आरती)

प्रथमहिं मंदिर चौक पुराये । उत्तम आसन श्वेत बिछाये ।

हंसा पग आसन पर दीन्हा । सतकबीर कही कह लीन्हा ।।

नाम प्रताप हंस पर छाजे । हंसहि भार रती नहिं लागे ।।

कहै कबीर सुनो धर्मदासा । ऊँ-सोहं शब्द प्रगासा ।।

(कबीर शब्दावली से लेख समाप्त)

ऊपर के शब्द चौका आरती में साहेब कबीर ने धर्मदास जी को सत्यनाम दिया । वह -

“कहै कबीर सुनो धर्मदासा, ऊँ सोहं शब्द प्रगासा”

यह “ऊँ-सोहं” सत्यनाम स्वयं साहेब कबीर ने धर्मदास जी को दिया । इससे प्रमाणित है कि इस नाम के जाप से जीवात्मा सार शब्द पाने योग्य बनेगी । यदि सार शब्द पाने के योग्य नहीं बना तथा सतगुरु ने सारशब्द नहीं दिया तो आपका जीवन व्यर्थ गया । चूंकि सत्यनाम (ऊँ-सोहं) से आप कई मानव शरीर भी पा सकते हो । स्वर्ग में भी वर्षों तक रह सकते हो, यह इतना उत्तम नाम है । परंतु सार शब्द मिले बिना सतलोक प्राप्ति नहीं अर्थात् पूर्ण मुक्ति नहीं ।

।। सतनाम का गरीबदास जी महाराज की वाणी में प्रमाण ।

गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि :

ऊँ सोहं पालडै रंग होरी हो, चौदह भवन चढावै राम रंग होरी हो ।

तीन लोक पासंग धरै रंग होरी हो, तो न तुलै तुलाया राम रंग होरी हो ।।

इसका अर्थ है सत्यनाम (ऊँ-सोहं) यदि भक्त आत्मा को मिल गया, वह (स्वॉसों से सुमरण होता है) एक स्वॉस-उस्वॉस भी इस मन्त्र का जाप हो गया तो उसकी कीमत इतनी है कि एक स्वॉस-उस्वॉस ऊँ-सोहं के मन्त्र का एक जाप तराजू के एक पलड़े में = दूसरे पलड़े में चौदह भुवनों को रख दें तथा तीन लोकों को तुला की त्रुटि ठीक करने के लिए अर्थात् पलड़े समान करने के लिए रख दें तो भी एक स्वॉस का (सत्यनाम) जाप की कीमत ज्यादा है अर्थात् बराबर भी नहीं है । पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके नाम जाप करने से लाभ होगा अर्थात् बिना गुरु बनाए स्वयं सत्यनाम जाप व्यर्थ है । जैसे रजिस्ट्री पर तहसीलदार हस्ताक्षर करेगा तो काम बनेगा, कोई स्वयं ही हस्ताक्षर कर लेगा तो व्यर्थ है । इसी का प्रमाण साहेब कबीर देते हैं -

कबीर, कहता हूँ कही जात हूँ, कहूँ बजा कर ढोल । स्वॉस जो खाली जात है, तीन लोक का मोल ।।

कबीर, स्वॉस उस्वॉस में नाम जपो, ब्यर्था स्वॉस मत खोय । न जाने इस स्वॉस को, आवन होके न होय ।।

इसलिए यदि गुरु मर्यादा में रहते हुए सत्यनाम जपते-2 भक्त प्राण त्याग जाता है, सारनाम प्राप्त नहीं हो पाता, उसको भी सांसारिक सुख सुविधाएँ, स्वर्ग प्राप्ति और लगातार कई मनुष्य जन्म भी मिल सकते हैं और यदि पूर्ण संत न मिले तो फिर चौरासी लाख जूनियों व नरक में चला जाता है । यदि अपना व्यवहार ठीक रखते हुए गुरु जी को साहेब का रूप समझ कर आदर करते हुए सतनाम प्राप्त कर लेता है व प्राणी जीवन भर मन्त्र का जाप करता हुआ तथा गुरु वचन में चलता रहेगा । फिर गुरु जी सारनाम देंगे । वह सत्यलोक अवश्य जाएगा । जो कोई गुरु वचन नहीं

मानेगा, नाम लेकर भी अपनी चलाएगा, वह गुरु निन्दा करके नरक में जाएगा और गुरु द्रोही हो जाएगा। गुरु द्रोही को कई युगों तक मानव शरीर नहीं मिलता। वह चौरासी लाख जूनियों में भ्रमता रहता है।

कबीर साहिब ने सत्यनाम गरीबदास जी [छुड़ानी (हरियाणा) वाले] को दिया, घीसा संत जी (खेखड़े वाले) को दिया, नानक जी (तलवंडी जो अब पाकिस्तान में है) को दिया।

।। श्री नानक साहेब की वाणी में सतनाम का प्रमाण ।।

प्रमाण के लिए पंजाबी गुरु ग्रन्थ साहिब के पृष्ठ नं. 59-60 पर सिरि राग महला 1 (शब्द नं. 11)

बिन गुर प्रीति न ऊपजै हउमै मैलु न जाइ ।।

सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ ।।

गुरमुखि आपु पछाणीऐ अवर कि करे कराइ ।।

मिलिआ का किआ मेलीऐ सबदि मिले पतीआइ ।।

मनमुखि सोझी न पवै वीछुड़ि चोटा खाइ ।।

नानक दरु घरु एकु है अवरु न दूजी जाइ ।।

नानक साहेब स्वयं प्रमाणित करते हैं कि शब्दों (नामों) का भिन्न ज्ञान होने से विश्वास हुआ कि सच्चा नाम 'सोहं' है। यही सतनाम कहलाता है। पूर्ण गुरु के शिष्य की भ्रमणा मिट जाती है। वह फिर और कोई करनी (साधना) नहीं करता। मनमुखी (मनमानी साधना करने वाला) साधक या जिसको पूरा संत नहीं मिला वह अधूरे गुरु का शिष्य पूर्ण ज्ञान नहीं होने से जन्म-मरण लख चौरासी के कष्टों को उठाएगा। नानक साहेब कहते हैं कि पूर्ण परमात्मा कुल का मालिक एक अकाल पुरुष है तथा एक घर (स्थान) सतलोक है और दूजी कोई वस्तु नहीं है।

प्राण संगली-हिन्दी - के पृष्ठ नं. 84 पर राग भैरव - महला 1 - पौड़ी नं. 32

साध संगति मिल ज्ञानु प्रगासै । साध संगति मिल कवल बिगासै ।।

साध संगति मिलिआ मनु माना । न मैं नाह ऊँ-सोहं जाना ।।

सगल भवन महि एको जोति । सतिगुर पाया सहज सरोत ।।

नानक किलविष काट तहाँ ही । सहजि मिलै अंमृत सीचाही ।।32 ।।

नानक साहेब कह रहे हैं कि नामों में नाम "ऊँ-सोहं" यही सतनाम है। इसी से पाप कटते हैं। (किलविष कटे तारी)

सहज समाधी से अमृत (पूर्ण परमात्मा का पूर्ण आनन्द) प्राप्त हुआ अर्थात् केवल ऊँ-सोहं के जाप से पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति संभव है अन्यथा नहीं।

प्राण संगली-हिन्दी - के पृष्ठ नं. 3 पर

गौड़ी रंगमाला जोग निधि - महला 1 - पौड़ी नं. 17

पूर्ब फिरि पच्छम कौ तानै । अजपा जाप जपै मनु मानै ।।

अनहत सुरति रहै लिवलाय । कहु नानक पद पिंड समाय ।।17 ।।

नानक साहेब उसी "ऊँ-सोहं" के नाम के जाप को अजपा जाप कह रहे हैं। इसी का प्रमाण कबीर साहेब तथा गरीबदास जी महाराज व धर्मदास जी ने दिया है। क्योंकि यह सर्व पुण्य आत्मा साहेब कबीर के शिष्य थे।

प्राण संगली-हिन्दी - के पृष्ठ नं. 4 पर

गौड़ी रंगमाला जोग निधि - महला 1 - पौड़ी नं. 28

सोहं हंसा जाँ का जापु । इहु जपु जपै बढे परतापु ॥

अंमि न डूबै अगनि न जरै । नानक तिंह घरि बासा करै ॥ 28 ॥

इसमें नानक साहेब ने कहा है कि हे हंस (भक्त) आत्मा उस परमात्मा का जाप सोहं है। इस जाप के जपने से बहुत लाभ है।

प्राण संगली-हिन्दी - के पृष्ठ नं. 5 पर

गौड़ी रंगमाला जोग निधि - महला 1 - पौड़ी नं. 38

सोहं हंसा जपु बिन माला । तहिं रचिआ जहिं केवल बाला ॥

गुर मिलि नीरहिं नीर समाना । तब नानक मनूआ गगनि समाना ॥ 38 ॥

नानक साहेब कह रहे हैं कि हे हंस (भक्त) आत्मा "सोहं" जाप स्वांस से जप, माला की आवश्यकता नहीं है। मैं गुरु जी के मिलने पर परमात्मा में समाया अर्थात् दर्शन पाया। तब यह मेरा मन सहज समाधी द्वारा आकाश में पूर्ण परमात्मा के निजधाम सतलोक (सच्चखण्ड) में पूर्ण परमात्मा के चरणों में समाया अर्थात् लीन रहने लगा।

प्राण संगली-हिन्दी - के पृष्ठ नं. 71 पर

रामकली - महला 1 - पौड़ी नं. 42

ऐसा संग्रथु को नही किसु पहि करउँ बिनंतू

पूरा सतिगुर सेव तूँ गुरमति सोहं मत्तू 42 ॥

प्राण संगली-हिन्दी - के पृष्ठ नं. 127 पर

रामकली - महला 1 - पौड़ी नं. 27

बिन संजम बैराग न पाया । भरमतू फिरिआ जन्म गवाया ॥

क्या होया जो औध बधाई । क्या होया जु बिभूति चढ़ाई ॥

क्या होया जु सिंगी बजाई । क्या होया जु नाद बजाई ॥

क्या होया जु कनूआ फूटा । क्या होया जु ग्रहिते छूटा ॥

क्या होया जु उश्न शीत सहै । क्या होया जु बन खंड रहे ॥

क्या होया जो मोनी होता । क्या होया जो बक बक करता ॥

सोहं जाप जपै दिन राता । मन ते त्यागै दुबिधा भ्रांता ॥

आवत सोधै जावत बिचारै । नौदर मूँदै तषते मारै ॥

दे प्रदक्खणौं दरवें चढ़े । उस नगरी सभ सौझी पड़ै ॥

त्रैगुण त्याग चौथे अनुरागी । नानक कहै सोई बैरागी ॥ 27 ॥

नानक साहेब कहते हैं कि जिनके पास सतनाम (सोहं जाप) नहीं है वे चाहे जटा (औध) बढाओ, चाहे राख शरीर पर लगाओ, चाहे सिरंगी बाजा बजा कर जगत को रिझाओ, चाहे कान पड़वाओ, चाहे घर त्याग जाओ, चाहे निःवस्त्र रह कर अवधूत बन कर गर्मी-सर्दी सहन करो, चाहे बनखण्ड रहो, मौन रखो, चाहे बक-बक करो, उनकी मुक्ति नहीं। केवल सोहं का जाप दिन-रात करना चाहिए तथा मन की दुविधा त्याग कर स्वांस को आते तथा जाते नाम के साथ जाप करें। तब दसवें द्वार (सुषमना) में प्रवेश कर तथा तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) की भक्ति त्याग कर चौथी अर्थात् पूर्णब्रह्म की साधना करें फिर पूर्ण मुक्त हो जाओगे।

पंजाबी गुरु ग्रन्थ साहिब के पृष्ठ नं. 1092-1093 पर

राग मारु महला 1 - पौड़ी नं. 1

हउमै करी ता तू नाही तू होवहि हउ नाहि ॥

बूझहु गिआनी बूझणा एह अकथ कथा मन माहि ।।
 बिनु गुर ततू न पाईऐ अलखु वसै सभ माहि ।।
 सतिगुरु मिलै त जाणीऐ जां सबदु वसै मन माहि ।।
 आपु गइआ भ्रमु भउ गइआ जनम मरन दुख जाहि ।।
 गुरमति अलखु लखाईऐ ऊतम मति तराहि ।।
 नानक सोहं हंसा जपु जापहु त्रिभवण तिसै समाहि ।।

जो इन सर्व संतों की वाणी (ग्रन्थों) में प्रमाण है तथा कबीर पंथी शब्दावली में सत्यनाम 'ऊँ-सोहं' के जाप का प्रमाण है। वह भी पूरे संत जिसको नाम देने का अधिकार हो, से ही लेना चाहिए।

प्रमाण :- कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 220) से सहाभार बहुत गुरु संसार रहित, घर कोइ न बतावै।

आपन स्वारथ लागि, सीस पर भार चढावै ।।

सार शब्द चीन्हे नहीं, बीचहिं परे भुलाय ।

सत्त सुकृत चीन्हे बिना, सब जग काल चबाय ।।18 ।।

यह लीला निर्वान, भेद कोइ बिरला जानै ।

सब जग भरमें डार, मूल कोइ बिरला माने ।।

मूल नाम सत पुरुष का, पुहुप द्वीपमें बास ।

सतगुरु मिलैं तो पाइये, पूरन प्रेम बिलास ।।19 ।।

नाम सनेही होय, दूत जम निकट न आवै ।

परमतत्त्व पहिचानि, सत्त साहेब गुन गावै ।।

अजर अमर विनसे नहीं, सुखसागरमें बास ।

केवल नाम कबीर है, गावे धनिधर्मदास ।।20 ।।

धर्मदास जी कहते हैं कि संसार में गुरुओं की कमी नहीं। मान बड़ाई, स्वार्थ के लिए गुरु बन कर अपने सिर पर भार धर रहे हैं। सार शब्द जब तक प्राप्त नहीं होता वह गुरु नरक में जाएगा। जिसे गुरुदेव जी ने नाम-दान देने की अनुमति नहीं दे रखी तथा अपने आप गुरु बन कर नाम देता है वह काल का दूत है। काल के मुख में ले जाएगा। परमात्मा का मुख्य नाम एक ही है उसका भेद किसी बिरले को है। बाकी सब डार (देवी-देवताओं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, माता, ब्रह्म) पर ही लटक रहे हैं।

समै - कबीर, वेद हमारा भेद है, हम नहीं वेदों माहिं ।

जौन वेद में हम रहैं, वो वेद जानते नाहीं ।

रमैनी 36 -

घर घर होय पुरुषकी सेवा । पुरुष निरंजन कहे न भेवा ।।

ताकी भगति करे संसारा । नर नारी मिल करें पुकारा ।।

सनकादिक नारद मुख गावें । ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावें ।

मुनी व्यास पारासर ज्ञानी । प्रह्लाद और बिभीषण ध्यानी ।।

द्वादस भगत भगती सो रांचे । दे तारी नर नारी नाचे ।।

जुग जुग भगतभये बहुतेरे । सबे परे काल के घेरे ।।

काहू भगत न रामहिं पाया । भगती करत सर्व जन्म गंवाया ।।

सर्व प्राणी भगवान काल की साधना कर रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी भजन करते हैं परंतु किसी को भी पूर्ण परमात्मा (राम) नहीं मिला। काल साधना करके जन्म खो दिया।

(कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 279, 294, 305 व 498 से सहाभार)

सुकृत नाम अगुवा भये, सत्तनामकी डोर ।
 मूल शब्द पर बैठिके, निरखो वस्तु अंजोर ॥
 साहब कबीर कहि दीहल, सुन सुकृत चितलाय ।
 पुहुप दीप पर हंस है, बहुर न आवे जाय ॥ 26 ॥

अगम चरित चेतावनी, अधर अनूपम धाम ।
 अजर अमर है सोई, सेवही निर्गुन नाम ॥
 मूल बांध गढ साजहू, आपा मेट गढ लेहु ।
 गुरुके शब्द गढ तोरहू, सत्त शब्द मन देहु ॥
 सत्तनाम है सबते न्यारा । निर्गुन सर्गुन शब्द पसारा ॥
 निर्गुन बीज सर्गुन फल फूला । साखा ज्ञान नाम है मूला ॥ 8 ॥

मूल गहेते सब सुख पावै । डाल पातमें सर्वस गँवावै ॥
 सतगुरु कही नाम पहिचानी । निर्गुन सर्गुन भेद बखानी ॥ 9 ॥
 दोहा – नाम सत्त संसारमें, और सकल है पोच ।
 कहना सुनना देखना, करना सोच असोच ॥ 3 ॥

सबही झूठ झूठ कर जाना । सत्त नामको सत कर माना ॥
 निस बासर इक पल नहिं न्यारा । जाने सतगुरु जानन हारा ॥ 10 ॥
 सुरत निरत ले राखै जहवाँ । पहुँचै अजर अमर घर तहवाँ ॥
 सत्तलोकको देय पयाना । चार मुक्ति पावै निर्वाना ॥ 11 ॥
 दोहा – सतलोकै सब लोक पति, सदा समीप प्रमान ।
 परमजोतसो जोत मिलि, प्रेम सरूप समान ॥ 5 ॥

अंस नामतें फिर फिर आवै । पूर्ण नाम परमपद पावै ॥
 नहिं आवै नहिं जाय सो प्रानी । सत्यनामकी जेहि गति जानी ॥ 12 ॥
 सत्तनाममें रहै समाई । जुग जुग राज करै अधिकाई ॥
 सतलोकमें जाय समाना । सत पुरुषसों भया मिलाना ॥ 13 ॥

हंस सुजान हंसही पावा । जोग संतायन भया मिलावा ॥
 हंस सुघर दरस दिखलावा । जनम जनमकी भूख मिटावा ॥ 14 ॥
 सुरत सुहागिन भइ आगे ठाढी । प्रेम सुभाव प्रीति अति बाढी ॥
 पुहुपदीपमें जाय समाना । बास सुवास चहूँ दिस आना ॥ 15 ॥
 दोहा – सुख सागर सुख बिलसई, मानसरोवर न्हाय ।
 कोट काम—सी कामिनी, देखत नैन अघाय ॥ 6 ॥

सुरति नाम सुनै जब काना । हंसा पावै पद निर्बाना ॥
 अब तो कृपा करी गुरु देवा । तातें सुफल भई सब सेवा ॥ 16 ॥
 नाम दान अब लेय सुभागी । सत्तनाम पावै बड़ भागी ।
 मन बचन कर्म चित्त निश्चय राखै । गुरुके शब्द अमीरस चाखै ॥ 17 ॥
 आदि अंत वहाँ भेदै पावै । पवन आडमें ले बैठावै ॥
 सब जग झूठ नाम इक साँचा । श्वास श्वासमें साचा राचा ॥ 18 ॥

झूठा जान जगत सुख भोगा । साँचा साधू नाम सँजोगा ॥
 यह तन माटी इन्द्री छारी । सत्तनाम सांचा अधिकारी ॥ 19 ॥
 नाम प्रताप जुगै जुग भाखी । साध संत ले हिरदे राखी ॥
 कहँ कबीर सुन धर्मनि नागर । सत्यनाम है जगत उजागर ॥ 20 ॥

कबीर साहेब अपने परम शिष्य धर्मदास जी को समझा रहे हैं कि सतनाम सब नामों से न्यारा है और पूर्ण परमात्मा की साधना से जीव सुखी होगा। (डाल-पत्तों) काल, ब्रह्म तथा तीनों देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) व देवी-देवताओं की साधना से जीवन व्यर्थ जाएगा। केवल सतनाम व सारनाम से मुक्ति है। बाकी साधना जैसे कहना (कथा करना), सुनना (कान बंद करके धुनि सुनना), सोच (चिन्तन करना), असोच (व्यर्थ) है। एक सतनाम को त्याग कर यह साधना केवल लिपा-पोती है अर्थात् दिखावटी है। अंश नाम (अधूरे मन्त्र) से जीव जन्म-मरण व चौरासी लाख जूनियों में ही भटकता रहेगा। केवल पूर्ण नाम (सतनाम व सारनाम) से जीव मुक्ति पाएगा। फिर पूर्ण गुरु (सुरति नाम सुनै जब काना) अपने शिष्य को सारशब्द प्राप्त करवाएगा। तब यह जीव निर्वाण ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होगा।

(पृष्ठ नं. 38-39)

शब्द हमारा आदि का, सुनि मत जाहु सरख ।

जो चाहो निज तत्व को, शब्दे लेहु परख ॥9॥

शब्द विना सुरति आँधरी, कहो कहाँको जाय ।

द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय ॥10॥

शब्द शब्द बहुअन्तरा, सार शब्द मथि लीजे ।

कहँ कबीर जहँ सार शब्द नहीं, धिग जीवन सो जीजे ॥11॥

सार शब्द पाये बिना, जीवहिँ चैन न होय ।

फन्द काल जेहि लखि पडे, सार शब्द कहि सोय ॥12॥

सतगुरु शब्द प्रमान है, कह्यो सो बारम्बार ।

धर्मनिते सतगुरु कहै, नहिँ बिनु शब्द उबार ॥13॥

धर्मनि सार भेद अव खोलौं । शब्दस्वरूपी घटघट बोलौं ॥

शब्दहिँ गहे सो पंथ चलावै । बिना शब्द नहिँ मारग पावै ॥

प्रगटे वचन चूरामनि अंशू । शब्द रूप सब जगत प्रशंसू ॥

शब्दे पुरुष शब्द गुरुराई । विना शब्द नहिँ जिवमुकताई ॥

जेहिते मुक्त जीव हो भाई । मुकतामनि सो नाम कहाई ॥

कबीर साहेब कह रहे हैं कि जो सारनाम आपको दिया जाता है यही नाम सदा का है परंतु काल भगवान ने इसे छुपा रखा है। अब इस नाम को सुनकर खिसक (नाम त्याग मत जाना) मत जाना। फिर आपको सार शब्द प्राप्त कराया जाएगा। यदि सार शब्द प्राप्त नहीं हुआ तो उसका जीवन धिक्कार है और जो मनमुखी गुरु बने फिरते हैं वे नरक के भागी होंगे। जिस नाम से जीव मुक्त होते हैं उसको मुक्तामनी अर्थात् जीव मुकताने वाली मणी (जड़ी) कहते हैं, वही सार नाम कहलाता है। भावार्थ है कि जिस सारनाम से जीव की मुक्ति हो उसे मुक्ता मणी समझो।

ऊपर के शब्दों में साहेब कबीर प्रमाण दे रहे हैं कि यदि सार शब्द गुरु जी से प्राप्त नहीं किया उसका जन्म धिक्कार है। सार नाम को सतसुकृत नाम भी कहते हैं। वह पूर्ण गुरु के पास ही होता है जिसको गुरु ने आगे नाम दान की आज्ञा दे रखी हो। नाम-नाम में बहुत अन्तर है। सत्यनाम का जहाँ तक काम है वह अपने स्थान पर सही है। केवल सत्यनाम से जीव का काल लोक से बन्धन नहीं छूटेगा, जब तक सार शब्द नहीं मिलेगा। सत्यनाम के जाप (अभ्यास) बिना सारनाम काम नहीं करेगा।

जैसे हैंड पम्प (पानी का नलका) लगाना है। उसकी तीन स्थिति हैं। प्रथम पाईप तथा बोकी (पाईप को जमीन तक पहुँचाने का यन्त्र) खरीद कर लाने के लिए पैसे वह नाम है - ब्रह्म गायत्री मन्त्र। जिसकी कमाई से "सत्यनाम" की प्राप्ति होवैगी। वही साहेब कबीर व गरीबदास जी ने अपनी वाणी में प्रमाणित किया है --

ज्ञान सागर अति उजागर, निर्विकार निरंजन।

ब्रह्मज्ञानी महाध्यानी, सत सुकृत दुःख भंजनं ।1।

मूल चक्र गणेश बासा, रक्त वर्ण जहां जानिये।

किलियं जाप कुलीन तज सब, शब्द हमारा मानिये ।2।

स्वाद चक्र ब्रह्मादि बासा, जहां सावित्री ब्रह्मा रहैं।

ओ३म जाप जपंत हंसा, ज्ञान जोग सतगुरु कहैं ।3।

नाभि कमल में विष्णु विशम्भर, जहां लक्ष्मी संग बास है।

हरियं जाप जपन्त हंसा, जानत बिरला दास है ।4।

हृदय कमल महादेव देवं, सती पार्वती संग है।

सोहं जाप जपंत हंसा, ज्ञान जोग भल रंग है ।5।

कंठ कमल में बसै अविद्या, ज्ञान ध्यान बुद्धि नासही।

लील चक्र मध्य काल कर्मम्, आवत दम कुं फांसही ।6।

त्रिकुटी कमल परम हंस पूर्ण, सतगुरु समरथ आप है।

मन पौना सम सिंध मेलो, सुरति निरति का जाप है ।7।

सहंस कमल दल आप साहिब, ज्युं फूलन मध्य गन्ध है।

पूर रह्या जगदीश जोगी, सत् समरथ निर्बन्ध है ।।8।।

सत	सुकृत	अविगत	कबीर
ओ३म्	ओ३म्	ओ३म्	ओ३म्
किलियम्	किलियम्	किलियम्	किलियम्
हरियम्	हरियम्	हरियम्	हरियम्
श्रीयम्	श्रीयम्	श्रीयम्	श्रीयम्
सोहं	सोहं	सोहं	सोहं
सत्यम्	सत्यम्	सत्यम्	सत्यम्

अभय पद गायत्री पठल पठन्ते, अर्थ धर्म काम मोक्ष पूर्ण फल लभन्ते।

यह मानसिक जाप गुरु जी से लेकर करना होता है। इसकी कमाई से नलका लगाने का सामान पाईप व बोकी (सत्यनाम - ऊँ-सोहं) प्राप्त होगा। फिर (सत्यनाम का जाप करना है) स्वॉस-उस्वॉस रूपी बोकी एक बार ऊपर उठाते हैं फिर बोकी को जमीन में मारते हैं। ऐसा बार-2 करते रहते हैं तथा पाईप को साथ-2 नीचे पहुँचाते रहते हैं। जब पानी तक पहुँच गए फिर रूक जाते हैं। यहाँ तक सत्यनाम का काम है। यदि ऊपर पानी निकालने वाली मशीन (हैंड पम्प) नहीं लगाई तो वह पानी तक पहुँचाया हुआ पाईप व्यर्थ है। यदि सत्यनाम का जाप मिला हुआ वह भी पूर्ण गुरु द्वारा कुछ काम अवश्य करेगा परंतु पूर्ण लाभ (उद्देश्य) सार नाम से प्राप्त होगा।

गरीब, सतगुरु सोहं नाम दे, गुझ बिरज विस्तार। बिन सोहं सिद्धे नहीं, मूल मन्त्र निजसार।।

मूल मन्त्र यहाँ पर सार नाम को कहा है तथा सोहं के बिना सार शब्द भी कामयाब नहीं है। दसवीं (मैट्रिक) किए बिना आगे वाली कक्षा में प्रवेश नहीं मिलता। इसलिए कबीर साहेब कहते हैं -- कबीर सोहं सोहं जप मुए, वृथा जन्म गवाया। सार शब्द मुक्ति का दाता, जाका भेद नहीं पाया।।

कबीर जो जन होए जौहरी, सो धन ले विलगाय। सोहं सोहं जपि मुए, मिथ्या जन्म गंवाया ॥
कबीर कोटि नाम संसार में, इनसे मुक्ति न होय। आदि नाम (सारनाम) गुरु जाप है, बुझै बिरला कोय ॥

विशेष प्रमाण के लिए कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 51

ऊँ—सोहं, सोहं सोई। ऊँ – सोहं भजो नर लोई ॥

धर्मदास को सत्य शब्द (सत्यनाम) सुनाया सतगुरु सत्य कबीर। कबीर साहेब ने धर्मदास को सत्य शब्द (सत्यनाम) दिया वह 'ऊँ-सोहं' है तथा इसका भजन करना। फिर बाद में सार शब्द दिया और कहा कि "धर्मदास तोहे लाख दोहाई। सार शब्द कहीं बाहर न जाई।।" यह इतना कीमती नाम है कि किसी काल के उपासक के हाथ न लग जाए। इसलिए गरीबदास जी ने कहा है -

गरीब, सोहं शब्द हम जग में लाए, सार शब्द हम गुप्त छुपाए ॥

कबीर साहेब कहते हैं - इसी शब्द रमैणी में -

शब्द—शब्द बहु अंतरा, सार शब्द मथि लीजै। कहै कबीर जहाँ सार शब्द नहीं, धिक जीवन सो जीजै ॥

।।शब्द।।

संतो शब्दई शब्द बखाना।।टेक।। शब्द फांस फँसा सब कोई शब्द नहीं पहचाना ॥

प्रथमहिं ब्रह्म स्वं इच्छा ते पांचौ शब्द उचारा।

सोहं, निरंजन, रंरकार, शक्ति और ओंकारा ॥

पांचौ तत्व प्रकृति तीनों गुण उपजाया।

लोक द्वीप चारों खान चौरासी लख बनाया ॥

शब्दइ काल कलंदर कहिये शब्दइ भर्म भुलाया ॥

पांच शब्द की आशा में सर्वस मूल गंवाया ॥

शब्दइ ब्रह्म प्रकाश मेंट के बैठे मूंदे द्वारा।

शब्दइ निरगुण शब्दइ सरगुण शब्दइ वेद पुकारा ॥

शुद्ध ब्रह्म काया के भीतर बैठ करे स्थाना।

ज्ञानी योगी पंडित औ सिद्ध शब्द में उरझाना ॥

पाँचइ शब्द पाँच हैं मुद्रा काया बीच ठिकाना।

जो जिहसंक आराधन करता सो तिहि करत बखाना ॥

शब्द निरंजन चांचरी मुद्रा है नैनन के माँही।

ताको जाने गोरख योगी महा तेज तप माँही ॥

शब्द ओंकार भूचरी मुद्रा त्रिकुटी है स्थाना।

व्यास देव ताहि पहिचाना चांद सूर्य तिहि जाना ॥

सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा भंवर गुफा स्थाना।

शुकदेव मुनी ताहि पहिचाना सुन अनहद को काना ॥

शब्द रंरकार खेचरी मुद्रा दसवें द्वार ठिकाना।

ब्रह्मा विष्णु महेश आदि लो रंरकार पहिचाना ॥

शक्ति शब्द ध्यान उनमुनी मुद्रा बसे आकाश सनेही।

झिलमिल झिलमिल जोत दिखावे जाने जनक विदेही ॥

पाँच शब्द पाँच हैं मुद्रा सो निश्चय कर जाना।

आगे पुरुष पुरान निःअक्षर तिनकी खबर न जाना ॥

नौ नाथ चौरासी सिद्धि लो पाँच शब्द में अटके।

मुद्रा साध रहे घट भीतर फिर ओंधे मुख लटके ॥

पाँच शब्द पाँच है मुद्रा लोक द्वीप यमजाला ।
कहैं कबीर अक्षर के आगे निःअक्षर उजियाला ॥

जैसा कि इस शब्द "संतो शब्दई शब्द बखाना" में लिखा है कि सभी संत जन शब्द की महिमा गाते हैं। महाराज कबीर साहिब ने बताया है कि शब्द सतपुरुष का भी है जो कि सतपुरुष का प्रतीक है व निरंजन (काल) का प्रतीक भी शब्द ही है। जैसे शब्द ज्योति निरंजन यह चांचरी मुद्रा को प्राप्त करवाता है, इसको गोरख योगी ने बहुत अधिक तप करके प्राप्त किया जो कि आम (साधारण) व्यक्ति के बस की बात नहीं है और फिर गोरख नाथ काल तक ही साधना करके सिद्ध बन गए। मुक्त नहीं हो पाए। जब कबीर साहिब ने सार नाम दिया तब काल से छुटकारा गोरख नाथ जी का हुआ। इसीलिए ज्योति निरंजन नाम का जाप करने वाले काल जाल से नहीं बच सकते अर्थात् सत्यलोक नहीं जा सकते। शब्द ओंकार (ओ३म) का जाप करने से भूचरी मुद्रा की स्थिति में साधक आ जाता है। जो कि वेद व्यास ने साधना की और काल जाल में ही रहा। सोहं नाम के जाप से अगोचरी मुद्रा की स्थिति हो जाती है और काल के लोक में बनी भंवर गुफा में पहुंच जाते हैं। जिसकी साधना सुखदेव ऋषि ने की और केवल स्वर्ग तक पहुँचा। शब्द रंरकार खैचरी मुद्रा दसमें द्वार (सुष्मणा) तक पहुंच जाते हैं। ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों ने रंरकार को ही सत्य मान कर काल के जाल में उलझे रहे। शक्ति (श्रीयम) शब्द ये उनमनी मुद्रा को प्राप्त करवा देता है जिसको राजा जनक ने प्राप्त किया परंतु मुक्ति नहीं हुई। कई संतों ने पांच नामों में शक्ति की जगह सत्यनाम जोड़ दिया है जो कि सत्यनाम भी कोई जाप नहीं है। ये तो सच्चे नाम की तरफ ईशारा है जैसे सत्यलोक को सच्च खण्ड भी कहते हैं ऐसे ही सत्यनाम व सच्चा नाम है। सत्यनाम जाप करने का नहीं है। अकाल मूरत, शब्द स्वरूपी राम, सतपुरुष ये नाम मुक्ति प्राप्त करने के नहीं हैं क्योंकि ये तो पूर्ण ब्रह्म परमात्मा के पर्यायवाची शब्द हैं जैसे अकाल मूरत वह परमात्मा जिसका काल न हो (अविनाशी)। सतपुरुष वह सच्चा परमात्मा जिसका नाश न हो (अविनाशी)। शब्द स्वरूपी राम वह परमात्मा जिसका असली रूप शब्द है और शब्द खण्ड नहीं होता व नाश में नहीं आता (अविनाशी)। उस परमात्मा को जो अविनाशी है जिसको शब्द स्वरूपी राम, अकाल मूरत व सतपुरुष आदि नामों से जाना जाता है, को तो पाना है। यह तो इस प्रकार है जैसे जल के तीन पर्यायवाची नाम जैसे - जल-पानी-नीर। ऐसे कहते रहने से जल प्राप्त नहीं हो सकता उसके लिए हँड पम्प लगाना पड़ता है तब पानी प्राप्त होता है।

॥ सार शब्द बिना सतनाम भी व्यर्थ ॥

उसके लिए सत्यनाम सच्चा नाम देने वाला गुरु मिले और स्वांस द्वारा अजपा-जाप हो। स्वांस उरवांस रूपी बोकी लगे और फिर उसमें सार नाम रूपी नलका लगाया जाए तो पानी प्राप्त हो अर्थात् वह अकाल मूर्ति (सतपुरुष) प्राप्त होवै। कई भक्तों ने बताया कि गरीबदास जी महाराज के अनुयाई संत भी केवल ओ३म-सोहं या केवल सोहं या ओ३म भागवदे वासुदेवाय नमः आदि-आदि नाम देते हैं जो कि मुक्ति के नहीं हैं। क्योंकि गरीबदास जी महाराज जी ने कहा है कि :-
सोहं अक्षर खण्ड है भाई, तातें निःक्षर रहो लौ लाई। सोहं में थे ध्रु प्रहलादा, ओ३म सोहं वाद विवादा ॥
अर्थात् सोहं मन्त्र का जाप करने वाले प्रहलाद भी मुक्त नहीं हुए। जैसा कि शब्द 'कोई है रे परले पार का, भेद कहै झनकार का' में लिखा है कि वारिही (उरली) काल लोक में ही रहे। बन्दी छोड़ गरीबदास जी महाराज अपनी वाणी में लिखते हैं कि :

गरीब, सोहं ऊपर और है, सत सुकृत एक नाम। सब हंसों का बंस है, नहीं बसती नहीं ठाम।।
गरीब, सतगुरु सोहं नाम दे, गुझ बीरझ विस्तार। बिन सोहं सीझे नहीं, मूल मन्त्र निजसार।।
गरीब, नामा छीपा ओ३म तारी, पीछे सोहं भेद विचारी। सार शब्द पाया जद् लोई, आवागवन बहुर न होई।।

गरीब, सोहं शब्द हम जग में लाए, सार शब्द हम गुप्त छिपाए।।

महाराज गरीबदास जी कहते हैं कि नामदेव संत ओ३म जाप करते थे इसके बाद कबीर साहिब की कृप्या से सोहं का ज्ञान हुआ फिर भी मुक्ति नहीं होनी थी। जब सार नाम कबीर साहिब ने दिया तब उसकी मुक्ति हुई। फिर नामदेव जी ने खुशी में यह शब्द गाया --

।। नामदेव जी की वाणी में सतनाम का प्रमाण ।।

एजी—एजी साधो, सार शब्द मोहे पाया।

कलह कल्पना मन की मेटी, भय और कर्म नशाया।।टेक।।

रूप न रेख कछु वाके, सोहं ध्यान लगाया।

अजर अमर अविनाशी देखे, सिंधु सरोवर न्हाया।।1।।

शब्द ही शब्द भया उजियारा, सतगुरु भेद बताया।

अपने को आपे में पाया, न कहीं गया न आया।।2।।

ज्यों कामनी कंठ का हीरा, आभूषण विसराया।

संग की सहेली भेद बताया, जीव का भरम नशाया।।3।।

जैसे मृग नाभी कस्तूरी, बन—बन डोलत धाया।

नासा स्वांस भई जब आगे, पलट निरंतर आया।।4।।

कहा कहूं वा सुख की महिमा, गूंगे को गुड़ खयाया।

‘नामदेव’ कहै गुरु कृपा से, ज्यों का त्यों दर्शाया।।5।।

कबीर, सोहं सोहं जप मुवे वृथा जन्म गवांया।

सार शब्द मुक्ति का दाता, जाका भेद नहीं पाया।।

।। गलत नाम मूर्खों की उपासना ।।

कई भक्तों ने बताया कि हमारे गुरुदेव जी केवल राधा स्वामी नाम देते हैं जबकि यह नाम कबीर साहिब ने कहीं भी अपने शास्त्र में वर्णन नहीं कर रखा। न ही किसी अन्य शास्त्र (वेद-गीता जी आदि) में प्रमाण है। इसलिए शास्त्र से विपरीत साधना होने से नरक प्राप्ति है। वाणी है :-

कबीर, दादू धारा अगम की, सतगुरु दई बताय। उल्टताही सुमरण करै, स्वामी संग मिल जाय।।

टिप्पणी :- कहते हैं कि कबीर साहिब ने दादू साहिब को कहा कि धारा शब्द का उल्टा राधा बनाओ और स्वामी के साथ मिला लो यह राधा स्वामी मन्त्र हो गया। प्रथम तो यह वाणी दादू साहिब की है न कि कबीर साहिब की। और इस साखी का अर्थ बनता है कि दादू साहिब कहते हैं कि मेरे सतगुरु (कबीर साहिब) ने मुझे तीन लोक से आगे (अगम) की धारा (विधि) बताई कि तीन लोक की साधना को छोड़ कर (उल्ट कर) जो सत्यनाम व सारनाम दिया है वह आपको सतपुरुष से मिला देगा। इसीलिए भक्तजनों मनुष्य जन्म का मिलना अति दुर्लभ है। इसको अनजान साधनाओं में नहीं खोना चाहिए। पूरे गुरु की तलाश करें जो कि आज के दिन मेरे पूज्य गुरुदेव स्वामी रामदेवानन्द जी महाराज की कृप्या से यह दोनों मन्त्र उपलब्ध हैं जिनकी विधि पूर्वक गुरु मर्यादा में रह कर साधना (जाप) करने से बड़े सहजमय सतपुरुष प्राप्ति हो जाती है।

॥ काल के जाल का वर्णन ॥

कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 550, 551, 557) से सहाभार
 रमैनी 61 – निरगुन पुरुष निरंजन देवा । सब जग करे ताहि की सेवा । ।
 अपन अपन मत कीन्ह बिचारी । बात न बूझै कोई हमारी । ।
 बैरागी कहे लेउ बैरागा । ब्रह्मचारी तीरथ व्रत लागा । ।
 संन्यासी सर्वनास कराया । योग जुगति कर प्रान चढाया ।
 जिंदा पड़ा कुरानके फंदा । भा छानबे झूठ पाखंडा ।
 भेष धरी यहि गुरुवा दिखलावे । आप गुरु होय जगत बतावे । ।

॥ कबीर साहेब का शब्द ॥

कर नैनों दीदार महलमें प्यारा है । ।टेक । ।
 काम क्रोध मद लोभ बिसारो, शील सँतोष क्षमा सत धारो ।
 मद मांस मिथ्या तजि डारो, हो ज्ञान घोड़े असवार, भरम से न्यारा है । ।1 ।
 धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगतसे लाओ ।
 कुम्भक कर रेचक करवाओ, पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है । ।2 ।
 मूल कँवल दल चतूर बखानो, किलियम जाप लाल रंग मानो ।
 देव गनेश तहँ रोपा थानो, रिद्धि सिद्धि चँवर दुलारा है । ।3 ।
 स्वाद चक्र षटदल विस्तारो, ब्रह्म सावित्री रूप निहारो ।
 उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ शब्द ओंकारा है । ।4 । ।
 नाभी अष्ट कमल दल साजा, सेत सिंहासन बिष्णु बिराजा ।
 हरियम् जाप तासु मुख गाजा, लछमी शिव आधारा है । ।5 । ।
 द्वादश कमल हृदयेके माहीं, जंग गौर शिव ध्यान लगाई ।
 सोहं शब्द तहाँ धुन छाई, गन करै जैजैकारा है । ।6 । ।
 षोडश कमल कंठ के माहीं, तेही मध बसे अविद्या बाई ।
 हरि हर ब्रह्म चँवर दुराई, जहँ श्रीयम् नाम उचारा है । ।7 । ।
 तापर कंज कमल है भाई, बग भौरा दुइ रूप लखाई ।
 निज मन करत वहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है । ।8 । ।
 कमलन भेद किया निर्वारा, यह सब रचना पिंड मँझारा ।
 सतसँग कर सतगुरु शिर धारा, वह सतनाम उचारा है । ।9 । ।
 आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झिंगा शब्द सुनाओ ।
 दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है । ।10 । ।
 चंद सूर एक घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ ।
 तिरबेनीके संधि समाओ, भौर उतर चल पारा है । ।11 । ।
 घंटा शंख सुनो धुन दोई, सहस्र कमल दल जगमग होई ।
 ता मध करता निरखो सोई, बंकनाल धस पारा है । ।12 । ।
 डाकिनी शाकनी बहु किलकारे, जम किंकर धर्म दूत हकारे ।
 सतनाम सुन भागे सारें, जब सतगुरु नाम उचारा है । ।13 । ।
 गगन मँडल बिच उर्धमुख कुइया, गुरुमुख साधू भर भर पीया ।
 निगुरो प्यास मरे बिन कीया, जाके हिये अँधियारा है । ।14 । ।

त्रिकुटी महलमें विद्या सारा, धनहर गरजे बजे नगारा ।
 लाल बरन सूरज उजियारा, चतूर दलकमल मँझार शब्द ओंकारा है ।।15 ।
 साध सोई जिन यह गढ लीनहा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा ।
 दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है ।।16 ।।
 आगे सेत सुन्न है भाई, मानसरोवर पैठि अन्हाई ।
 हंसन मिलि हंसा होई जाई, मिलै जो अमी अहारा है ।।17 ।।
 किंगरी सारंग बजै सितारा, क्षर ब्रह्म सुन्न दरबारा ।
 द्वादस भानु हंस उँजियारा, षट दल कमल मँझार शब्द ररंकारा है ।।18 ।।
 महा सुन्न सिंध बिषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी ।
 व्याघर सिंह सरप बहु काटी, तहँ सहज अंचित पसारा है ।।19 ।।
 अष्ट दल कमल पारब्रह्म भाई, दहिने द्वादश अंचित रहाई ।
 बायें दस दल सहज समाई, यो कमलन निरवारा है ।।20 ।।
 पाँच ब्रह्म पांचों अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हों ।
 चार मुकाम गुप्त तहँ कीन्हो, जा मध बंदीवान पुरुष दरबारा है ।।21 ।।
 दो पर्वतके संघ निहारो, भँवर गुफा तहां संत पुकारो ।
 हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दर्बारा है ।।22 ।।
 सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पत्रे महल जड़ाये ।
 मुरली बजत अखंड सदा ये, तँह सोहं झनकारा है ।।23 ।।
 सोहं हद तजी जब भाई, सत्तलोककी हद पुनि आई ।
 उठत सुगंध महा अधिकारि, जाको वार न पारा है ।।24 ।।
 षोडस भानु हंसको रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा ।
 हंसा करत चँवर शिर भूपा, सत पुरुष दर्बारा है ।।25 ।।
 कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुनि चंद्र लखोई ।
 पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दिदारा है ।।26 ।।
 आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुषकी तहँ ठकुराई ।
 अरबन सूर रोम सम नाही, ऐसा अलख निहारा है ।।27 ।।
 ता पर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताहिको राजा ।
 खरबन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है ।।28 ।।
 ता पर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामि तहां रहाई ।
 जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन ते न्यारा है ।।29 ।।
 काया भेद किया निरुवारा, यह सब रचना पिंड मँझारा ।
 माया अविगत जाल पसारा, सो कारीगर भारा है ।।30 ।।
 आदि माया कीन्ही चतूराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई ।
 अवगति रचना रची अँड माहीं, ताका प्रतिबिंब डारा है ।।31 ।।
 शब्द बिहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु दर्ई तारी ।
 खुले कपाट शब्द झनकारी, पिंड अंडके पार सो देश हमारा है ।।32 ।।

(कबीर शब्दावली से लेख समाप्त)

शब्दः-- "कर नैनों दीदार महल में प्यारा है" इसमें साहेब कबीर ने काल के जाल का पूरा विवरण दिया है। स्थूल शरीर (पाँच तत्व से बना मनुष्य) को एक टेलिविजन जानो। इसमें चैनल लगे हैं।

	कमल	देवता	जाप
1	मूल कमल	गणेश	किलियम्
2	सवाद चक्र	ब्रह्मा—सावित्री	ॐ
3	नाभि कमल	विष्णु—लक्ष्मी	हरियम्
4	हृदय कमल	शिव—पार्वती	सोहं
5	कंठ कमल	अविद्या (प्रकृति)	श्रीयम्

त्रिकुटी दो दल (काला व सफेद रंग) का कमल है। इसे एयरपोर्ट जानों जैसे हवाई अड्डा हो। वहाँ से जहाँ भी जाना है वही जहाज उपलब्ध होगा। चूंकि सर्व संत यहीं से अपना आगे जाने का मार्ग लेते हैं। वहाँ पर परमात्मा (भक्त जिस इष्ट का उपासक है) गुरु का रूप (शब्द स्वरूपी गुरु या शब्द गुरु कहिए) बना कर आता है तथा अपने हंस को अपने साथ ले कर स्वस्थान (स्वलोक) में ले जाता है। यहाँ पर निजमन (पारब्रह्म) रहता है। वह जीव के साथ किसी प्रकार का धोखा नहीं होने देता। जैसे हवाई अड्डे पर जाने से पहले जिस देश में जाना है उसका पासपोर्ट, बीजा व टिकट पहले ही प्राप्त कर लिया जाता है। वहाँ पर जाते ही उसी जहाज में बैठा दिया जाता है। जिसने जिस इष्ट लोक में जाने की तैयारी गुरु बना कर नाम स्मरण करके कर रखी है वह उसी लोक में त्रिकुटी से अपने शब्द गुरु के साथ चला जाता है। इससे आगे सहस्रार कमल है तथा ज्योति नजर आती है ब्रह्म उपासक इस ज्योति को देख कर अपने धन्य भाग समझते हैं। यहीं तक की जानकारी पंताजली योग दर्शन व अन्य योगियों का अनुभव है। इससे आगे किसी प्रमाणित शास्त्र में ज्ञान नहीं है। यह काल का प्रथम जाल है।

जिन भक्त आत्माओं को पूर्ण सतगुरु मिल गया, उसने सतसंग सुन कर सतनाम ले लिया। वह इस जाल को समझ गया तथा नाम जपने लग गया।

काल का दूसरा जाल है कि सतलोक, अलख लोक, अगम लोक व अनामी लोक यह सब पूर्णब्रह्म की रचना की झूठी नकल कर रखी है। उसका प्रतिबिम्ब (स्वरूप) डारा है। नकली शब्द बना रखे हैं। उनको सुनने का तरीका है आँख-कान-मुख हाथ की उँगलियों से बन्द करके फिर उसमें कानों पर ध्यान लगाओ। एक झंगा कीट होता है वह झीं-झीं की आवाज करता रहता है। उस से मिलती जुलती आवाज है। उसे अनहद झींगा शब्द कहते हैं इसे सुनो।

दूसरी साधना - दोनों आँखों की पुतलियों (सैलियों के निचे) को दबाओ। उसमें से नाना प्रकार का प्रकाश (गुलजारा) दिखाई देगा।

फिर तीसरी साधना बताई - ठण्डा स्वांस चन्द (बाईं नाक वाली स्वांस) व सुर (सूर्य) गर्म स्वांस (दाईं नाक वाली स्वांस) को इक्ठ्ठा करके सुषमना में प्रवेश करो। यह प्राणायाम विधि है। फिर आगे चलो त्रिवैणी पर। यह सब काल रचित है। जब साधक त्रिवैणी पर चले जाते हैं। वहाँ तीन रास्ते होते हैं। दाईं ओर सहस्रार (एक हजार कमल दल) दल वाला कमल है। वह काल (ज्योति निरंजन) का महास्वर्ग है। इसमें घंटा तथा शंख की आवाज होती सुनाई देवेगी तथा फिर झिलमिल-झिलमिल प्रकाश नजर आएगा। वहाँ निराकार रूप में (काल) कर्ता रहता है ऐसा साधक मानते हैं परंतु वास्तव में महाब्रह्मा-महाविष्णु व महाशिव रूप में आकार में है। दाईं ओर बारह भक्त काल (ब्रह्म) के हुए हैं। वे वहाँ पर निश्चिंत रहते हैं। उनको महा प्रलय तक कोई चिंता (मृत्यु) नहीं है। परंतु महा प्रलय में फिर समाप्त हो जाएंगे। काल जब दोबारा सृष्टि रचेगा तो फिर चौरासी लाख योनियों में कर्म कष्ट भोगने के लिए चले जाएंगे। जब यह साधक ब्रह्मरन्द की ओर चलता है

तो वहाँ पर बहुत भयंकर आकृतियाँ वाली स्त्रियों (डाकनी) की व यम दूतों की पूरी फौज रहती है। उस कटक दल (काल सेना) को न तो ऊँ नाम से जीता जा सकता, न किलियम् से, न हरियम् से, न सोहं से, न ही ज्योति निरंजन-रंरकार-ओंकार-सोहं-शक्ति (श्रीयम्) से, न ही राधारस्वामी नाम से, न ही अकाल मूर्त-शब्द स्वरूपी राम या सतपुरुष या अन्य मनमुखी नामों से जीता जा सकता है। वह केवल पूर्ण संत से उपदेश प्राप्त करके सतनाम सच्चा नाम (ऊँ-सोहं) स्वांस के स्मरण करने से उनको तीर से लगते हैं। जिससे वे भाग जाते हैं। रास्ता खाली हो जाता है, ब्रह्मरन्ध्र खुल जाता है तथा साधक काल के असली (विराट रूप में जहाँ रहता है) स्वरूप को देख कर उसके सिर पर पैर रखकर ग्यारहवें द्वार [जो काल ने अपने सिर से बन्द कर रखा है जो सतगुरु के सत्यनाम व सारनाम के दबाव से काल का सिर स्वतः झुक जाता है और वह द्वार खुल जाता है। इस प्रकार यह हंस परब्रह्म के लोक] में प्रवेश कर जाता है। वहाँ काल की माया का दबाव नहीं है। उसके बाद अपने आप केवल सोहं शब्द व सारनाम स्मरण शुरू हो जाता है। ऊँ का जाप उच्चारण नहीं होता। चूंकि वहाँ सूक्ष्म शरीर छूट जाता है अर्थात् ओ३म मंत्र की कमाई ब्रह्म (काल) को छोड़ दी जाती है। कारण व महाकारण भी सारनाम के स्मरण से (जो केवल सुरति निरति से शुरू हो जाता है) समाप्त हो जाते हैं। उस समय केवल कैवल्य शरीर रह जाता है। उस समय जीव की स्थिति दस सूर्य के प्रकाश के समान हो जाती है, इतना तेजोमय हो जाता है। सतगुरु वहाँ पूछते हैं कि हे हंस आत्मा! आपका किसी जीव में, वस्तु में, सम्पत्ति में मोह तो नहीं है। यदि है तो फिर वापिस काल लोक में जाना होगा। परंतु उस समय यह जीवात्मा काल का पूर्ण जाल पार कर चुकी होती है। वापिस जाने को आत्मा नहीं मानती। तब कह देती है कि नहीं सतगुरु जी, अब उस नरक में नहीं जाऊँगा। तब सतगुरु उस हंस को अमृत मानसरोवर में स्नान करवाते हैं। उस समय उस हंस का कैवल्य शरीर तथा सर्व आवरण समाप्त होकर आत्म तत्व में आ जाता है। यह मानसरोवर परब्रह्म के लोक तथा सतलोक के बीच में बने सुन्न स्थान में है जहाँ से भंवर गुफा प्रारम्भ होती है। उस समय इस आत्मा का स्वरूप 16 सूर्यों जितना तेजोमय हो जाता है तथा बारहवें द्वार को पार कर सत्यलोक में प्रवेश कर सदा पूर्णब्रह्म के आनन्द को पाती है। यह पूर्ण मुक्ति है।

यह आत्मा भूल कर भी वापिस काल के जाल में नहीं आती। जैसे बच्चे का एक बार आग में हाथ जल जाए तो वह फिर उधर नहीं जाता। उसे छूने की कोशिश भी नहीं करता।

14 नं. में साहेब कबीर बता रहे हैं कि यह संसार उल्टा लटक रहा है। जैसे किसी कुँए में अमृत भरा है अर्थात् परमात्मा का आनन्द इस शरीर में है। वह दसवें द्वार के पार ही है जो इस शरीर के अन्दर नीचे को मुख वाला सुषमना द्वार है। जो सुषमणा में से पार हो जाता है वही भक्त लाभ प्राप्त करता है यह साधना नाम व गुरु धारण करके ही बनती है।

15 नं. में सतगुरु कबीर साहेब जी भेद दे रहे हैं कि जब काल साधक ऊँ नाम का जाप परमात्मा को निर्गुण जान कर गुरु धारण करके करता है तो काल स्वयं उस साधक के गुरु का (नकली शब्द रूप) रूप बनाकर आता है तथा महास्वर्ग (महाइन्द्रलोक) में ले जाता है। जब वह महाइन्द्र लोक के निकट जाते हैं तो बहुत जोर से बादल की गर्जना जैसा भयंकर शब्द होता है। जो साधक डर जाता है वह वापिस चौरासी में चला जाता है और जो नहीं डरता है वह अपने गुरु के साथ आगे बढ़ जाता है। उसे फिर सुहावना नंगारा बजता हुआ सुनाई देता है। चार पंखड़ी वाला कमल का लाल रंग का एक और कमल है उसमें ओंकार धुनि हो रही हो जो महास्वर्ग में है।

16 का अर्थ है कि संत वह है जो दशवें दरवाजे पर काल द्वारा लगाए ताले को सत्यनाम की

चाबी से खोल कर आगे ग्यारहवों द्वार जो काल ने नकली सतलोक आदि बीस ब्रह्मण्डों के पार इक्कीसवें ब्रह्मण्ड में बनाकर बन्द कर रखा है उसे भी खोल कर परब्रह्म (अक्षर ब्रह्म) के लोक में चला जाता है। क्योंकि नौ द्वार (दो नाक, दो कान, दो आँखें, मुख, गुदा-लिंग ये नौ) प्रगट दिखाई देते हैं। दसवें द्वार पर (जो सुषमना खुलने पर आता है) ताला लगा रखा है तथा ग्यारहवां द्वार परब्रह्म के लोक में प्रवेश करने वाले स्थान पर बना रखा है। जहाँ स्वयं काल भगवान सशरीर विराजमान है।

17 आगे सेत सुन्न है (जो काल भगवान ने नकली बना रखी है) वहाँ एक नकली मानसरोवर बना रखा है तथा जो निर्गुण उपासक ब्रह्म के होते हैं उन्हें इस सरोवर में स्नान कराने के बाद नकली परब्रह्म के लोक में जो महास्वर्ग में रच रखा है भेज देता है। वे अन्य साधकों की दिव्य दृष्टि से दूर हो जाते हैं। उन्हें ब्रह्म लीन मान लिया जाता है। इस स्थान को काल ने गुप्त रखा हुआ है। जो इसमें पहुँच गए वह पूर्व पहुँचे हंसों को मिल कर आनन्दित होते हैं। जैसे पित्र-पित्रों को मिलकर तथा भूत भूतों को मिल कर। इसमें रंरकार धुनि चल रही है। जिन साधकों ने खैचरी मुद्रा लगा कर साधना रंरकार जाप से की वे महाविष्णु (ब्रह्म-काल) के महास्वर्ग में चले जाते हैं। फिर काल निर्मित महासुन्न है, उसको बिना गुरु वाले हंस पार नहीं कर सकते। वहाँ पर काल ने मायावी सिंह, व्याध व सर्प छोड़ रखे हैं वे बिना गुरु के हंस को काटते हैं। इसलिए भक्ति चाहे काल लोक की करो, चाहे सतलोक की, लेकिन गुरु बनाना जरूरी है। यह सहज सुखदाई विस्तार है।

यह जो कमल वर्णन किए जा रहे हैं यह सूक्ष्म शरीर के हैं तथा सूक्ष्म शरीर भी काल द्वारा जीव पर चढाया गया है। इसलिए यह सब काल की नकली रचना का वर्णन सतगुरु बता रहे हैं। अष्ट पंखड़ी वाला एक और कमल है वह परब्रह्म का लोक कहा है। वास्तव में यह वह स्थान है जहाँ पर पूर्ण ब्रह्म अन्य रूप में निवास करता है तथा वहाँ न ब्रह्म (काल) जा सकता है तथा न तीनों देव ही जा सकते हैं। इसलिए इसे भी परब्रह्म कहा जाता है। उसके दाएं हिस्से में बारह भक्त रहते हैं। उसके बाएं में दस दल का कमल है जिसमें कर्म सन्यासी निर्गुण उपासक रहते हैं। ऐसे-2 काल ने पाँच ब्रह्म (भगवान) व पाँच अण्ड मण्डल बना रखे हैं। उनको अपनी ओर से निःअक्षर की उपाधी दे रखी है। और चार स्थान गुप्त रखे हैं जिनमें वे भक्त जो सतगुरु कबीर के उपासक होते हैं तथा फिर दोबारा काल भक्ति करने लगते हैं। उनसे काल (ब्रह्म-निरंजन) इतना नाराज हो जाता है कि उन्हें कैदी बनाकर इन गुप्त स्थानों पर रख देता है तथा वहाँ महाकष्ट देता है। आगे दो पर्वत हैं। उनके बीचों बीच एक रास्ता है। वहाँ काल के उपासक जो गुरुपद पर होते हैं उन्हें कुछ दिन इस स्थान पर रखता है। इसे भंवर गुफा भी कहते हैं। वहाँ पर ये हंस (गुरुजन) मौज मारते हैं तथा वहाँ सोहं शब्द की स्वतः धुनि चल रही है और मुरली की मीठी-2 धुनि भी चल रही होती है तथा उस स्थान में हीरे-पन्ने जड़े हुए हैं। बहुत ही मनोरम स्थान बना रखा है। जब इस सोहं मन्त्र द्वारा किए जाप से अक्षर पुरुष (परब्रह्म) के लोक से पार होने पर नकली सतलोक आता है। परब्रह्म रूप धार कर काल ही धोखा दे रहा है। उसमें महक उठती रहती है। जो बहुत विस्तृत स्थान है। यहाँ पर काल उपासक विशेष साधक (मार्कण्डे ऋषि जैसे) ही पहुँच पाते हैं। यहाँ काल स्वयं सतपुरुष बना बैठा है परंतु गुप्त ही रहता है। वहाँ पर अपने आप धुनि हो रही है। वहाँ पहुँचे हंस उस महाविष्णु रूप में बैठे नकली सतपुरुष पर आदर से चँवर करते हैं तथा आनन्दित होते हैं। उस काल रूपी सतपुरुष का रूप हजारों सूर्य और चन्द्रमाओं की रोशनी हो ऐसा सतपुरुष से कुछ मिलता जुलता रूप बना रखा है।

फिर स्वयं ही अलख पुरुष बना बैठा है तथा अलख लोक बना रखा है। फिर स्वयं ही अगम पुरुष बनकर अगम लोक में व अनामी पुरुष बनकर अकह लोक में सबको धोखा दिए बैठा है तथा कहता है कि वह तो अवर्णनीय है। यह वही जानेगा जो वहां पहुँचेगा।

कबीर साहेब जी ने शब्द के अंत में कहा कि यह सब काया स्थूल व सूक्ष्म शरीर के कमलों का न्यारा-2 विवरण आपके सामने कर दिया। यह सब वर्णन रचना का भेद आपको बताया है यह (दोनों शरीर स्थूल व सूक्ष्म के अन्दर है) काया के अन्दर ही है। इस काल की माया (प्रकृति) ने अपनी चतुराई से झूठी रचना करके सतलोक की रचना जैसी ही अण्ड (ब्रह्माण्ड) में नकली रचना कर रखी है। फिर भी इसमें और वास्तविक सतलोक में दिन और रात का अन्तर है। जैसे बारीक नमक तथा बूरा में कोई अंतर दिखाई नहीं देता परंतु स्वाद भिन्न है। कबीर साहेब कहते हैं कि हमारा मार्ग विहंगम (पक्षी) की तरह है। जैसे पक्षी जमीन से उड़ कर सीधा वृक्ष की चोटी पर पहुँच जाता है। काल साधकों का मार्ग पपील मार्ग है। जैसे चींटी जमीन से चल कर वृक्ष के तने से फिर डार व टहनियों पर से ऊपर जाती है। त्रिकुटी से कबीर साहेब के हंस विमान में बैठ कर उड़ जाते हैं। परंतु ब्रह्म (काल) के उपासक चींटी की तरह चल कर अपने-अपने इष्ट स्थान पर जाते हैं। सारनाम रूपी विमान से ही साधक सतलोक जा सकता है। अन्य किसी उपासना या मंत्र से नहीं जाया जा सकता। जैसे समुद्र को समुद्री जहाज या हवाई जहाज से ही पार किया जा सकता है, तैर कर नहीं। इसलिए पूज्य कबीर साहेब जी ने कहा है कि हम व हमारे हंस आत्मा शब्द (सत्यनाम व सार नाम) के आधार पर सतलोक चले जाते हैं। वहाँ पर आत्मा के शरीर का प्रकाश सोलह सूर्यों के प्रकाश तुल्य हो जाता है। वहाँ मनुष्य जैसा ही अमर शरीर आत्मा को प्राप्त होता है। वहाँ पर जीव नहीं कहलाता, वहाँ पर परमात्मा जैसे गुणों युक्त होकर हंस कहलाता है तथा ऊपर के दोनों लोकों अलख लोक व अगम लोक में परमहंस कहा जाता है, अनामी लोक में परमात्मा तथा आत्मा का अस्तित्व भिन्न नहीं रहता। तत्त्वज्ञान के आधार से साधक कमलों में नहीं उलझते। चूंकि सतगुरु जी सार शब्द रूपी कुंजी दे देता है, जिससे काल के सर्व ताले (बन्धन) अपने आप खुलते चले जाते हैं तथा वास्तविक शब्द की झनकार (धुनि) होने लगती है जो इस शरीर के बाहर सत्यलोक में हो रही है। हमारा सत्यलोक पिंड (शरीर) व अण्ड (ब्रह्माण्ड) के पार है। वहां जा कर आत्मा पूर्ण मुक्ति प्राप्त करती है।

॥ नकली गुरु को त्याग देना पाप नहीं ॥

यह सारी सच्चाई समझ कर वह पुण्य आत्मा काफी प्रभावित हुआ तथा कहा कि आपके द्वारा बताया गया ज्ञान सही है और हमारी साधना ठीक नहीं है। वह लगातार तीन बार सतसंग सुनने आया तथा कहा कि दिल तो कहता है कि मैं भी नाम ले लूं लेकिन मेरे सामने एक दीवार खड़ी है।

1 एक तो कहते हैं गुरु नहीं बदलना चाहिए, पाप होता है।

2 दूसरे मैंने लगभग 400-500 (चार सौ-पांच सौ) भक्तों को इसी पंथ के संत से उपदेश दिलवा रखा हैं वे मुझे अपना सरदार तथा पूर्ण ज्ञान युक्त समझते हैं। अब मुझे शर्म लगती है कि वे क्या कहेंगे? अर्थात् मुझे धिक्कारेंगे।

मैंने (संत रामपाल दास ने) उस भक्त आत्मा को बताया :- कबीर साहिब व सर्व संत यही कहते हैं कि झूठे गुरु को तुरंत त्याग दे।

प्रमाण के लिए कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 263 से सहाभार --

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार। राह न पावै शब्द का, भटकै द्वारहिं द्वार।।
जैसे एक वैद्य (डॉक्टर) से इलाज नहीं हो तो दूसरा वैद्य (डॉक्टर) ढूँढना चाहिए। गलत डॉ.
के आश्रित रह कर अपने प्राण नहीं गंवाने चाहिए।

दूसरा आपने उनको स्पष्ट बताना चाहिए कि अपनी साधना ठीक नहीं है। आप भी यहां से
दोबारा नाम ले लो तथा उन 400-500 प्राणियों का भी उद्धार करवाओ। इस पर वह ज्ञानी पुरुष
जो प्रवक्ता भी बना हुआ था बोला कि मैं गुरु नहीं बदल सकता। मेरा मान घट जाएगा तथा वे लोग
मुझे बुरा-भला कहेंगे। बेशक नरक में जाऊँ, मैं मार्ग नहीं बदल सकता। इस प्रकार जीव कहीं मान
वश तो कहीं अज्ञान वश काल के जाल में फंसा ही रहता है। इस से आप भक्त जन गीता जी के
ज्ञान को समझें तथा कबीर साहिब का उपदेश मुझ दास से प्राप्त करके कल्याण करवाएँ।

।। सतनाम का विशेष प्रमाण ।।

उस भगवान (पूर्णब्रह्म) को पाने का मन्त्र सत्यनाम (स्वासों द्वारा किया जाने वाला अजपा
जाप) व फिर सारनाम व सारशब्द की प्राप्ति पूर्णब्रह्म की सच्ची नाम साधना व उसका परिणाम
समझो। देखें - कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 51, 52, 53, 55, 56, 57 । इनमें स्पष्ट लिखा है कि
कबीर साहेब ने धर्मदास जी को सत्यनाम (ओ३म-सोहं) दिया है। कहा - "ऊँ-सोहं भजो नर लोई"
फिर कहा है - "सोहं शब्द अजपा जाप, साहेब कबीर सो आपै आप" ।

कबीर पंथी शब्दावली से सहाभार
(प्रमाण के लिए सतगुरु की वाणी) (पृष्ठ नं. 51)

चितगुण चित बिलास दास सो अंतर नाही ।

आदि अंत में मध्य गोसाईं अगह गहन में नाही ।

गहनीगहिए सो कैसा, सोहं शब्दसमान आदिब्रह्म जैसेका तैसा ।।

कहें कबीर हम खेलैं सहज सुभावा, अकह अडोल अबोल सोहं समिता ।

तामो आन बसा एकरमिता ।।

वा रमता को लखे जो कोई । ता को आवागमन न होई ।।

ऊँ-सोहं, सोहं सोई ऊँ-सोहं भजो नर लोई ।।

ऊँ कीलक सोहं वाला । ऊँ-सोहं बोले रिसाला ।।

किलक, कमत, कंमोद, कंकवत, ये चारों गुरु पीर ।।

धर्मदास को सत शब्द सुनायो, सतगुरु सत्य कबीर ।।

बाजा नाद भया पर तीत । सतगुरु आये भौजल जीत ।।

बाजबाज साहब का राज मारा कूटा दगाबाज ।।

हाजिरको हजूर गाफिलको दूर हिंदूका गुरु मुसलमानका पीर ।।

'सात द्वीपनौखंड में, सोहं सत्यकबीर' ।।

(पृष्ठ नं. 55)

पल जब पीव से लागा । धोखा तब दिलों का भागा ।।

चेतावनी चित विलास । जबलग रहे पिंजर श्वास ।।

सोहंशब्द अजपाजाप साहब कबीरसो आपहिं आप ।।

चेतावनि चितलागि रहे, यह गति लखै न कोय ।

अगम पन्थ के महल में, अनहद बानी होय ।।

नाम नैन में रमि रहा, जाने बिरला कोय ।

जाको सतगुरु मिलिया, ताको मालुम होय ।।
 झण्डा रोपा गैब का, दोय परवत के सन्ध ।
 साधु पहिचाने शब्द को, दृष्टि कमल कर बन्ध ।।
 झलके जोती झिलमिला, बिन बाती विन तेल ।।
 चहुँदिशि सूरज ऊगिया, ऐसा अदभुत खेल ।।
 जागृत रूपी रहत है, सतमत गहिर गंभीर ।
अजरनाम बिनसे नहीं, सोहँ सत्य कबीर ।।
 आरती चौका

प्रथमहिं मंदिर चौक पुराये । उत्तम आसन श्वेत बिछाये ।।
 हंसा पग आसन पर दीन्हा । सत्तकवीर कही कह लीन्हा ।।
 नाम प्रताप हंस पर छाजे । हंसहि भार रती नहीं लागे ।।
 भार उतार आप सिर लीन्हा । हंस छुडाय कालसों लीन्हा ।।
 साधसंत मिलि बैठे आई । बहु बिध भक्ति करे चितलाई ।।
 पान सुपारी नारियर केरा । लौंग लायची किसमिस मेवा ।।
 सवा सेर आनो मिष्टाना । सत सवासा उत्तम पाना ।।
 सात हाथ बस्तर परवाना । सो सतगुरुके आगे आना ।।
 इतना होय और नहीं भाई । जासों काल दगा मिट जाई ।।
 धन्य संत जिन आरति साजा । दुख दारिद्र वाके घरसे भागा ।।
 कहें कबीर सुनो धर्मदासा । ओहं—सोहँ शब्द प्रगासा ।।
 आरती चौकें (प्रथम मंदिर चौं पुराये —) में लिखा है “कहै कबीर सुनों धर्मदासा । ऊँ सोहँ शब्द प्रगासा ।।” यह सतनाम (ऊँ—सोहँ) है ।

(शब्द)

अवधु अविगत से चल आया, कोई मेरा भेद मर्म नहीं पाया ।। टेक ।।
 ना मेरा जन्म न गर्भ बसेरा, बालक है दिखलाया ।
 काशी नगर जल कमल पर डेरा, तहाँ जुलाहे ने पाया ।।
 माता—पिता मेरे कछु नहीं, ना मेरे घर दासी ।
 जुलहा को सुत आन कहाया, जगत करे मेरी है हांसी ।।
 पांच तत्व का धड़ नहीं मेरा, जानूं ज्ञान अपारा ।
 सत्य स्वरूपी नाम साहिब का, सो है नाम हमारा ।।
 अधर दीप (सतलोक) गगन गुफा में, तहां निज वस्तु सारा ।
ज्योति स्वरूपी अलख निरंजन (ब्रह्म) भी, धरता ध्यान हमारा ।।
 हाड चाम लोहू नहीं मोरे, जाने सत्यनाम उपासी ।
 तारन तरन अभै पद दाता, मैं हूं कबीर अविनासी ।।

(शब्द)

होत अनंद अनंद भजनमें, बरषत शब्द अमीकी बादर, भीजत हैं कोई संत ।।
 अग्रबास जहँ तत्त्वकी नदियां, मानो अठारा गंग ।
 कर अस्नान मगन है बैठे, चढत शब्दके रंग ।।
 पियत सुधारस लेत नामरस, चुवत अग्रके बुंद ।
 रोम रोम सब अमृत भीजे, पारस परसत अंग ।।
 श्वासा सार रचे मोरे साहब, जहां न माया मोहं ।
 कहें कबीर सुनो भाई साधू, जपो ओ३म—सोहं ।।

(शब्द)

नाम सनेह न छांडिये, भावे तन मन धन जर जाय हो ।।
 पानीसे पैदा किया, नख सिख सीस बनाय ।
 वह साहबको बिसारिया, तेरो गाढो होत सहाय ।।
 महल चुने खाई खने, ऊँचे ऊँचे धाम ।
 जब जम बैठे कंठमें तेरो, कोई न आवे काम ।।

मात पिता सुत बंधुवा, और दुलारी नार ।
 यह सब हिलमिल बीछुरे, तेरी शोभा है दिन चार ।।
 जैसे लागी औरसे, दिन दिन दूनी प्रीत ।
 नाम कबीर न छांडिये, भावे हार होयके जीत ।।

साहेब कबीर ने कहा है कि शब्द (हम अविगत से चल आए ----) में "न मेरे हाड चाम न लोह, जाने सतनाम उपासी। तारन तरन अभय पद दाता, कहेँ कबीर अविनाशी" इसका अर्थ है कि कबीर साहेब कहते हैं कि सतनाम का जाप तारन-तरन (पार करने) वाला है। फिर प्रमाणित किया है कि (स्वांसा सार रचे मोरे साहेब, जहां न माया मोहं। कह कबीर सुनों भई साधो, जपो ऊँ सोहं) स्वांसों के द्वारा सत्यनाम ऊँ-सोहं का जाप करो। इससे काल द्वारा लगाए विकार माया मोह आदि भी समाप्त हो कर सार नाम प्राप्ति के योग्य हो जाओगे। यदि सारशब्द नहीं प्राप्त हुआ तो भी मुक्ति शेष रह जाती है। उपरोक्त सत्यनाम भी पूर्ण गुरु से प्राप्त करके जाप करने से लाभ होता है, अन्यथा कोई लाभ नहीं। जैसे कोई अपने आप नौकरी लगने वाला प्रमाण-पत्र (Appointment letter) तैयार करके आप ही हस्ताक्षर कर लेगा। उसे कोई लाभ नहीं। ठीक इसी प्रकार भक्ति मार्ग पर विधिवत् चलना है, तभी सफलता मिलेगी।

(कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 425, 426, 427)

(शब्द)

तीन लोक जम जाल पसारा । नेम धर्म षटकर्म अचारा ।।
 आचारे सब दुनी भुलानी । सार शब्द कोउ विरले जानी ।।1 ।।
 सत्तपुरुषको जानै कोई । तीन लोक जाते पुनि होई ।।
 करम भरम तजि शब्द समावे । इस्थिर ज्ञान अमरपद पावे ।।2 ।।
 सत्यशब्द को करे विचारा । सो छूटे जमजाल अपारा ।।
 कहै कबीर जिन तत्त विचारा । सोहं शब्द है अगम अपारा ।।3 ।।
 शब्द हमारा सत्य है, सुनि मत जाहु सरख ।
 जो चाहे निज मुक्तिको, लीजो शब्दहिं परख ।।4 ।।

उपरोक्त शब्द में कहा है (तीन लोक यम जाल पसारा --- । कोई शब्द सार निःअक्षर सोई में) सत्यनाम का अभ्यास भली प्रकार हो जाने पर पूरा गुरु आपको सार शब्द देवेगा। इस सार शब्द को प्राप्त करने योग्य बहुत कम भक्तजन होते हैं। प्रमाण है कि साहेब कबीर के चौसठ लाख शिष्यों में से केवल धर्मदास साहेब ही सारशब्द के अधिकारी हुए थे अन्य नहीं। जिस समय साहेब कबीर ने धर्मदास जी को सारशब्द प्राप्त कराया उस समय कहा था "धर्मदास तोहे लाख दुहाई, सार शब्द कहीं बाहर न जाई" । सार शब्द पूरा (पूर्ण) गुरु देवेगा।

(शब्द)

नाम अमलमें रहे मतवाला । प्रेम अभीका पीवे प्याला ।।

ज्ञान दीप निज भीतर बारा । सो कहिये सांचा कडिहारा ।।1 ।।
 और अमलको रंग न करई । माया ममताको पर हरई ।।
 सार शब्दमें ध्यान लगावे । सो कडिहार जम जाल बचावे ।।2 ।।
 दया छमा और शील विचारा । धीरज धरम संतोष अचारा ।।
 यह सब धरे ममता मारे । सो कडिहार जगत जल तारे ।।3 ।।
 शब्द सरोतर हिरदय सांचा । छाडि परपंच सत्यसे राँचा ।।
 सत्यनाम मो रहै न काँचा । सो कडिहार जगत सो बाँचा ।।4 ।।
 कुल करन को मेटै धोखा । समता ज्ञान सु अंतर पोखा ।।
 ज्ञान रतनके पूरे नौका । सो कडिहार बैठि है चौका ।।5 ।।
 दया छिमा संतोष विचारा । शील वैराग ज्ञान अधारा ।।
 काम क्रोध चिन्ता नहिं परई । सो कडिहार आरति करई ।।6 ।।
 आसा वासा मनको नासे । माया मोह न फटके पासे ।।
 कर्म कला सो तिनका तोरे । सो कडिहार नारियल मोरे ।।7 ।।
 सिख साखा सब प्रेम बढावै । बहुत भांति ते सेवा लावै ।।
 कोटिक शिष्य करै सनमाना । रह कडिहार शब्द लपटाना ।।8 ।।
 गुरुका शब्द सदा परकासे । भेद भरम का दुविधा नासे ।।
 नहिं तो कालरूप कडिहारा । सब जीवनका करै अहारा ।।9 ।।
 लोभ मोहकी धरै सगाई । शब्द छाडि जग करै ठगाई ।।
 शब्द चाल हिरदे नहिं आवे । सो कडिहार कैसे लोक सिधावे ।।10 ।।
 आसन चाँपै फूलके, भरै जो जु जमको भाव ।
 कहै कबीर तब जानि है, पडै बज्रको घाव ।।

फिर (नाम अमलमें रहै मतवाला -----) इसमें कहा है कि पूर्ण गुरु (कडिहार) जो जीव को काल के लोक से निकाल कर सतलोक (सत्यनाम व सारनाम-सारशब्द के आधार) ले जाता है वह कडिहार (काड़ने/निकालने वाला) कहलाता है। यदि सत्यनाम (ऊँ-सोहं) नहीं देता तथा फिर सारनाम नहीं देता वह काल का स्वरूप गुरु (नकली कडिहार) है अर्थात् काल साधना करवा कर नरक भिजवा देगा, वह काल का ऐजेंट है। नाम देने का अधिकारी वही है जिसको गुरु जी ने आदेश दे रखा है तथा सत्यनाम व सारनाम साधना बताता है।

(शब्द)

सतगुरु सो सतनाम सुनावे । और गुरु कोइ काम न आवे ।।
 तीरथ सोई जो मोछे पापा । मित्र सोई जो हरै संतापा ।।1 ।।
 जोगी सो जो काया सोधे । बुद्धि सोई जो नाहि विरोधे ।।
 पण्डित सोई जो आगम जानै । भक्त सोई जो भय नहिं आनै ।।2 ।।
 दातै जो औगुन परहरई । ज्ञानी सोइ जीवता मरई ।।
 मुक्ता सोई सतनाम अराधे । श्रोता सोई जो सुरतिहिं साधे ।।3 ।।
 सेवक सोई गहे विश्वासा । निसिदिन राखे संतन आसा ।।
 सतगुरु का लोपै नहि बाचा । कहै कबीर सो सेवक सांचा ।।4 ।।

“सतगुरु सो सतनाम सुनावै” इसमें कहा है कि वही सतगुरु है जो सत्यनाम देता है अन्य नाम देने वाला गुरु कोई काम नहीं आवेगा। उल्ट काल के मुख में ले जावेगा। वह शिष्य पार होएगा जो गुरु वचन को मान कर गुरु जी के अनुसार चलेगा।

(कबीर पंथी शब्दावली पृष्ठ नं. 353)

दुनिया अजब दिवानी, मोरी कही एक न मानी ।।टेक ।।
 तजि प्रत्यक्ष सतगुरु परमेश्वर, इत उत फिरत भुलानी ।।
 तीरथ मूरति पूजत डोले, कंकर पत्थर पानी ।।1 ।।
 विषय वासनाके फन्दे परि, मोहजाल उरझानी ।।
 सुखको दुख दुखको सुख माने, हित अनहित नहिं जानी ।।2 ।।
 औरनको मूरख ठहरावत, आप बनत है सयानी ।।
 साँच कहौं तो मारन धावे, झूठेको पतियानी ।।3 ।।
 तीन गुणों की करत उपासना, भ्रमित फिरें अज्ञानी ।।
 गीता कहे इन्हें मत पूजो, पूर्ण ब्रह्म पिछानी ।।4 ।।
 ब्रह्म उपासत ऋषि मुनि, भ्रमत चारों खानी ।।
 कहैं कबीर कहां लग बरणों, अद्धभुत खेल बखानी ।।5 ।।

“दुनियां अजब दिवानी -----” में कहा है कि भक्तजनों ने मेरे द्वारा बताई गई भक्ति की विधि नहीं मानी। गुरु रूपी प्रत्यक्ष परमात्मा को छोड़कर तीर्थ यात्रा, पत्थर पूजा, पित्र पूजा आदि पूजन करते हैं। श्री मदभगवत गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15, 20 से 23 में स्पष्ट किया है कि तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की उपासना करने वाले मूर्ख हैं वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच दुष्कर्म करने वाले हैं वे मेरी (गीता ज्ञान दाता ब्रह्म की) पूजा भी नहीं करते। फिर गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में ब्रह्म साधना को अनुत्तम (अश्रेष्ठ) कहा है क्योंकि पूर्ण मोक्ष नहीं होता। इसलिए ऋषि-मुनि जन ब्रह्म साधना करके भी काल जाल में जन्म-मृत्यु में ही रह जाते हैं। इसलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए उस पूर्ण परमात्मा की शरण ग्रहण करो। काल के दबाव में आकर सच्चाई को तो झूठ मानते हैं और झूठ को सच। सच्चाई बतावें तो मारने दौड़ते हैं। कबीर परमेश्वर जी स्वयं परमात्मा आए थे। इसलिए कहा है कि मैं पूर्ण परमात्मा स्वयं सतगुरु भेष में कह रहा हूँ मेरी एक नहीं मानता अन्य भ्रमित करने वालों की बातें मान कर इधर-उधर भटकते रहते हैं। पूर्ण सतगुरु का मार्ग ग्रहण करने से मोक्ष सम्भव है परमात्मा कबीर जी का संकेत है कि जब भी पूर्ण सन्त सतगुरु प्रकट होता है उसके द्वारा बताए मार्ग पर लग कर मोक्ष प्राप्त करना ही बुद्धिमता है।

(कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 271 से 275 तक)

स्वासा सुमिरण होत है, ताहि न लागै बार ।
 पल पल बन्दगी साधना, देखो दृष्टि पसार ।।173 ।।
 सत्य नामको खोजिले, जाते अग्नि बुझाय ।
 बिना सतनाम बांचे नहीं, धरमराय धरि खाय ।।184 ।।
 कबिरा सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।
 आदि अंत मध सोधिया, दूजा देखा काल ।।192 ।।
 नाम लिया जिन सब लिया, सकल वेदका भेद ।
 बिना सतनाम नरके पड़ा, पढता चारु वेद ।।198 ।।
 राम नाम निज औषधी, सतगुरु दर्ई बताय ।
 औषध खाय रु पथ रहै, ताको वेदन जाय ।।201 ।।
 आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस ।
 जिन जाना निज नामको, अमर भयो र्यों बंस ।।205 ।।

आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार ।
 कहै कबीर निज नाम बिन, बूडि मुआ संसार । |206 | |
 आदि नामको खोजहू, जो है मुक्ति को मूल ।
 ये जियरा जप लीजियो, भर्म मता मत भूल । |207 | |

कहै कबीर निज नाम बिन, मिथ्या जन्म गवांय ।
 निर्भय मुक्ति निःअक्षरा, गुरु विन कबहुँ न पाय । |208 | |
 जो जन होवे जौहरी, सो धन ले बिलगाय ।
 सोहं सोहं जपि मुये, मिथ्या जन्म गँवाय । |218 | |

सबको नाम सुनावहू, जो आवे तूव पास ।
 शब्द हमारो सत्य है, दृढ राखो विश्वास । |220 | |
 होय विवेकी शब्दका, जाय मिलै परिवार ।
 नाम गहै सो पहुँचिहैं, मानहु कहा हमार । |221 | |

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह ।
 परसतही कंचन भया, छूटा बंधन मोह । |222 | |
 सुरति समावे नामसे, जगसे रहै उदास ।
 कहै कबीर गुरु चरणमें, दृढ राखै विश्वास । |223 | |

ज्ञान दीप प्रकाश करि, भीतर भवन जराय ।
 बैठे सुमरे पुरुषको, सहज समाधि लगाय । |229 | |
 अछय बृक्षकी डोर गहि, सो सतनाम समाय ।
 सत्य शब्द प्रमाण है, सत्यलोक कहँ जाय । |230 | |

कोइ न यम सो बाचिया, नाम बिना धरिखाय ।
 जे जन बिरही नामके, ताको देखि डराय । |232 | |
 कर्म करै देही धरै, औ फिरि फिरि पछताय ।
 बिना नाम बांचे नहीं, जिव यमरा लै जाय । |233 | |

(स्वांसा सुमरण होत है -----) इन दोहों में कहा है कि जो सत्यनाम (ऊँ-सोहं) स्वांसो द्वारा होता है उसकी खोज करो अर्थात् इस मन्त्र को देने वाला पूर्ण गुरु मिले उससे उपदेश लो तथा स्मरण करो। फिर पूर्ण गुरु आपको सारनाम देवेगा। यदि सारनाम नहीं मिला तो आपका जीवन निष्फल है। हाँ, सत्यनाम के आधार से आपको मनुष्य जन्म मिल जाएगा। परंतु सत्यलोक प्राप्ति नहीं।

इसलिए कहा है कि जो ज्ञान योगयुक्त होगा वही हमारे सारनाम को पाने की लग्न लगाएगा अन्यथा केवल सत्यनाम (ऊँ-सोहं) से भी जीव छुटकारा नहीं है।

इस स्थिति में गीता जी में कहा है कि मूढ (मूर्ख) जिन्हें सच्चाई का ज्ञान नहीं है, वे तो वैसे ही अनजानपने में सतमार्ग स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए उनको बार-2 कहना हानिकारक हो सकता है। कबीर साहेब कहते हैं :-

कबीर सीख उसी को दीजिए, जाको सीख सुहाय ।

सीख दयी थी वानरा, बड़्यों का घर जाय ।।

अर्थात् वे उल्टे गले पड़ जाएंगे। मरने मारने को तैयार हो जाएंगे। जैसे साहेब कबीर के पीछे काशी के पाण्डे व काजी मुल्ला पड़ गए थे लेकिन सच्चाई स्वीकार नहीं की।

जो ज्ञानी पुरुष है जो समझते भी हैं कि हम गलत साधना स्वयं कर रहे हैं तथा अनुयाईयों को भी गलत मार्ग दर्शन कर रहे हैं वे अपनी मान बड़ाई वश नहीं मानते। वे चातुर (चतुर) प्राणी कहे

हैं। इसलिए दोनों ही भक्ति अधिकारी नहीं हैं।

यथार्थ साधना : जो सोहं का जाप दो हिस्से करके स्वांस-उस्वांस से करते हैं वे किसी उपास्य इष्ट की प्राप्ति या निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए करते हैं वह इसका अर्थ लगाता है कि सो - अहम् [वह (इष्ट-भगवान जिसके वे उपासक हैं मान कर जपते हैं)] और सोचते हैं कि वह ईश्वर (अहम्) में ही हूँ। इसका ही दूसरा अर्थ लगाते हैं कि अहम् ब्रह्मास्मि। वे भक्त महिमा तो गाते हैं विष्णु भगवान की और नाम जपते हैं सोहं। यह साधना उन्हें स्वर्ग प्राप्ति करवा कर फिर चौरासी लाख योनियों में भरमाती है।

ऊँ और सोहं का इकट्ठा जाप 'सत्यनाम' कहलाता है। यह स्वांसों द्वारा जपा जाता है। इसे 'अजपा जाप' भी कहते हैं। इसी का प्रमाण कबीर साहेब की वाणी में है जिसमें धर्मदास को नाम दिया है। कबीर पंथी शब्दावली में पृष्ठ नं. 51 पर वाणी में लिखा है "ओ३म-सोहं भजो नर लोई", यही सत्यनाम है।

फिर कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 52-53 पर लिखा है।

श्रोता वक्ता की अधिक महिमा, विचार कुण्ड नहाईए। सारशब्द निबेर लीजे, बहुरि न भवजल आईए॥ सर्वसाधु संत समाज मध्ये, भक्ति मुक्ति दृढाईए। सुमिरण कर सतलोक पहुँचे, बहुरि न भवजल आईए॥ सोहं शब्द अजपा जाप, साहेब कबीर सो आपही आप। सोहं शब्द से कर प्रीति, अनभय अखण्ड घर को जीत॥ तन की खबर कर भाई, जा में नाम रूसनाई॥

फिर "ज्ञानगुदरी" कबीर पंथी शब्दावली के पृष्ठ नं. 55 पर।

इसमें लिखा है :- मन को मारने का साधन सत्यनाम (ऊँ-सोहं) है केवल ऊँ मन्त्र नहीं। सत्यनाम स्वांसों से सुमरण होता है। ॐ शब्द का जाप काल लोक पार करने के बाद अपने आप बन्द हो जाता है तथा सोहं मन्त्र का जाप प्रारम्भ रहता है। परब्रह्म के लोक को पार करके भंवर गुफा आती है वहां तक सोहं शब्द के जाप की कमाई ले जाती है। आगे सत्यलोक में सारशब्द की कमाई ले जाती है।

निहचे धोति पवन जनेऊ, अजपा जाप जपे सो जाने भेऊ। इंगला, पिंगला के घर जाई, सुषमना नीर रहा ठहराई॥

ऊँ-सोहं तत्त्व विचारा, बंकनाल में किया संभारा॥

मनको मार गगन चढिजाई, मानसरोवर पैठ नहाई॥

इसी का प्रमाण महाराज गरीबदास साहेब जी (छुड़ानी, हरियाणा) ने अपनी वाणी में दिया है। सतग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 425 पर।

राम नाम जप कर थीर होई। ऊँ-सोहं मन्त्र दोई॥

कहा पढो भागवत गीता, मनजीता जिन त्रिभुवन जीता।

मनजीते बिन झूठा ज्ञाना, चार वेद और अठारा पुराना॥

इसका अर्थ है कि राम (ब्रह्म-अल्लाह-रब) का नाम जप कर निश्चल हो जाओ। भ्रमों भटको मत। वह राम का नाम ऊँ-सोहं है इसी से मन जीता जा सकता है। यदि यह सत्यनाम (ऊँ-सोहं) पूर्ण गुरु से प्राप्त नहीं हुआ चाहे आपको इस पुस्तक के पढ़ने से ज्ञान भी हो जाए कि सत्यनाम यह 'ऊँ-सोहं' है तथा नाम जाप भी करने लग जाँएँ तो भी कोई लाभ नहीं है। या नकली गुरु बन कर यह नाम देने लग जाए। वह पाखंडी स्वयं नरक में जाएगा तथा अनुयाईयों को भी डुबोएगा। वर्तमान में सत्यनाम व सारनाम दान करने का केवल मुझ दास (संत रामपाल दास) को आदेश मिला है। एक समय में एक ही तत्त्वदर्शी संत आता है, जो पूर्ण परमात्मा कबीर साहेब (कविदेव) का कृप्या पात्र होता है। अन्य कोई उपरोक्त नामदान करता है तो उसे नकली जानों।

इसलिए इस सतनाम के जाप से मन जीता जा सकता है। इसके प्राप्त हुए बिना चाहे ब्रह्मा जैसा विद्वान हो वह भी मन के आधीन रहेगा। फिर सारनाम व सारशब्द पूरा गुरु प्रदान करके पार करेगा।

विशेष वर्णन :- गरीबदास जी कृत सतग्रन्थ साहिब के पृष्ठ नं. 423 से 427 और 431 से 437 से सहाभार

सौ करोर दे यज्ञ आहूती, तौ जागै नहीं दुनिया सूती।

कर्म काण्ड उरले व्यवहारा, नाम लग्या सो गुरु हमारा ॥

शंखौं गुणी मुनी महमंता, कोई न बूझै पदकी संथा ॥

शंखौं मौनी मुद्रा धारी, पावत नांही अकल खुमारी।

शंखौं तपी जपी और जोगी, कोईन अमी महारस भोगी ॥

शंखौं उर्ध्वमुखी आकाशा, पावत नांही पदहि निवासा।

शंखौं करै आचार बिचारा, सोतो जांहि धर्म दरबारा ॥

शंखौं बहु विधि भेष बनावै, साक्षी भूत कोई नहीं पावै।

शंखौं जोगी जोग जुगंता, पावत नांही पदकी संथा ॥

शंखौं जती सती जरि जांही, सो पावै नहीं पदकी छांही।

शंखौं दानी भुगतै दाना, पावत नांही पद निर्वाणा ॥

शंख अश्वमेघ खड़ी दरबारा, है कोई हमकूं त्यारन हारा।

शंखौं गंगा और किदारा, परम पदारथ इनसैं न्यारा ॥

शंखौं वेद पाठ धुनि होई, उस पदकूं बांचे नहीं काई।

तीरथ शंख नदी बहु भांती, वा पद सेती कोई न राती ॥

शंखौं शालिग पूजनहारा, कोई न पावै पद दीदारा ॥

गरीब, शालिग पूजि दुनिया मुई, प्रतिमा पानी लाग।

चेतन होय जड पूजहीं, फूटे जिनके भाग ॥81 ॥

शंखौं नेमी नेम करांही, भक्ति भाव बिरलै उर आंही।

उस समर्थ का शरणा लैरे, चौदा भुवन कोटि जय जय रे ॥

ऊपर की साखियों चौपाईयों में गरीबदास जी महाराज जो कबीर साहेब के शिष्य कह रहे हैं कि -

ज्ञानहीन प्राणी नहीं समझते कि सच्चे नाम व सच्चे (अविनाशी) भगवान (सत साहेब) के भजन व शरण बिना भावें करोंडों यज्ञ करो। संखों विद्वान (गुणी) महंत व ऋषि अपने स्वभाव वश सच्चाई (सत्य साधना) को स्वीकार नहीं करते। अपने मान वश शास्त्र विधि रहित पूजा (साधना) करते हैं तथा नरक के भागी होते हैं। गीता जी के अध्याय 16 के श्लोक 23-24 में यही प्रमाण है।

संखों मौनी (मौन धारण करने वाले) तथा पाँचों मुद्रा प्राप्ति (चांचरी-भूचरी, खेंचरी-अगोचरी, ऊनमनी) किए हुए भी काल जाल में ही रहते हैं। शंखों जप (केवल ऊँ नाम का व ऊँ नमो भागवते वासुदेवाय नमः, ऊँ नमो शिवाय, राधा स्वामी नाम व पाँचों नाम-ओंकार, ज्योति निरंजन, रंरकार, सोहं, सतनाम जाप या अन्य नाम जो पवित्र गीता जी व पवित्र वेदों तथा परमेश्वर कबीर साहेब जी की अमृतवाणी व अन्य प्रभु प्राप्त संतों की अमृतवाणी से भिन्न हैं) करने वाले तथा तपस्वी व योगी भी पूर्ण मुक्त नहीं हैं। पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं है। नाना प्रकार के भेष (वस्त्र भिन्न गैरुवे वस्त्र पहनना, जटा रखना या पत्थर पूजने वाले, मूँढ मुंडवाना, नाना पंथों के अनुयायी बन जाना) भी व

आचार-विचार कर्मकाण्ड करने वाले, शंखों दानी दान करने वाले व गंगा-किदार नाथ गया आदि अड़सठ तीर्थ या चारों धर्मों की यात्रा करने वाले भी परमात्मा का तत्वज्ञान न होने से ईश्वरीय आनन्द का लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। पूर्ण मुक्त नहीं हो सकते। श्री गीता जी के अध्याय 11 के श्लोक 48 में स्पष्ट कहा है कि अर्जुन मेरे इस वास्तविक ब्रह्म (काल-विराट) रूप को कोई न तो पहले देख पाया न ही आगे देख सकेगा। चूंकि मेरा यह रूप (अर्थात् ब्रह्म-काल प्राप्ति) न तो यज्ञों से, न ही तप से, न ही दान से, न ही जप से, न ही वेद पढ़ने से, अर्थात् वेदों में वर्णित विधि से न ही क्रियाओं से देखा जा सकता अर्थात् परमात्मा { जो यहाँ तीन लोक व इक्कीस ब्रह्माण्ड का भगवान (काल) है } की प्राप्ति किसी भी साधना से नहीं हो सकती। पवित्र गीता जी में वर्णित पूजा (उपासना) विधि से सिद्धियाँ प्राप्ति, चार मुक्ति (जो स्वर्ग में रहने की अवधि भिन्न होती है तथा कुछ समय इष्ट देव के पास उसके लोक में रह कर फिर चौरासी लाख जूनियों में भ्रमणा-भटकणा बनी रहेगी)। जिसमें काल (ब्रह्म) भगवान कह रहा है कि मेरी शरण में आ जा। तुझे मुक्त कर दूंगा। वह काल (ब्रह्म) भजन के आधार पर कुछ अधिक समय स्वर्ग में रख कर फिर नरक में भेज देता है। क्योंकि पवित्र गीता जी में कहा है कि जैसे कर्म प्राणी करेगा (जैसे का भाव पुण्य भी तथा पाप भी दोनों भोग्य हैं) वे उसे भोगने पड़ेंगे। फिर कहते हैं कि कल्प के अंत में सर्व (ब्रह्मलोक पर्यान्त) लोकों के प्राणी नष्ट हो जाएंगे। उस समय स्वर्ग व नरक समाप्त हो जाएंगे तथा कहा है कि फिर सृष्टि रचूँगा। वे प्राणी फिर कर्माधार पर जन्मते मरते रहेंगे। फिर पूर्ण मुक्ति कहाँ? श्री गीता जी के अध्याय 9 का श्लोक 7 में प्रमाण है।

इसमें साफ लिखा है कि प्रलय के समय सर्व भूत प्राणी नष्ट हो जाएंगे। फिर अर्जुन कहाँ बचेगा? इसलिए गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि उस पूर्ण परमात्मा (समर्थ) पूर्ण ब्रह्म (कबीर साहेब) की शरण में जाओ जिसको प्राप्त कर फिर सदा के लिए जन्म-मरण मिट जाएगा। पूर्ण मुक्त हो जाओगे। इसी का प्रमाण श्री गीता जी देती है। अध्याय 18 श्लोक 46, 62, 66 और अध्याय 8 के श्लोक 8, 9, 10 और अध्याय 2 का श्लोक 17 में प्रमाण है।

सोहं मंत्र कल्प किदारा, अमर कछ होय पिंड तुमारा ॥

ऊँ आदि अनादि लीला, या मंत्र मैं अजब करीला ।

सोहं सुरति लगै सहनांना, टूटै चौदा लोक बंधाना ॥

राम नाम जपि करि थिर होई, ऊँ सोहं मंत्र दोई ।

गगन मंडलमें सुनि अधारी, शंखों कल्प लगी जुग तारी ।

अनंत कोटि जाकै अवतारा, राम कृष्ण ठाडे दरबारा ॥

ब्रह्माविष्णु और शंकर जोगी, अनंत कोटि रसिया रस भोगी ।

परानंदनी नाद बजावै, तास पुरुष शिर चौँर दुरावै ॥

कोटि रामायण गीता गावैं, ठारा पुराण पढै चित्तलावैं ।

ऋग यजु साम अथर्वण पढिया, एकै पैँड पंडित नहीं चढिया ॥

दिव्य दृष्टिकूँ दर्शन होई, चौदाह भुवन फिरौं क्यों न कोई ।

सतगुरु बिना सुरति नहीं लागै, जरै मरै कुल देही त्यागै ॥

सतगुरु बतलावै ठौर ठिकाना, को मारै प्रबीन निशाना ॥

सुख निधान है सुरति सनेही, प्रगट बोलै पुरुष विदेही ।

निजानंद निर्गुणनिःकामी, पूरण ब्रह्म परमगुरु स्वामी ॥

सोहं सुरति निरति सैं सेवै, आप तरै औरनकूँ खेवै ।

परमहंस वीर्य बिस्तारा, ऊँ मंत्र कीन्ह उचारा ॥
 सोहं सुरति लगावै तारी, काल बलीसैं जाइ न टारी ॥
 गरीब, कालबली कलि खात है, संतों कौं प्रणाम ।
 आदि अंत आदेश है, ताहि जपै निज नाम ॥92 ॥

गिरिवर नदी निवासा, ठार भार बनमाला ।
 ऊँ सोहं श्वासा, कर्म कुसंगति काला ॥11 ॥
 सुख सागर आनंदा, सुमरथ शब्द सनेही ।
 मेटत है दुःख दुंदा, पूरण ब्रह्म विदेही ॥13 ॥

ऊँ सोहं मूलं, मध्य सलहली सूतं ।
 बिनशत यौह अस्थूलं, न्यारा पद अनभूतं ॥48 ॥
 ऊँ सोहं दालं, अकंडा बीज अंकूरं ।
 ऊँ कला कर्तारं, नाद बिन्द सुर पूरं ॥49 ॥

ऊँ सोहं सीपं, स्वांति बिना क्या होई ।
 निपजत है दिल दीपं, स्वाती बून्द परोई ॥51 ॥
 सुकच मीन होय संगी, मोती सिन्धु पठावै ।
 झूठी प्रीति इकंगी, सतगुरु शब्द मिलावै ॥55 ॥

सत्य सुकृत संगती, छाड़ि दिया निज नामा ।
 देवल धामौ जाती, भूलि गये औह धामा ॥79 ॥
 षट् शास्त्र संगीता, पढे बनारस जाई ।
 पंडित ज्ञानी रीता, औह अक्षर इहां नांही ॥86 ॥

कोटि ज्ञान बकि मूवा, ब्रह्म रंद्र नहीं जाना ।
 जैसे सिंभल सूंवा, शीश धुनि पछिताना ॥87 ॥
 कर्मकाण्ड व्यवहारा, दीन्हा होय सो पावै ।
 नहीं प्राण निस्तारा, भवसागर में आवै ॥93 ॥

उस समर्थ (परमात्मा-परमेश्वर-पूर्ण ब्रह्म) को प्राप्ति की विधि सत्यनाम व सारनाम है। सत्यनाम (ऊँ-सोहं) का काम है, कि ऊँ मन्त्र स्वर्ग व महास्वर्ग तक की प्राप्ति करवा देता है, इस मन्त्र की यह करामात है, साथ में सोहं मन्त्र का जाप चौदह लोकों के बन्धन से मुक्त कर देता है। फिर सार शब्द प्राप्ति कर पूर्ण मुक्त हो जाता है। ऊँ मन्त्र से काल का ऋण उतारना है तथा साथ में सोहं मन्त्र के जाप को सारनाम में लौ लगा के जपे तो कालबलि (ब्रह्म) से रूक नहीं सकता। वह हंस पार हो जाएगा। सारनाम बिना केवल ॐ तथा सोहं मन्त्र से भी लाभ नहीं है, जैसे ॐ तो सीप की काया जानों, सोहं सीप में जीव जानों, यदि सारनाम रूपी स्वांति नहीं मिली तो मुक्ति रूपी मोती नहीं बनेगा। सारनाम तो छोड़ दिया। छः शास्त्रों, गीता जी में, वेदों में सोहं का जाप नहीं है। इसलिए विद्वान (पंडित) ऋषि, मुनि सर्व पूर्ण मोक्ष से वंचित हैं पूर्ण मुक्त नहीं हैं।

निम्नलिखित वाणियों कबीर सागर के ज्ञान बोध से ली गई हैं।

॥ कबीर साहेब का शब्द ॥

ऐसा राम कबीर ने जाना । धर्मदास सुनियो दै काना ॥
 सुन्न के परे पुरुष को धामा । तहँ साहेब है आदि अनामा ॥
 ताहि धाम सब जीवका दाता । मैं सबसों कहता निज बाता ॥

रहत अगोचर (अव्यक्त)सब के पारा । आदि अनादि पुरुष है न्यारा ॥
 आदि ब्रह्म इक पुरुष अकेला । ताके संग नहीं कोई चेला ॥
 ताहि न जाने यह संसारा । बिना नाम है जमके चारा ॥
 नाम बिना यह जग अरुझाना । नाम गहे सौ संतसुजाना ॥
 सच्चा साहेब भजु रे भाई । यहि जगसे तुम कहो चिताई ॥
 धोखा में जिव जन्म गँवाई । झूठी लगन लगाये भाई ॥
 ऐसा जग से कहु समझाई । धर्मदास जिव बोधो जाई ॥
 सज्जन जिव आवै तुम पासा । जिन्हें देवैं सतलोकहि बासा ।
 भ्रम गये वे भव जलमाहीं । आदि नाम को जानत नाहीं ॥
 पीतर पाथर पूजन लागे । आदि नाम घट ही से त्यागे ॥
 तीरथ बर्त करे संसारे । नेम धर्म असनान सकारे ॥
 भेष बनाय विभूति रमाये । घर घर भिक्षा मांगन आये ॥
 जग जीवन को दीक्षा देही । सतनाम बिन पुरुषहि द्रोही ॥
 ज्ञान हीन जो गुरु कहावै । आपन भूला जगत भूलावै ॥
 ऐसा ज्ञान चलाया भाई । सत साहबकी सुध बिसराई ॥
 यह दुनियां दो रंगी भाई । जिव गह शरण असुर (काल) की जाई ॥
 तीरथ व्रत तप पुन्य कमाई । यह जम जाल तहाँ ठहराई ॥
 यहै जगत ऐसा अरुझाई । नाम बिना बूड़ी दुनियाई ॥
 जो कोई भक्त हमारा होई । जात वरण को त्यागै सोई ॥
 तीरथ व्रत सब देय बहाई । सतगुरु चरणसे ध्यान लगाई ॥
 मनहीं बांध स्थिर जो करही । सो हंसा भवसागर तरही ॥
 भक्त होय सतगुरुका पूरा । रहै पुरुष के नित्त हजुरा ॥
 यही जो रीति साधकी भाई । सार युक्ति मैं कहूँ गुहराई ॥
 सतनाम निज मूल है, यह कबीर समझाय ।
 दोई दीन खोजत फिरें, परम पुरुष नहीं पाय ॥
 गहै नाम सेवा करै, सतनाम गुण गावै ।
 सतगुरु पद विश्वास दृढ़, सहज परम पद पावै ॥
 ऐसे जग जिव ज्ञान चलाई । धर्मदास तोहि कथा सुनाई ॥
 यही जगत की उलटी रीती, नाम न जाने कालसों प्रीती ॥
 वेद रीति सुनयो धर्मदासा । मैं सब भाख कहों तुम पासा ॥
 वेद पुराण में नामहि भाषा । वेद लिखा जानो तुम साखा ॥
 चीन्हों है सो दूसर होई । भर्म विवाद करें सब कोई ॥
 मूल नाम न काहू पाये । साखा पत्र गह जग लपटाये ॥
 डार शाख को जो हृदय धरहीं । निश्चय जाय नरकमें परहीं ॥
 भूले लोग कहे हम पावा । मूल वस्तु बिन जन्म गमावा ॥
 जीव अभागि मूल नहीं जाने । डार शाख को पुरुष बखाने ॥
 पढ़े पुराण और वेद बखाने । सतपुरुष जग भेद न जाने ॥
 वेद पढ़े और भेद न जाने । नाहक यह जग झगड़ा ठाने ॥
 वेद पुराण यह करे पुकारा । सबही से इक पुरुष नियारा ।
 तत्वदृष्टा को खोजो भाई, पूर्ण मोक्ष ताहि तैं पाई ।
 कवि: नाम जो बेदन में गावा, कबीरन् कुरान कह समझावा ।

वाही नाम है सबन का सारा, आदि नाम वाही कबीर हमारा ।।

अध्याय 15 के श्लोक 16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरः च अक्षरः एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोक्षर उच्यते ।।
द्वौ, इमौ, पुरुषौ, लोके, क्षरः, च अक्षरः, एव, च,
क्षरः, सर्वाणि, भूतानि, कूटस्थः, अक्षरः, उच्यते ।।

अनुवाद : (लोके) इस संसारमें (द्वौ) दो प्रकारके (पुरुषौ) प्रभु हैं । (क्षरः) नाशवान् प्रभु अर्थात् ब्रह्म(च) और (अक्षरः) अविनाशी प्रभु अर्थात् परब्रह्म (एव) इसी प्रकार (इमौ) इन दोनों के लोक में (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणियोंके शरीर तो (क्षरः) नाशवान् (च) और (कूटस्थः) जीवात्मा (अक्षरः) अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है ।

अध्याय 15 के श्लोक 17

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।
उत्तमः, पुरुषः तु, अन्यः, परमात्मा, इति, उदाहृतः ।
यः लोकत्रयम्, आविश्य, बिभर्ति, अव्ययः, ईश्वरः ।

अनुवाद : (उत्तम) उत्तम (पुरुषः) प्रभु (तु) तो उपरोक्त क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म तथा अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म से (अन्यः) अन्य ही है (परमात्मा) परमात्मा (इति) इस प्रकार (उदाहृतः) कहा गया है (यः) जो (लोकत्रयम्) तीनों लोकोंमें (आविश्य) प्रवेश करके (बिभर्ति) सबका धारण-पोषण करता है एवं (अव्ययः) अविनाशी (ईश्वरः) उपरोक्त प्रभुओं से श्रेष्ठ प्रभु अर्थात् परमेश्वर है ।

अध्याय 15 के श्लोक 18

यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोअस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।
यस्मात्, क्षरम् अतीतः, अहम्, अक्षरात् अपि च उत्तम ।
अतः अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।

अनुवाद : (यस्मात्) क्योंकि (अहम्) मैं काल – ब्रह्म(क्षरम्) नाशवान् स्थूल शरीर धारी प्राणियों से (अतीतः) श्रेष्ठ (च) और (अक्षरात्) अविनाशी जीवात्मासे (अपि) भी (उत्तमः) उत्तम हूँ (च) और (अतः) इसलिये (लोके, वेदे) लोक वेद में अर्थात् कहे सुने ज्ञान के आधार से (पुरुषोत्तमः) श्रेष्ठ भगवान् अर्थात् कुल मालिक नामसे (प्रथितः) प्रसिद्ध (अस्मि) हूँ । परन्तु वास्तव में कुल मालिक तो अन्य ही है ।

ताहि न यह जग जाने भाई । तीन देव में ध्यान लगाई ।।

तीन देव की करहीं भक्ति । जिनकी कभी न होवे मुक्ति ।।

तीन देव का अजब खयाला । देवी-देव प्रपंची काला ।।

इनमें मत भटको अज्ञानी । काल झपट पकड़ेगा प्राणी ।।

तीन देव पुरुष गम्य न पाई । जग के जीव सब फिरे भुलाई ।।

जो कोई सतनाम गहे भाई । जा कहैं देख डरे जमराई ।।

ऐसा सबसे कहीयो भाई । जग जीवों का भरम नशाई ।।

कह कबीर हम सत कर भाखा, हम हैं मूल शेष डार, तना रू शाखा ।।

साखी :

रूप देख भरमो नहीं, कहैं कबीर विचार । अलख पुरुष हृदये लखे, सोई उत्तरि है पार ।।

इसमें परमेश्वर कबीर साहेब जी अपने परम शिष्य धर्मदास जी को कह रहे हैं कि ध्यान पूर्वक सुन वह पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) परमात्मा मैंने (कबीर साहेब ने) पाया(अपनी महिमा आप ही कहनी पड़ी क्योंकि सतपुरुष को कोई साधक नहीं जानता था । स्वयं कबीर साहेब ही भक्त तथा संत व परमात्मा की भूमिका निभा रहे हैं) उस परमात्मा (पूर्णब्रह्म) का सर्व ब्रह्मण्डों से पार

स्थान है वहां पर वह आदि परमात्मा (सतपुरुष) रहता है। वही सर्व जीवों का दाता है (इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 17 में दिया है) जो उसी सतधाम में सबसे न्यारा रहता है (इसी का प्रमाण यजुर्वेद के अध्याय 5 के श्लोक 32 में भी है) उस परमात्मा (इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 18 के श्लोक 46 व 61, 62, 66 में, अध्याय 8 के श्लोक 1, 3, 8, 9, 10 तथा 17 से 22 व अध्याय 2 के श्लोक 17 में पूर्ण प्रमाण है) को कोई नहीं जानता तथा उसकी प्राप्ति की विधि भी किसी शास्त्र में वर्णित नहीं है। इसलिए सतनाम व सारनाम के स्मरण के बिना काल साधना (केवल ऊँ मन्त्र जाप) करके काल का ही आहार बन जाते हैं।

सच्चा साहेब (अविनाशी परमात्मा) भजो। उसकी साधना सतनाम व सारनाम से होती है। इसका ज्ञान न होने से ऋषि व संतजन लगन भी खूब लगाते हैं। हजारों वर्ष वेदों में वर्णित साधना भी करते हैं परंतु व्यर्थ रहती है। पूर्ण मुक्त नहीं हो पाते। धर्मदास जी को साहेब कबीर कह रहे हैं कि जो सज्जन व्यक्ति आत्म कल्याण चाहने वाले अपनी गलत साधना त्याग कर तत्त्वदृष्टा सन्त के पास नाम लेने आएंगे। उनको सतनाम व सारनाम मन्त्र दिया जाता है। जिससे वे काल जाल से निकल कर सतलोक में चले जाएंगे। फिर जन्म-मरण रहित हो कर पूर्ण परमात्मा का आनन्द प्राप्त करेंगे। सही रास्ता (पूजा विधि) न मिलने के कारण नादान आत्मा पत्थर पूजने लग गई, व्रत, तीर्थ, मन्दिर, मस्जिद आदि में ईश्वर को तलाश रही हैं जो व्यर्थ है यह सब स्वार्थी अज्ञानियों व नकली गुरुओं द्वारा चलाई गई है। जो गुरु सतनाम व सारनाम नहीं देता वह सतपुरुष (कबीर साहेब) का दुश्मन है जो गलत साधना कर व करवा के स्वयं को भी तथा अनुयायियों को भी नरक में ले जा रहा है। जो आप ही भूला है तथा नादान भोली-भाली आत्माओं को भी भुला रहा है।

वेदों व गीता जी में ऊँ नाम की महिमा बताई है कि यह भी मूल नाम नहीं है। सारनाम के बिना अधूरे नाम को अंश नाम कहा है जो पूर्ण मुक्ति का नहीं है। इसी के बारे में कहा है कि शाखा (ब्रह्मा-विष्णु-शिव व ब्रह्म-काल तथा माता की साधना को शाखा कहा है) व पत्र (देवी-देवताओं की पूजा का ईशारा किया है) में जगत उलझा हुआ है। जो इनकी साधना करता है वह नरक में जाता है। इसी का प्रमाण गीता जी के अध्याय 14 के श्लोक 5 में तथा अध्याय 9 के श्लोक 25 में है तथा पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तथा 20 से 23 तक है।

फिर पूर्ण परमात्मा को मूल कहा है कि उस परमात्मा तथा उसकी उपासना को कोई नहीं जानता। अज्ञानता व श ब्रह्मा-विष्णु-शिव और श्री राम व श्री कृष्ण जी को ही अविनाशी परमात्मा मानते हैं। “जीव अभागे मूल नहीं जाने, डार-शाखा को पुरुष बखाने” संसार के साधक वेद शास्त्रों को पढ़ते भी हैं परंतु समझ नहीं पाते। व्यर्थ में झगड़ा करते हैं। जबकि पवित्र वेद व गीता व पुराण भी यही कहते हैं कि अविनाशी परमात्मा कोई और ही है। प्रमाण के लिए गीता जी के अध्याय 15 के श्लोक 16-17 में पूर्ण वर्णन किया गया है। जो इन तीन देवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की भक्ति करते हैं उनकी मुक्ति कभी नहीं हो सकती। हे नादान प्राणियों! इनकी उपासना में मत भटको। पूर्ण परमात्मा की साधना करो। धर्मदास से साहेब कबीर कह रहे हैं कि यह सब जीवों को बताओ, उनका भ्रम मिटाओ तथा सतपुरुष की पूजा व महिमा का ज्ञान कराओ।

सतमार्ग दर्शन

चौपाई :

जो जो वस्तु दृष्टि में आई, सोई सबहि काल धर खाई ॥
मूरति पूजै मुक्त न होई, नाहक जन्म अकारथ खोई ॥

कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 541 से 544) से सहाभार

॥ रमैनी ॥

रमैनी 21 - मैं तोहि पूंछो पडित ज्ञानी । पृथ्वी आकाश रहे नहिं पानी ॥
सूक्ष्म स्थूल रहे नहिं कोई । बिराट सहित परले सब होई ॥
तबहिं बिराट काहि अधारा । तब वेद जाप जर होवे छारा ॥
होय अलोप जब रवि औ चन्दा । तब कापर रहे बाल मुकुन्दा ॥
यह अचरज मोहिं निसि दिन भाई । दुरमत मेट मोहिं देहु बताई ॥
समै- अमित वस्तु सब मेटे, जो मेटे सो प्रमान ।

मिततन कीन्ह सनेहरा, आपइ मिते निदान ।
पैंडा सब जग भूलिया, कहँ लग कहौं समुझाय ।
कहँ कवीर अब क्या कीजे, जगते कहा बसाय ॥

इस रमैणी नं. 21 में साहेब कबीर कह रहे हैं कि हे वेदों व शास्त्रों के ज्ञाता (पंडित) मुझे बताओ

कि जब महाप्रलय परब्रह्म द्वारा की जाएगी उसमें सूक्ष्म-स्थूल आदि शरीर समाप्त हो जाएंगे तथा यह काल (विराट रूप) भी नहीं रहेगा। इसलिए आप पूर्ण परमात्मा का मार्ग प्राप्त करो। यह सही मार्ग सब भूल गए हैं जिसके कारण पूर्ण शांति नहीं। इसी का प्रमाण गीता जी में है।

॥ रमैनी ॥

रमैनी 23 — वेद कतेब झूठे ना भाई । झूठे हैं जो समझे नहीं ॥
नरकी नारी जो मर जाई । के जन्मे के स्वर्ग—नरक समाई ॥
पिंडा तरपन जब तुम कीन्हा । कहो पंडित उन कैसे लीना ॥
कुंभक भरभर जल ढरकावे । जिवत न मिले मरे का पावे ॥
जलसे जल ले जलमें दीन्हा । पित्रन जल पिंडा कब लीन्हा ॥
वनखंड मांझ परा सब कोई । मनकी भटक तजे न सोई ॥
आपनके छुंवन करे बिचारा । करता न लखा परा भर्म जारा ॥
परमपरा जैसी चलि आई । तामें सभन रहा बिलमाई ॥

इस रमैणी नं. 23 में साहेब कबीर कह रहे हैं कि वेद (चारों वेद व गीता आदि) तथा कतेब (चार धार्मिक पुस्तक मुसलमान धर्म की तथा बाईबल आदि) झूठे नहीं है। जिन्होंने पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ। वे झूठे है सर्व समाज को अधूरा मार्ग दे दिया। मानो किसी की पत्नी मर जाती है। वह मरने के बाद या तो दूसरा जन्म ले लेती है या नरक या स्वर्ग चली जाती है या प्रेत बन जाती है। फिर तुमने जो पिण्ड अर्पण किया उस बेचारी ने कैसे आ कर लिया? अब लोटा भर-भर कर डाल रहे हो। यदि कोई व्यक्ति अपने घर पर है उसके निमित्त जल डालो फिर देखो उसे मिला या नहीं। जब जीवित को नहीं मिला तो मरे हुए को कैसे प्राप्त हो सकता है? अपने हाथों शरीर जलाकर बनखण्ड में समशान में डाल आए। फिर उसे पिण्ड दान करते हो। जीवित की सेवा करनी चाहिए मरने के बाद क्या लाभ?



कबीर साहेब द्वारा अंध विश्वास का निवारण करना

॥ पितरों को जल देना व्यर्थ ॥

एक समय साहेब कबीर जी काशी में गंगा दरिया के किनारे पर गए तो देखा बहुत से नादान व्यक्ति गंगा जल का लोटा भर कर सूर्य की तरफ मुख करके वापिस ही जल में डाल रहे हैं, कुछ बाहर पटरी पर डाल रहे हैं। इस अज्ञानता को हटाने के लिए कबीर साहेब दोनों हाथों से गंगा जल बाहर फेंकने लगे। यह देखकर उन शास्त्रविरुद्ध साधकों ने साहेब कबीर से पूछा यह क्या कर रहे हो? कबीर साहेब जी ने पूछा आप क्या कह रहे हो? उन नादानों ने उत्तर दिया कि हम अपने पितरों को स्वर्ग में जल भेज रहे हैं। कबीर साहेब जी ने कहा कि मैंने अपनी झाँपड़ी के पास बगीचा लगाया है। उसकी सिंचाई कर रहा हूँ। यह सुन कर वे भोले व्यक्ति हँसते हुए बोले रे मूर्ख कबीर! यह जल आधा कोस (1.5 कि.मी.) कैसे जाएगा? यह तो यहीं पर जमीन सोख रही है। साहेब कबीर जी ने उत्तर दिया कि यदि आपका जल करोड़ों-अरबों कोस दूर पितर लोक में आपके पितरों को प्राप्त हो सकता है तो मेरा बगीचा तो अवश्य पानी से भरा मिलेगा तथा कहा कि हे नादानों! आप कह रहे हो कि स्वर्ग में पानी भेज रहे हैं। क्या स्वर्ग में जल नहीं है? फिर स्वर्ग कहाँ वह तो नरक कहो। इस सारी लीला का तात्पर्य समझ कर उन मार्ग से विचलित साधकों ने साहेब कबीर जी का उपदेश लिया तथा अपना कल्याण करवाया।

विशेष :- अध्याय 3 का श्लोक 36 में अर्जुन पूछता है कि न चाहते हुए भी मनुष्य पाप कर्म कर देता है। जैसे कोई बलपूर्वक (जबरदस्ती) करवा रहा हो, कृप्या इसका कारण बताईए?

विशेष विवरण :- अध्याय 3 का श्लोक 37 से 43 तक का उत्तर है कि काम (सैक्स) जीव की बुद्धि पर छा जाता है, जिस कारण से ज्ञान समाप्त हो जाता है। इसलिए बुद्धि द्वारा मन को वश कर काम (सैक्स) को मार। विचार करें :- मन व काम (सैक्स) तो -

॥ भगवान शंकर के भी मन व काम (सैक्स) वश नहीं हुआ ॥

एक समय भगवान रामचन्द्र पुत्र श्री दशरथ अयोध्या वासी को उनकी मौसी केकई से वचनबद्ध होकर राजा दशरथ ने बनवास देना पड़ा। रामचन्द्र के वियोग में अपने प्राण भी त्याग दिए। भगवान रामचन्द्र जी सीता जी व छोटे भाई (मौसी के पुत्र) लक्ष्मण जी के साथ वन में पंचवटी नामक स्थान पर एक कुटिया बना कर रह रहे थे।

एक दिन लंका के राजा रावण ने साधु के भेष में आकर सीता जी का हरण कर लिया। सीता की तलाश में श्री रामचन्द्र जी बावलों की तरह कभी रो रहे थे, कभी जंगली पेड़-पौधों व पशु-पक्षियों से पूछ रहे थे कि तुमने मेरी सीता देखी! विलाप कर रहे थे। आकाश से भगवान शिव व महादेवी जी यह सब देख रहे थे। देखते-देखते भगवान शिवजी ने प्रणाम किया तथा देवी के पूछने पर कि आप किसे प्रणाम कर रहे हैं भगवान शिव ने कहा यह परब्रह्म प्रभु है। (तीन लोक के उपासक तो ज्योति निरंजन को ही परब्रह्म मानते हैं क्योंकि उस समय वह काल भगवान ही श्री रामचन्द्र में प्रवेश करके तड़फा रहा था। यही मन है जो मोह को पैदा करके श्री रामचन्द्र भगवान की बुद्धि को खो कर आम जीव की तरह रूला रहा था) प्रभु शिव जी ने कहा आपकी महिमा कोई नहीं जान सका। चूंकि भगवान शिव को श्री रामचन्द्र जी के शरीर में प्रवेश ज्योति निरंजन की परम तेजोमय शक्ति का आभास हो रहा था, उमा को नहीं। उसे केवल रामचन्द्र पुत्र राजा दशरथ ही नजर आ रहा था।

क्योंकि यह सर्व काल (ज्योति निरंजन) के वश है। वह जिसकी बुद्धि जब चाहे कम कर देता

है और जिसकी चाहे विकसित कर देता है। उस समय उमा की बुद्धि तो क्षीण कर दी और श्री शिव जी की बुद्धि विकसित कर दी। जिसके परिणामस्वरूप गौरी ने प्रणाम नहीं किया। फिर भगवान शिव से कहने लगी कि यह तो राजा दशरथ का पुत्र श्री रामचन्द्र है। इसको आप भगवान कह रहे हो। भगवान शिव बोले उमा (पार्वती) आप नहीं जानती। यह विष्णु भगवान के अवतार ही रामचन्द्र जी हैं। इनकी पत्नी को कोई उठा ले गया है। इसलिए ये विलाप व तलाश कर रहे हैं।

उमा (गौरी) बोली भगवान कभी रोते हैं क्या? मैं तो इनकी परीक्षा लूंगी। तब इसको प्रणाम करूँ। भगवान शिव बोले कि परीक्षा मत लेना। उमा ने उपरले मन से कहा कि अच्छा परीक्षा नहीं लूंगी। परंतु भगवान शिव के दूर जाते ही पीछे से छुपकर सीता जी का रूप बना कर यह सोच कर कि मुझे सीता जानकर प्यार व संतोष करेगा, श्री रामचन्द्र जी के सामने आई। बात इसके विपरीत हुई। श्री रामचन्द्र जी बोले - हे दक्ष की पुत्री! आप भगवान शिव को कहाँ छोड़ आईं? [क्योंकि यहां काल (महाविष्णु) ने श्री राम (विष्णु) की बुद्धि को खोल दिया तथा उसे देवी का असली रूप दर्शा दिया]

यह जानकर देवी बहुत शर्मिन्दा हुई तथा कहा कि भगवान शिव तो ठीक ही प्रणाम कर रहे थे। आप तो सचमुच भगवान हो। फिर अपने घर कैलाश पर्वत पर आ गईं। उधर से काल (मन) ने शिवजी को उकसाया तथा पूछ बैठा कि ले आई परीक्षा। सती जी ने झूठ बोलते हुए कहा कि नहीं, मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। परंतु शिव अन्दर ही अन्दर दक्ष पुत्री देवी से नाराज हो जाते हैं तथा कहते हैं कि आपने सीता माता {क्योंकि बड़ी भाभी (बड़े भाई की पत्नी) माँ समान आदरणीय होती है तथा छोटे भाई की पत्नी बहन समान या बेटी समान होती है। ये तीन भाई हैं। बड़ा ब्रह्मा, मंजला विष्णु और सबसे छोटा शिव (शंकर) हैं} का रूप बनाया है। इसलिए मैं आपको पत्नी रूप में स्वीकार नहीं कर सकता तथा पति-पत्नी का व्यवहार बन्द कर दिया। उमा को मालूम था कि भोले नाथ अपनी बात के पक्के हैं। पृथ्वी दिशा बदल सकती है परंतु शिव अपनी जिद्द को नहीं छोड़ सकते। अकेलापन तथा हर समय अपनी भूल के पश्चाताप से तंग आकर उमा ने सोचा कि क्यों न अपने पिता के पास चलें। बच्चा कितनी ही गलती क्यों न कर दे आखिरकार माता-पिता क्षमा कर ही देते हैं। [क्योंकि राजा दक्ष के मना करने पर भी उमा ने शिव से शादी की थी। जिससे राजा दक्ष ने कहा था कि आज के बाद मेरे घर नहीं आएगी और न ही इस शिव जी को लाएगी। इसलिए उमा पहले कभी अपने पिता के घर नहीं गई थी।]

यह सोच कर उमा अपने पिता राजा दक्ष के घर पर चली गईं। वहां देखा कि यज्ञ का अनुष्ठान राजा दक्ष के द्वारा किया जा रहा है। सारे यज्ञ मण्डप में घूम कर देखा तो पाया कि जो मेहमान आए हैं उनको उचित आदर से आसन दे रखा है, जो नहीं आए हैं उनका आसन लगा है तथा उनका हिस्सा भी निकाल कर आसन के पास रखा है। परंतु भगवान शिव (जो राजा दक्ष के दामाद थे) का न तो कहीं आसन है और न ही हिस्सा। यह सब देखकर अपनी माता के पास जा कर नाराजगी व्यक्त करती हुई बोली - आपने अपने दामाद शिव का न तो हिस्सा रखा है और न ही आदर से आसन दे रखा है। (लड़की की पार माता पर ही बसाती है। क्योंकि माँ बेटी से विशेष प्यार करती है)। यह सुनकर माता ने कहा कि मेरी बात न तो तू मानती है। मैंने तेरे से कहा था कि बेटी मात-पिता का वचन मानने में ही भलाई है। आपने अपनी इच्छा से शादी करवाई। अब न तेरे पिता जी मेरी बात मानते हैं। सौ बार कहा है कि बेटी को बुलालो लेकिन नहीं मानें। अब तू जाने तथा तेरे पिता जी जाने।

माता के मुख से यह वचन सुन कर उमा अपने पिता राजा दक्ष के पास गई और कहा कि आपने न तो अपने दामाद शिव को बुलाया और न ही हिस्सा (भाग) निकाला। यह सुनकर राजा दक्ष नाराजगी व्यक्त करते हुए बोला कि तेरे को यहां किसने बुलाया है? किस लिए आई हो?

इस बात का दुःख मानकर देवी उमा ने यज्ञ के हवन कुण्ड में छलांग लगा कर आत्महत्या कर ली। इस बात का पता शिव को लगा तो शिवजी ने अपनी जटा से एक बाल उखाड़ कर जर्मी पर दे मारा। उससे एक लम्बे चौड़े विकराल रूप का व्यक्ति सामने खड़ा हो गया। उसका नाम वीरभद्र (कालभद्र) कहा तथा शिव ने आदेश दिया कि सर्व भूत व गण सेना ले जा कर राजा दक्ष का सिर काट दो। उस समय राजा दक्ष की यज्ञ में ब्रह्मा-विष्णु भी राजा की विशेष प्रार्थना पर आए हुए थे। क्योंकि राजा दक्ष को भय था कि कहीं शिव को यज्ञ में आमन्त्रित न करने के कारण नाराज होकर यज्ञ को भंग न कर दे। शिव से अपनी व यज्ञ की रक्षा के लिए ब्रह्माजी व विष्णु जी बुला रखे थे।

जब उन दोनों (ब्रह्मा-विष्णु) को यह मालूम हुआ कि वीरभद्र पूरी सेना लेकर आ रहा है, जिसकी शक्ति हमसे ज्यादा है, जान का खतरा है। दोनों खिसकने की तैयारी करने लगे। इससे पहले ही अन्य राजा लोग वीरभद्र के भय से खिसक चुके थे। तब राजा दक्ष ने अपनी रक्षा की भीख मांगते हुए ब्रह्मा जी व विष्णु जी को याद दिलाया कि आप कह रहे थे कि हमारे रहते आपको कोई भय नहीं है। अब आप भी जा रहे हो। मेरी सुरक्षा आपके अतिरिक्त कौन कर सकता है? ब्रह्मा तो राजा दक्ष की बात को अनसुना करके चला गया परंतु भगवान विष्णु रूक गया। वीरभद्र आया, विष्णु से युद्ध हुआ। विष्णु को वीरभद्र ने ऐसा तीर मारा कि विष्णु स्तब्ध रह गया अर्थात् खम्भे की भांति खड़ा रहा। हिलना-डुलना भी बंद हो गया। उस समय उपस्थित वेद मन्त्र पढ़ रहे ब्राह्मणों ने वेद मन्त्र बोल कर विष्णु जी की स्तब्धता समाप्त की तथा विष्णु जी युद्ध छोड़ कर भाग गया।

फिर वीरभद्र ने शिव की आज्ञानुसार राजा दक्ष का सिर काट डाला। तत्पश्चात् शिवजी उमा के शव को लेने के लिए राजा दक्ष के यहाँ पहुँचे तो सर्व उपस्थित महर्षियों की प्रार्थना पर राजा दक्ष को बकरे का शीश लगा कर जीवित किया। फिर उमा के शव को देखा जो केवल अस्थि-पिंजर रूप में बकाया पड़ा था। उस अस्थि-पिंजर को कंधे पर रख कर मोहवश अंधा होकर उसे उमा जानकर दस हजार वर्षों तक पागलों की तरह लिए घूमता रहा व उमा समझकर उन्हीं हड्डियों को प्यार करता रहा। मुख को चूमता रहा। एक दिन नारद जी के कहने पर भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र से देवी के कंकाल (हड्डियों) के टुकड़े-2 कर डाले। (जहां आँखें गिरी वहां नैना देवी के नाम से मन्दिर बनाया है, जहाँ धड़ गिरा वहाँ वैष्णों देवी मन्दिर की स्थापना बाद में की जा चुकी है तथा जहाँ जिह्वा गिरी वहाँ ज्वाला देवी मन्दिर बाद में बनाया गया।) ये मन्दिर एक यादगार बनाई थी कि घटना का प्रमाण बना रहे। बाद में पूजाएँ शुरु हो गईं। तब कुछ समय रो कर शिव के मोह का नशा उतरा। तब सर्व हालातों को जानकर भगवान शंकर जी ने यह निर्णय लिया कि मुझे कामदेव (सैक्स) ने सताया तो शादी की इच्छा हुई। दक्ष पुत्री से विवाह हुआ। फिर उमा पर पूरा विश्वास किया कि यह मेरी प्राण प्यारी है, मुझे स्वप्न में भी धोखा नहीं दे सकती। इसने भी मुझे धोखा दिया, झूठ बोला कि मैंने श्री राम की परीक्षा नहीं ली। अब संसार में ऐसा कौन है जिस पर विश्वास किया जाए? यह विचार कर शिव ने फैसला किया कि "न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी"। मैं अपने कामदेव (सैक्स) को ही समाप्त कर देता हूँ जो मेरा सबसे बड़ा दुश्मन बना है। लोक वेद के आधार पर शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् हट करके इन्द्रियों व मन को वश करने के लिए शिवजी ने अठासी हजार वर्ष तक घोर तप व ऊँ मन्त्र का जाप करके

यह मान लिया कि अब मन मार लिया है तथा काम (सैक्स) व इन्द्रियों को काबू कर लिया है।

काल भगवान (महाविष्णु-ज्योति निरंजन) ने सोचा यदि संसार के प्राणी ऐसी साधना करने लग गए तो मेरी क्षुधा कैसे मिटेगी? यह तो काल को मालूम है कि ये साधनाएँ जो वेदों में, गीता जी आदि शास्त्रों में मन मारने की वर्णित हैं। इनसे मन काबू नहीं आ सकता। फिर भी यदि शिव की देखा-देखी सब साधना करने लग जाएंगे व हजारों वर्ष समाधी में बैठे रहेंगे। मेरे खाने के लिए संतान उत्पत्ति नहीं कर पाएंगे। यह सोच कर क्यों न बुराई को आरम्भ में काट डालूँ। (Nip the evil in the bud)

फिर कोई मन व कामदेव (सैक्स) को मारने की कोशिश ही नहीं करेगा। सोचेगा कि जब शिव जैसे साधक ही असफल हैं तो मेरे जैसा साधारण व्यक्ति कैसे सफल हो सकता है? भगवान शिव के मन में काल (ज्योति निरंजन) ने प्रेरणा दी कि आज भगवान विष्णु से यह जानना चाहिए कि आपने 'समुद्र मन्थन' के समय राक्षसों से अमृत का कलश लेने के लिए स्त्री का रूप बनाया था। वह मुझे दिखाओ। क्योंकि मैं विष (जो समुन्द्र मन्थन में निकला था जिससे शिव ने अपने कण्ठ में ठहराया था। जिससे उन्हें नीलकण्ठ के नाम से भी जाना जाने लगा) के प्रभाव के कारण नहीं देख पाया था। यह विचार करके भगवान विष्णु के पास जा कर कहा कि कृप्या वही मोहिनी रूप मुझे फिर से दिखाईए। मेरी प्रबल इच्छा है। भगवान विष्णु ने कहा कि छोड़ो भोले नाथ जी, गड़े मूर्दे नहीं उखाड़ा करते अर्थात् बीती बातों को नहीं दोहराया करते। समय न जाने क्या करवा देता है। उस समय मजबूरी थी। यदि मैं मोहिनी (स्त्री जिसका रूप मन को मोह ले) रूप बना कर राक्षसों में नहीं जाता तो वे अमृत पी कर लम्बी आयु वाले हो जाते तथा भक्तों व ऋषियों को दुःखी करते रहते। मैंने उन्हें शराब का कलश दे दिया जिसे पी कर मद्यहोश हो गए तथा अमृत का घड़ा छीन कर देवताओं को दे दिया। वे सब राक्षस मुझे स्त्री रूप में देखकर मोहित हो गए तभी मैंने अवसर पा कर कलश बदल दिए थे। भगवान शिव ने कहा कि मैं आपका वही स्त्री रूप देखना चाहता हूँ। आप बहुत ही अच्छे लग रहे होंगे। जब तक आप मेरी इच्छा पूर्ण नहीं करोगे मैं आपके द्वार पर ही बैठ कर प्रार्थना करता रहूँगा। विष्णु जी ने सोचा यह तो 88 हजार वर्ष तक बैठने वाला साधक यदि यहां पर बैठ गया तो उठने का नाम नहीं लेगा। यह विचार कर भगवान विष्णु अन्तर्धान हो गए। कुछ दूरी पर एक सुन्दर युवा स्त्री के रूप में अर्ध नग्न शरीर युक्त पोशाक पहने हुए दिखाई दिए। शिवजी इतने काम प्रेरित हो गए कि उस लड़की के पीछे-2 भाग लिए। जब लड़की का हाथ पकड़ा उस समय तक शिवजी का वीर्य पात हो चुका था। भगवान विष्णु अपने रूप में प्रकट हो गए। उस समय शिव के हाथ में भगवान विष्णु का हाथ था तथा विष्णु जी कह रहे थे कि मैंने राक्षसों को ऐसे मूर्ख बनाया जिससे आप जैसे त्रिकाल दर्शी योगी भी चक्र में पड़ गए। मन व काम (सैक्स) को शिव जैसे भगवान व साधक भी नहीं वश कर पाए तो साधारण जीव व साधक कैसे सफल हो सकता है। इस महान शत्रु को तो केवल शास्त्र विधि अनुसार भक्ति साधना तत्त्वदर्शी संत से प्राप्त करके ही पराजित किया जा सकता है। गरीबदास जी महाराज जो कबीर साहिब जी के शिष्य थे अपनी वाणी में कह रहे हैं :-

गरीब, जैसे अग्नि काष्ठ के मांही, है व्यापक पर दिखे नाहीं।

ऐसे काम देव प्रचण्डा, व्यापक सकल द्वीप नौ खण्डा ॥

जैसे लकड़ी में अग्नि होती है परंतु वह दिखाई नहीं देती। ऐसे ही काम (सैक्स) हर प्राणी में विद्यमान रहता है। जब भी कोई स्त्री-पुरुष का सानिध्य होता है तो काम (सैक्स) रूपी अग्नि

प्रज्वलित हो जाती है। जैसे काष्ठ को आग लगा दी जाए तो न दिखाई देने वाली अग्नि दिखाई देने लगती है। कबीर साहेब कहते हैं :-

कबीर सत्यनाम सुमरण बिन, मिटे न मन का दाग। विकार मरे मत जानियो, ज्यों भूभल में आग।।

जो भी साधक जैसी साधना कर रहा है वही उसके पूरी होने पर समझ बैठता है कि मैंने मन-इन्द्रियाँ जीत ली हैं। यही भ्रम एक बार परम ऋषि नारद जी को भी हुआ था। आदरणीय गरीबदास जी कबीर पंथी संत, छुड़ानी (हरियाणा) वाले की अमृतवाणी -

गरीब, कुरंग, मतंग, पतंग, श्रंग और भ्रंग। इन्द्री एक टग्यो तिस अंगा।।

गरीब, तुम्हरे संग पाँचों प्रकासा। योग युक्त की झूठी आशा।।

कुरंग कहते हैं हिरण को। हिरण में शब्द का रस लेने वाली श्रवण इन्द्री प्रबल होती है जिसके वश होकर शिकारी (जो एक विशेष धुन बनाकर शारंगी से शब्द गुंजार करता है)के पास अपने आप शब्द के आनन्द वश होकर अपने प्राणोंकी परवाह न करके चला जाता है जिस कारण मारा जाता है।

मतंग कहते हैं हाथी को। इसमें काम वासना की अधिकता होती है जो उपस्थ इन्द्री के वश होकर अपनी जान शिकारी के हाथों सौंप देता है।

हाथी पकड़ने वाले शिकारी एक हथिनी को विशेष शिक्षा देकर रखते हैं। जंगल में जाकर एक गहरा गड्ढा खोद कर उस पर लम्बे बांसों से छत दे देते हैं। उसके ऊपर मिट्टी डाल कर घास जमा देते हैं जिससे देखने में जमीन प्रतीत होती है। फिर उस शिक्षित हथिनी को हाथियों के झुण्ड की ओर भेज देते हैं। हथिनी किसी एक हाथी से अपना शरीर स्पर्श करके उसे काम (सैक्स) प्रेरित करती है। जब वह कामुक हाथी कोशिश करता है तब वह हथिनी भाग लेती है। पीछे-2 हाथी भागता है। वह हथिनी वहीं पर जहां गड्ढा खोदा हुआ होता है के समीप आकर स्वयं बराबर से निकल कर फिर सीधा भाग लेती है। हाथी कामवस अंधा होकर सीधा ही भागता रहता है तथा उस सुनियोजित विधि से बनाए गड्ढे में गिर कर कहीं निकलने का रास्ता न पा कर विंचाई मार-2 कर निर्बल हो जाता है तथा शिकारी पकड़ लेता है। फिर सारी उम्र परवश होकर भूखा प्यासा गौं-2 में मांगने वाले के साथ भ्रमता रहता है।

रूप (नेत्र इन्द्री) के वश होकर एक पतंगा दीपक के रूप (रोशनी) पर आसक्त होकर जल मरता है। रस (जिह्वा इन्द्री) के वश होकर मच्छली एक छोटे से मांस के टुकड़े को खाने की कोशिश करती है जो शिकारी ने एक लोहे की तीखी नोक वाले आगे से मुड़े हुए तार (कांटे) में उलझा रखा होता है। वह कांटा उसके मुख में फंस जाता है। फिर मच्छिहारा झटका मार कर उसे पानी से बाहर पटक देता है। वह मच्छली तड़फ-2 कर मर जाती है। गंध (नाक इन्द्री) के वश होकर भंवरा किसी फूल पर बैठ जाता है तथा इतना विवश हो जाता है कि वह फूल शाम को बन्द हो जाता है भंवरा अपने प्राण त्याग देता है। तुम्हारे संग पाँचों प्रकासा। योग युक्त की झूठी आशा।।”

संत गरीबदास जी ने कहा है कि मनुष्य के साथ उपरोक्त पाँचों ज्ञान इन्द्रीयाँ अपना प्रभाव जमाए हैं तो योग युक्त अर्थात् साधना में लीन होने की व्यर्थ आशा है। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 4 से 6 में कहा है कि जो पाखण्डी साधक एक स्थान पर बैठ कर हठपूर्वक कर्म इन्द्रीयाँ को रोककर साधनारत दिखाई देता है वह दम्भ (पाखण्ड) कर रहा होता है क्योंकि उस की ज्ञान इन्द्रियाँ निश्चल नहीं रहती। इसलिए वह योग युक्त नहीं हो सकता।

2 नारद जी से मन वश नहीं हुआ

3 स्वयं कृष्ण (विष्णु) जी के मन व काम (सैक्स) वश नहीं हुआ

सर्व विदित है कि भगवान कृष्ण जी ने मन व काम (सैक्स) के वश होकर हजारों गोपियों व राधा जी, कुब्जा से तथा आठ विवाहित पत्नियों से काम (सैक्स) क्रीड़ा की। एक बार एक राक्षस देवताओं से मारा नहीं जा रहा था। एक ऋषि ने बताया कि इसकी पत्नी पतिव्रता है। इसलिए यह नहीं मर रहा है। उसका पतिव्रत धर्म भंग किया जाए तब यह मरे। इसके लिए सर्व देवताओं ने भगवान विष्णु के पास जा कर प्रार्थना की तब विष्णु जी बोले- आपकी प्रार्थना स्वीकार हुई। भगवान विष्णु ने उस राक्षस का रूप बनाया तथा धोखा करके राक्षस की पत्नी के साथ काम (सैक्स) क्रीड़ा की। तब वह राक्षस मारा गया।

तो क्या अर्जुन मन को वश कर सकता है या आम जीव कर सकता है? यह सर्व काल जाल है। जो जीव से न चाहते हुए भी पाप करवा देता है।

इसलिए परम पूज्य परमेश्वर कबीर (कविदेव) जी यह कहना चाहते हैं कि नादानों आप (मनुष्यों) को काल ने इन पाँचों विकारों से प्रभावी कर रखा है। फिर आप योग युक्त अर्थात् एक स्थान पर बैठकर हठ योग करके साधना की निष्फल कोशिश भला क्यों करते हो? कर्म करते-करते साधना करो जैसे गीता अध्याय 8 श्लोक 7 में कहा है कि अर्जुन तू मेरा भजन भी कर तथा युद्ध भी कर। युद्ध से अधिक किसी भी कार्य में जीव व्यस्त नहीं होता। इसलिए गीता ज्ञान से सिद्ध है कि हठ योग करना व्यर्थ है। संसारिक कर्तव्य कर्म करते हुए। पूर्ण सतगुरु से सत्यनाम ले कर भजन करो तथा काल-जाल से मुक्त हो जाओ। इसी सत्यनाम से विकार समाप्त हो जाते हैं तथा सार शब्द से पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। जन्म-मरण से पूर्ण छुटकारा मिल जाता है।



॥तीसरे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक॥

परमात्मने नमः

अथ तृतीयोऽध्यायः

अध्याय 3 का श्लोक 1 (अर्जुन उवाच)

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव । १ ।

ज्यायसी, चेत्, कर्मणः, ते, मता, बुद्धिः, जनार्दन,

तत्, किम्, कर्मणि, घोरे, माम्, नियोजयसि, केशव ॥1॥

अनुवाद : (जनार्दन) हे जनार्दन! (चेत्) यदि (ते) आपको (कर्मणः) कर्मकी अपेक्षा (बुद्धिः) तत्वदर्शी द्वारा दिया ज्ञान (ज्यायसी) श्रेष्ठ (मता) मान्य है (तत्) तो फिर (केशव) हे केशव! (माम्) मुझे एक स्थान पर बैठ कर इन्द्रियों को रोक कर, गर्दन व सिर को सीधा रख कर गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 तक वर्णित (घोरे) तथा युद्ध करने जैसे भयंकर (कर्मणि) तुच्छ कर्ममें (किम्) क्यों (नियोजयसि) लगाते हैं। (1)

अध्याय 3 का श्लोक 2

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् । २ ।

व्यामिश्रेण, इव, वाक्येन, बुद्धिम्, मोहयसि, इव, मे,

तत्, एकम्, वद, निश्चित्य, येन, श्रेयः, अहम्, आप्नुयाम् ॥2॥

अनुवाद : (व्यामिश्रेण, इव) इस प्रकार आप मिले हुए से अर्थात् दो तरफा (वाक्येन) वचनोंसे (मे) मेरी (बुद्धिम्) बुद्धि (मोहयसि, इव) भ्रमित हो रही है इसलिए (तत्) उस (एकम्) एक बातको (निश्चित्य) निश्चित करके (वद) कहिये (येन) जिससे (अहम्) मैं (श्रेयः) कल्याणको (आप्नुयाम्) प्राप्त हो जाऊँ। (2)

अध्याय 3 का श्लोक 3 (श्री भगवान उवाच)

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।

ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् । ३ ।

लोके, अस्मिन्, द्विविधा, निष्ठा, पुरा, प्रोक्ता, मया, अनघ,

ज्ञानयोगेन, साङ्ख्यानाम्, कर्मयोगेन, योगिनाम् ॥3॥

अनुवाद : (अनघ) हे निष्ठाप! (अस्मिन्) इस (लोके) लोकमें (द्विविधा) दो प्रकारकी (निष्ठा) निष्ठा (मया) मेरे द्वारा (पुरा) पहले (प्रोक्ता) कही गयी है उनमेंसे (साङ्ख्यानाम्) ज्ञानियों की निष्ठा तो (ज्ञानयोगेन) ज्ञानयोग अर्थात् अपनी ही सूझ-बूझ से निकाले भक्ति विधि के निष्कर्ष में और (योगिनाम्) योगियोंकी निष्ठा (कर्मयोगेन) कर्मयोगसे अर्थात् सांसारिक कार्य करते हुए साधना करने में होती है। (3)

अध्याय 3 का श्लोक 4

न कर्मणामनारम्भान्नेष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।

न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति। ४।

न, कर्मणाम्, अनारम्भात्, नैष्कर्म्यम्, पुरुषः, अश्नुते,

न, च, सन्न्यसनात्, एव, सिद्धिम्, समधिगच्छति।।4।।

अनुवाद : (न) न तो (कर्मणाम्) कर्मोंका (अनारम्भात्) आरम्भ किये बिना (नैष्कर्म्यम्) शास्त्रों में वर्णित शास्त्र अनुकूल साधना जो संसारिक कर्म करते-करते करने से पूर्ण मुक्ति होती है वह गति अर्थात् (पुरुषः) परमात्मा (अश्नुते) प्राप्त होता है जैसे किसी ने एक एकड़ गेहूँ की फसल काटनी है तो वह काटना प्रारम्भ करने से ही कटेगी। फिर काटने वाला कर्म शेष नहीं रहेगा (च) और (एव) इसलिए (सन्न्यसनात्) कर्मोंके केवल त्यागमात्रसे एक स्थान पर बैठ कर विशेष आसन पर बैठ कर संसारिक कर्म त्यागकर हठ योग से (सिद्धिम्) सिद्धि (न समधिगच्छति) प्राप्त नहीं होती है। (4)

अध्याय 3 का श्लोक 5

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः। ५।

न, हि, कश्चित्, क्षणम्, अपि, जातु, तिष्ठति, अकर्मकृत्,

कार्यते, हि, अवशः, कर्म, सर्वः, प्रकृतिजैः, गुणैः।।5।।

अनुवाद : (हि) निःसन्देह (कश्चित्) कोई भी मनुष्य (जातु) किसी भी कालमें (क्षणम्) क्षणमात्र (अपि) भी (अकर्मकृत्) बिना कर्म किये (न) नहीं (तिष्ठति) रहता (हि) क्योंकि (सर्वः) सारा मनुष्य समुदाय (प्रकृतिजैः) प्रकृति अर्थात् दुर्गा जनित (गुणैः) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी गुणोंद्वारा (अवशः) परवश हुआ (कर्म) कर्म करनेके लिये (कार्यते) बाध्य किया जाता है। (5) (इसी का प्रमाण अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 में भी है।)

अध्याय 3 का श्लोक 6

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते। ६।

कर्मेन्द्रियाणि, संयम्य, यः, आस्ते, मनसा, स्मरन्,

इन्द्रियार्थान्, विमूढात्मा, मिथ्याचारः, सः, उच्यते।।6।।

अनुवाद : (यः) जो (विमूढात्मा) महामूर्ख मनुष्य (कर्मेन्द्रियाणि) समस्त कर्म इन्द्रियोंको हठपूर्वक ऊपरसे (संयम्य) रोककर (मनसा) मनसे उन (इन्द्रियार्थान्) ज्ञान इन्द्रियोंके विषयोंका (स्मरन्) चिन्तन करता (आस्ते) रहता है, (सः) वह (मिथ्याचारः) मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी (उच्यते) कहा जाता है (6) (इसी का विस्तृत वर्णन गीता अध्याय 17 श्लोक 19 में है।)

अध्याय 3 का श्लोक 7

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते। ७।

यः, तु, इन्द्रियाणि, मनसा, नियम्य, आरभते, अर्जुन,

कर्मेन्द्रियैः, कर्मयोगम्, असक्तः, सः, विशिष्यते।।7।।

अनुवाद : (तु) किंतु (अर्जुन) हे अर्जुन! (यः) जो पुरुष (मनसा) मनसे (इन्द्रियाणि)

इन्द्रियोंको (नियम्य) नियन्त्रित अर्थात् वशमें करके (असक्तः) अनासक्त हुआ (कर्मन्द्रियैः) समस्त कर्म इन्द्रियोंद्वारा (कर्मयोगम्) शास्त्र विधि अनुसार संसारी कार्य करते-करते भक्ति कर्म अर्थात् कर्मयोगका (आरभते) आचरण करता है (सः) वही (विशिष्यते) श्रेष्ठ है। (7)

विशेष :- उपरोक्त न करने वाले हठयोग को गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में करने को कहा है। इसलिए अर्जुन इसी अध्याय 3 के श्लोक 2 में कह रहा है कि आप की दोगली बातें मुझे भ्रम में डाल रही हैं।

अध्याय 3 का श्लोक 8

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः । ८ ।

नियतम्, कुरु, कर्म, त्वम्, कर्म, ज्यायः, हि, अकर्मणः,

शरीरयात्रा, अपि, च, ते, न, प्रसिद्ध्येत्, अकर्मणः ।। 8 ।।

अनुवाद : (त्वम्) तू (नियतम्) शास्त्रविहित (कर्म) कर्म (कुरु) कर (हि) क्योंकि (अकर्मणः) कर्म न करनेकी अपेक्षा अर्थात् एक स्थान पर एकान्त स्थान पर विशेष कुश के आसन पर बैठ कर भक्ति कर्म हठपूर्वक करने की अपेक्षा (कर्म) संसारिक कर्म करते-करते भक्ति कर्म करना (ज्यायः) श्रेष्ठ है (च) तथा (अकर्मणः) कर्म न करनेसे अर्थात् हठयोग करके एकान्त स्थान पर बैठा रहेगा तो (ते) तेरा (शरीरयात्रा) शरीर-निर्वाह अर्थात् तेरा परिवार पोषण (अपि) भी (न) नहीं (प्रसिद्ध्येत्) सिद्ध होगा। (8)

अध्याय 3 का श्लोक 9

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर । ९ ।

यज्ञार्थात्, कर्मणः, अन्यत्र, लोकः, अयम्, कर्मबन्धनः,

तदर्थम्, कर्म, कौन्तेय, मुक्तसंगः, समाचर ।। 9 ।।

अनुवाद : (यज्ञार्थात्) यज्ञ अर्थात् धार्मिक अनुष्ठान के निमित्त किये जानेवाले (कर्मणः) शास्त्र विधि अनुसार कर्मोंसे अतिरिक्त (अन्यत्र) शास्त्र विधि त्याग कर दूसरे कर्मोंमें लगा हुआ ही (अयम्) इस (लोकः) संसार में (कर्मबन्धनः) कर्मोंसे बँधता है अर्थात् चौरासी लाख योनियों में यातनाएँ सहन करता है।। इसलिए (कौन्तेय) हे अर्जुन! तू (मुक्तसंगः) आसक्तिसे रहित होकर (तदर्थम्) उस शास्त्रानुकूल यज्ञके निमित्त ही भलीभाँति (कर्म) भक्ति के शास्त्र विधि अनुसार करने योग्य कर्म अर्थात् कर्तव्यकर्म (समाचर) संसारिक कर्म करता हुआ शास्त्र अनुकूल अर्थात् विधिवत् साधना कर। (9)

विशेष :- उपरोक्त गीता अध्याय 3 श्लोक 6 से 9 तक एक स्थान पर एकान्त में विशेष आसन पर बैठ कर कान-आंखें आदि बन्द करके हठ करने की मनाही की है तथा शास्त्रों में वर्णित भक्ति विधि अनुसार साधना करना श्रेयकर बताया है।

प्रत्येक सद्ग्रन्थों में संसारिक कार्य करते-करते नाम जाप व यज्ञादि करने का भक्ति विद्यान बताया है।

प्रमाण :- पवित्र गीता अध्याय 8 श्लोक 13 में कहा है कि मुझ ब्रह्म का उच्चारण करके सुमरण करने का केवल एक मात्र ओ३म् अक्षर है जो इसका जाप अन्तिम स्वांस तक कर्म करते-करते भी करता है वह मेरे वाली परमगति को प्राप्त होता है।

फिर अध्याय 8 श्लोक 7 में कहा है कि हर समय मेरा सुमरण भी कर तथा युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे आदेश का पालन करते हुए अर्थात् संसारिक कर्म करते-करते साधना करता हुआ मुझे ही प्राप्त होगा। भले ही अपनी परमगति को गीता अध्याय 7 मंत्र 18 में अति अश्रेष्ठ अर्थात् अति व्यर्थ बताया है। फिर भी भक्ति विधि यही है।

फिर अध्याय 8 श्लोक 8 से 10 तक विवरण दिया है कि चाहे उस परमात्मा अर्थात् पूर्णब्रह्म की भक्ति करो, जिसका विवरण गीता अध्याय 17 श्लोक 23 तथा अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में दिया है। उसका भी यही विद्यान है कि जो साधक पूर्ण परमात्मा की साधना तत्त्वदर्शी संत से उपदेश प्राप्त करके नाम जाप करता हुआ तथा संसारिक कार्य करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है वह उस परम दिव्य पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा को ही प्राप्त होता है। तत्त्वदर्शी संत का संकेत गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में दिया है।

यही प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 तथा 15 में दिया है।

यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 का भावार्थ :- पवित्र वेदों को बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा के विषय में कोई तो कहता है कि वह अवतार रूप में उत्पन्न होता है अर्थात् आकार में कहा जाता है, कोई उसे कभी अवतार रूप में आकार में न आने वाला अर्थात् निराकार कहता है। उस पूर्ण परमात्मा का तत्त्वज्ञान तो कोई धीराणाम् अर्थात् तत्त्वदर्शी संत ही बताएँगे कि वास्तव में पूर्ण परमात्मा का शरीर कैसा है? वह कैसे प्रकट होता है? पूर्ण परमात्मा की पूरी जानकारी उसी धीराणाम् अर्थात् तत्त्वदर्शी संत से सुनों। मैं वेद ज्ञान देने वाला ब्रह्म भी नहीं जानता।

फिर भी अपनी भक्ति विधि को बताते हुए अध्याय 40 मंत्र 15 में कहा है कि मेरी साधना ओ३म् नाम का जाप कर्म करते-करते कर, विशेष आस्था के साथ सुमरण कर तथा मनुष्य जीवन का मुख्य कर्तव्य जान कर सुमरण कर इससे मृत्यु उपरान्त अर्थात् शरीर छूटने पर मेरे वाला अमरत्व अर्थात् मेरी परमगति को प्राप्त हो जाएगा। जैसे सूक्ष्म शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है कुछ समय तक अमर हो जाता है। जिस कारण स्वर्ग में चला जाता है। फिर जन्म-मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

अध्याय 3 का श्लोक 10

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् । १० ।

सहयज्ञाः, प्रजाः, सृष्ट्वा, पुरा, उवाच, प्रजापतिः,

अनेन, प्रसविष्यध्वम्, एषः, वः, अस्तु, इष्टकामधुक् ॥10॥

अनुवाद : (प्रजापतिः) प्रजापति ने (पुरा) कल्पके आदिमें (सहयज्ञाः) यज्ञसहित (प्रजाः) प्रजाओंको (सृष्ट्वा) रचकर उनसे (उवाच) कहा कि (अनेन) अन्न द्वारा होने वाला धार्मिक कर्म जिसे धर्म यज्ञ कहते हैं, जिसमें भण्डारे करना आदि है, इस यज्ञके द्वारा (प्रसविष्यध्वम्) वृद्धिको प्राप्त होओ और (वः) तुम को (एषः) यह पूर्ण परमात्मा (इष्टकामधुक्) यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट ही इच्छित भोग प्रदान करनेवाला (अस्तु) हो। (10)

अध्याय 3 का श्लोक 11

देवाः भावयन्तानेन ते देवा भावयन्तु वः ।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ । ११ ।

देवान्, भावयन्त, अनेन, ते, देवाः, भावयन्तु, वः,

परस्परम् भावयन्तः, श्रेयः, परम्, अवाप्स्यथ ॥11॥

विशेष :- गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 में वर्णित उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष है, उस की जड़ (मूल) तो पूर्ण परमात्मा है तथा तना परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष है तथा डार क्षर पुरुष (ब्रह्म) है व तीनों गुण अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी रूपी शाखायें हैं। वृक्ष को मूल(जड़) से ही खुराक अर्थात् आहार प्राप्त होता है। जैसे हम आम का पौधा लगायेंगे तो मूल को सींचेंगे, जड़ से खुराक तना में जायेगी, तना से मोटी डार में, डार से शाखाओं में जायेगी, फिर उन शाखाओं को फल लगेंगे, फिर वह टहनियां अपने आप फल देंगी। इसी प्रकार पूर्णब्रह्म अर्थात् परम अक्षर ब्रह्म रूपी मूल की पूजा अर्थात् सिंचाई करने से अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म रूपी तना में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी, फिर अक्षर पुरुष से क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म रूपी डार में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर ब्रह्म से तीनों गुण अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी रूपी तीनों शाखाओं में संस्कार अर्थात् खुराक जायेगी। फिर इन तीनों देवताओं रूपी टहनियों को फल लगेंगे अर्थात् फिर तीनों प्रभु श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी हमें संस्कार आधार पर ही कर्म फल देते हैं। यही प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 16 व 17 में भी है कि दो प्रभु इस पृथ्वी लोक में है, एक क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म, दूसरा अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म। ये दोनों प्रभु तथा इनके लोक में सर्व प्राणी तो नाशवान हैं, वास्तव में अविनाशी तथा तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण-पोषण करने वाला परमेश्वर परमात्मा तो उपरोक्त दोनों भगवानों से भिन्न है। कृप्या देखें चित्र सीधा बीजा हुआ भक्तिरूपी पौधा पृष्ठ 448 पर।

अनुवाद : (अनेन) इस यज्ञके द्वारा (देवान्) देवताओं अर्थात् शाखाओं को (भावयत) उन्नत करो और (ते) वे (देवाः) देवता अर्थात् शाखायें (वः) तुमलोगोंको (भावयन्तु) उन्नत करें अर्थात् संस्कार वश फल प्रदान करें। इस प्रकार निःस्वार्थभावसे (परस्परम्) एक-दूसरेको (भावयन्तः) उन्नतकरते हुए (परम्) परम (श्रेयः) कल्याणको (अवाप्स्यथ) प्राप्त हो जाओगे। (11)

अध्याय 3 का श्लोक 12

इष्टान्भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः । १२ ।

इष्टान् भोगान्, हि, वः, देवाः, दास्यन्ते, यज्ञभाविताः,

तैः दत्तान्, अप्रदाय, एभ्यः, यः, भुङ्क्ते, स्तेनः, एव, सः ॥ 12 ॥

अनुवाद : (हि) क्योंकि (इष्टान्) उस यज्ञों में प्रतिष्ठित इष्ट देव अर्थात् पूर्ण परमात्मा को (भोगान्) भोग लगाने से मिलने वाले प्रतिफल रूप भोगों को (वः) तुमको (यज्ञभाविताः) यज्ञों के द्वारा फले (देवाः) देवता (दास्यन्ते) इसका प्रतिफल देते रहेंगे। (तैः) उनके द्वारा (दत्तान्) दिये हुए भौतिक सुख को (यः) जो (एभ्यः) इनको (अप्रदाय) बिना दिये अर्थात् यज्ञ दान आदि नहीं करते (भुङ्क्ते) स्वयं ही खा जाते हैं, (सः) वह (एव) वास्तव में (स्तेनः) चोर है। (12)

अध्याय 3 का श्लोक 13

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् । १३ ।

यज्ञशिष्टाशिनः, सन्तः, मुच्यन्ते, सर्वकिल्बिषैः,

भुजते, ते, तु, अघम्, पापाः, ये, पचन्ति, आत्मकारणात् ॥ 13 ॥

अनुवाद : (यज्ञशिष्टाशिनः) यज्ञ में प्रतिष्ठित इष्ट अर्थात् पूर्ण परमात्मा को भोग लगाने के

बाद बने प्रसाद को खाने वाले (सन्तः) साधु (सर्वकिल्बिषैः) यज्ञादि न करने से होने वाले सब पापोंसे (मुच्यन्ते) बच जाते हैं और (ये) जो (पापाः) पापीलोग (आत्मकारणात्) अपना शरीर पोषण करनेके लिये ही (पचन्ति) अन्न पकाते हैं (ते) वे (तु) तो (अघम्) पापको ही (भुजते) खाते हैं। (13)

अध्याय 3 का श्लोक 14-15

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः। १४।

अन्नात्, भवन्ति, भूतानि, पर्जन्यात्, अन्नसम्भवः,

यज्ञात्, भवति, पर्जन्यः, यज्ञः, कर्मसमुद्भवः।।14।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। १५।

कर्म, ब्रह्मोद्भवम्, विद्धि, ब्रह्म, अक्षरसमुद्भवम्,

तस्मात्, सर्वगतम्, ब्रह्म, नित्यम्, यज्ञे, प्रतिष्ठितम्।।15।।

अनुवाद : (भूतानि) प्राणी (अन्नात्) अन्नसे (भवन्ति) उत्पन्न होते हैं, (अन्नसम्भवः) अन्नकी उत्पत्ति (पर्जन्यात्) वृष्टिसे होती है (पर्जन्यः) वृष्टि (यज्ञात्) यज्ञसे (भवति) होती है और (यज्ञः) यज्ञ (कर्मसमुद्भवः) विहित कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला है। (कर्म) कर्मको तू (ब्रह्मोद्भवम्) ब्रह्मसे उत्पन्न और (ब्रह्म) ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष को (अक्षरसमुद्भवम्) अविनाशी परमात्मासे उत्पन्न हुआ (विद्धि) जान। (तस्मात्) इससे सिद्ध होता है कि (सर्वगतम्) सर्वव्यापी (ब्रह्म) परमात्मा (नित्यम्) सदा ही (यज्ञे) यज्ञमें (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित है अर्थात् यज्ञों का भोग लगा कर फल दाता भी वही पूर्णब्रह्म है। (इसी का प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 13 में है कि गुणों के आधार से कर्म लगाकर चार वर्ण बनाए हैं तथा कर्म का लगाने वाला कर्ता मैं ब्रह्म ही हूँ।)(14-15)

अध्याय 3 का श्लोक 16

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति। १६।

एवम्, प्रवर्तितम्, चक्रम्, न, अनुवर्तयति, इह, यः,

अघायुः, इन्द्रियारामः, मोघम्, पार्थ, सः, जीवति।।16।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (यः) जो पुरुष (इह) इस लोकमें (एवम्) इस प्रकार परम्परासे (प्रवर्तितम्) प्रचलित (चक्रम्) सृष्टिचक्रके (न, अनुवर्तयति) अनुकूल नहीं बरतता अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता (सः) वह (इन्द्रियारामः) इन्द्रियोंके द्वारा भोगोंमें रमण करनेवाला (अघायुः) पापी पुरुष (मोघम्) व्यर्थ ही (जीवति) जीवित है। (16)

अध्याय 3 का श्लोक 17

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।

आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते। १७।

यः, तु, आत्मरतिः, एव, स्यात्, आत्मतृप्तः, च, मानवः,

आत्मनि, एव, च, सन्तुष्टः, तस्य, कार्यम्, न, विद्यते।।17।।

अनुवाद : (तु) परंतु (यः) जो (मानवः) मनुष्य (एव) वास्तव में (आत्मरतिः) आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा में लीन रहने वाला ही रमण (च) और (आत्मतृप्तः) परमात्मा में

ही तृप्त (च) तथा (आत्मनि एव) परमात्मा में ही (सन्तुष्टः) संतुष्ट (स्यात्) हो, (तस्य) उसके लिये (कार्यम्) कोई कर्तव्य (न) नहीं (विद्यते) जान पड़ता। (17)

अध्याय 3 के श्लोक 18

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।

न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः। १८।

न, एव, तस्य, कृतेन, अर्थः, न, अकृतेन, इह, कश्चन,

न, च, अस्य, सर्वभूतेषु, कश्चित्, अर्थव्यपाश्रयः।।18।।

अनुवाद : (तस्य) उस महापुरुषका (इह) इस विश्वमें (न) न तो (कृतेन) कर्म करनेसे (कश्चन) कोई (अर्थः) प्रयोजन रहता है और (न) न (अकृतेन) कर्मोंके न करनेसे (एव) ही कोई प्रयोजन रहता है (च) तथा (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी (अस्य) इसका (कश्चित्) किंचितमात्र भी (अर्थव्यपाश्रयः) स्वार्थका सम्बन्ध (न) नहीं रहता। क्योंकि वह स्वार्थ रहित होने से किसी को शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म नहीं करवाता, न ही स्वयं करता है। वह धन उपार्जन के उद्देश्य से साधना नहीं करता या करवाता। (18)

अध्याय 3 का श्लोक 19

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः। १९।

तस्मात्, असक्तः, सततम्, कार्यम्, कर्म, समाचर,

असक्तः, हि, आचरन्, कर्म, परम्, आप्नोति, पूरुषः।।19।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये तू (सततम्) निरन्तर (असक्तः) आसक्तिसे रहित होकर सदा (कार्यम् कर्म) शास्त्र विधि अनुसार कर्तव्यकर्मको (समाचर) भलीभाँति करता रह। (हि) क्योंकि (असक्तः) इच्छासे रहित होकर (कर्म) भक्ति कर्म (आचरन्) करता हुआ (परम् पूरुषः) पूर्ण परमात्माको (आप्नोति) प्राप्त हो जाता है। (19)

अध्याय 3 का श्लोक 20

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि। २०।

कर्मणा, एव, हि, संसिद्धिम्, आस्थिताः, जनकादयः,

लोकसंग्रहम्, एव, अपि, सम्पश्यन्, कर्तुम्, अर्हसि।।20।।

अनुवाद : (जनकादयः) जनकादि भी (कर्मणा) आसक्ति रहित कर्मद्वारा (एव) ही (संसिद्धिम्) सिद्धिको (आस्थिताः) प्राप्त हुए थे। (हि) इसलिये (लोकसंग्रहम्) लोकसंग्रहको (सम्पश्यन्) देखते हुए (अपि) भी तू (कर्तुम्) सांसारिक कार्य करते हुए भी शास्त्र विधि अनुसार कर्म करनेको (एव) ही (अर्हसि) योग्य है अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है। (20)

अध्याय 3 का श्लोक 21

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते। २१।

यत्, यत् आचरति, श्रेष्ठः, तत्, तत्, एव, इतरः, जनः,

सः, यत्, प्रमाणम्, कुरुते, लोकः, तत्, अनुवर्तते।।21।।

अनुवाद : (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ पुरुष अर्थात् शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले साधक (यत्, यत्) जो-जो (आचरति) आचरण करता है (इतरः) अन्य (जनः) पुरुष भी (तत्, तत्) वैसा-वैसा (एव) ही आचरण करते हैं (सः) वह (यत्) जो कुछ (प्रमाणम्) प्रमाण (कुरुते) कर देता है (लोकः) समस्त मनुष्यसमुदाय (तत्) उसीके (अनुवर्तते) अनुसार बरतने लग जाता है। (21)

अध्याय 3 का श्लोक 22

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि। २२।

न, मे, पार्थ, अस्ति, कर्तव्यम्, त्रिषु, लोकेषु, किञ्चन,

न, अनवाप्तम्, अवाप्तव्यम्, वर्ते, एव, च, कर्मणि।।22।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (मे) मुझे इन (त्रिषु) तीनों (लोकेषु) लोकोंमें (न) न तो (किञ्चन) कुछ (कर्तव्यम्) कर्तव्य (अस्ति) है (च) और (न) न कोई भी (अवाप्तव्यम्) प्राप्त करने योग्य वस्तु (अनवाप्तम्) अप्राप्त है तो भी मैं (कर्मणि) कर्ममें (एव) ही (वर्ते) बरतता हूँ। (22)

अध्याय 3 का श्लोक 23

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः। २३।

यदि, हि, अहम्, न, वर्तेयम्, जातु, कर्मणि, अतन्द्रितः,

मम, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः।।23।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (पार्थ) हे पार्थ! (यदि) यदि (जातु) कदाचित् (अहम्) मैं (अतन्द्रितः) सावधान होकर (कर्मणि) कर्ममें (न) न (वर्तेयम्) बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाए क्योंकि (मनुष्याः) मनुष्य (सर्वशः) सब प्रकारसे (मम) मेरे ही (वर्त्म) मार्गका (अनुवर्तन्ते) अनुसरण करते हैं। (23)

अध्याय 3 का श्लोक 24

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम्।

सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः। २४।

उत्सीदेयुः, इमे, लोकाः, न, कुर्याम्, कर्म, चेत्, अहम्,

संकरस्य, च, कर्ता, स्याम्, उपहन्याम्, इमाः, प्रजाः।।24।।

अनुवाद : (चेत्) यदि (अहम्) मैं (कर्म) कर्म (न) न (कुर्याम्) करूँ तो (इमे) ये (लोकाः) सब मनुष्य (उत्सीदेयुः) नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँ (च) और मैं (संकरस्य) संकरताका (कर्ता) करनेवाला (स्याम्) होऊँ तथा (इमाः) इस (प्रजाः) समस्त प्रजाको (उपहन्याम्) नष्ट करनेवाला बनूँ। (24)

अध्याय 3 का श्लोक 25

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्। २५।

सक्ताः, कर्मणि, अविद्वांसः, यथा, कुर्वन्ति, भारत,

कुर्यात्, विद्वान्, तथा, असक्तः, चिकीर्षुः, लोकसङ्ग्रहम्।।25।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! (कर्मणि) कर्ममें (सक्ताः) आसक्त हुए (अविद्वांसः) अज्ञानीजन (यथा) जिस प्रकार शास्त्रअनुकूल कर्म (कुर्वन्ति) करते हैं (असक्तः) आसक्तिरहित (विद्वान्) विद्वान् भी (लोकसङ्ग्रहम्) शिष्य बनाने की इच्छा से जनता इक्कठी (चिकीर्षुः) करना चाहता हुआ (तथा)

उपरोक्त शास्त्र विधि अनुसार कर्म (कुर्यात्) करे। (25)

भावार्थ :- भगवान कह रहे हैं कि यदि अशिक्षित व्यक्ति शास्त्रविधि अनुसार साधना करते हैं तो शिक्षित व्यक्ति को भी उसका अनुसरण करना चाहिए। इसी में विश्व कल्याण है।

अध्याय 3 का श्लोक 26

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्। २६।

न, बुद्धिभेदम्, जनयेत्, अज्ञानाम्, कर्मसंगिनाम्,
जोषयेत्, सर्वकर्माणि, विद्वान्, युक्तः, समाचरन्।।26।।

अनुवाद : (कर्मसंगिनाम्) शास्त्र अनुकूल साधकों द्वारा दिए ज्ञान से शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्मों पर अडिग (अज्ञानाम्) अशिक्षितों अर्थात् अज्ञानियोंकी (बुद्धिभेदम्) साधनाओं शास्त्र विरुद्ध साधना से हानि तथा शास्त्र विधि अनुसार साधना से लाभ होता है, इसे प्रत्यक्ष देखकर उनकी बुद्धि में अन्तर (न, जनयेत्) उत्पन्न न करे अर्थात् उनको विचलित न करें कि तुम अशिक्षित हो तुम क्या जानों सत्य साधना। अपने मान वश उनको भ्रमित न करके अन्य शास्त्र विरुद्ध (युक्तः) साधना में लीन (विद्वान्) ज्ञानी पुरुषको चाहिए कि वह (सर्वकर्माणि) भक्ति कर्मों को (समाचरन्) सुचारु रूप से करता हुआ उनसे भी वैसे ही (जोषयेत्) करवावे अर्थात् उनको भ्रमित न करके प्रोत्साहन करे। (26)

अध्याय 3 का श्लोक 27

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। २७।

प्रकृतेः, क्रियमाणानि, गुणैः, कर्माणि, सर्वशः,
अहंकारविमूढात्मा, कर्ता, अहम्, इति, मन्यते।।27।।

अनुवाद : (कर्माणि) सम्पूर्ण कर्म (सर्वशः) सब प्रकारसे (प्रकृतेः) प्रकृति दुर्गा से उत्पन्न (गुणैः) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी अर्थात् तीनों गुणोंद्वारा (क्रियमाणानि) संस्कार वश किये जाते हैं तो भी (अहंकार विमूढात्मा) अहंकार युक्त शिक्षित होते हुए तत्त्वज्ञान हीन अज्ञानी (अहम्,कर्ता) 'मैं कर्ता हूँ' (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है। (27)

अध्याय 3 का श्लोक 28

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते। २८।

तत्त्ववित्, तु, महाबाहो, गुणकर्मविभागयोः,
गुणाः, गुणेषु, वर्तन्ते, इति, मत्वा, न, सज्जते।।28।।

अनुवाद : (तु) परंतु (महाबाहो) हे महाबाहो! (गुणकर्मविभागयोः) गुणविभाग और कर्मविभागके (तत्त्ववित्) तत्त्वको जाननेवाला ज्ञानी अर्थात् तत्त्वदर्शी (गुणाः) सम्पूर्ण गुण ही (गुणेषु) गुणोंमें (वर्तन्ते) बरत रहे हैं अर्थात् जितनी शक्ति तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी तमगुण शिव जी में है, उससे पूर्ण परिचित व्यक्ति की आस्था इन में इतनी रह जाती है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 45-46 में भी है (इति) ऐसा (मत्वा) समझकर उनमें (न,सज्जते) आसक्त नहीं होता अर्थात् अहंकार त्यागकर तुरन्त शास्त्रानुकूल साधना करने लग जाता है। (28)

अध्याय 3 का श्लोक 29

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्त्रविदो मन्दान्कृत्स्त्रविन्न विचालयेत्। २९।

प्रकृतेः, गुणसम्मूढाः, सज्जन्ते, गुणकर्मसु,
तान्, अकृत्स्त्रविदः, मन्दान्, कृत्स्त्रवित्, न, विचालयेत्।।29।।

अनुवाद : (प्रकृतेः) प्रकृति से उत्पन्न प्रकृति के पुत्र तीनों (गुणसम्मूढाः) गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी से अत्यन्त मोहित हुए मुख मनुष्य (गुणकर्मसु) गुणों अर्थात् तीनों प्रभुओं की साधना के कर्मोंमें (सज्जन्ते) आसक्त रहते हैं (तान्) उन (अकृत्स्त्रविदः) पूर्णतया न समझनेवाले अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर साधना करने वाले जो स्वभाव वश चल रहे हैं उन (मन्दान्) मन्दबुद्धि अशिक्षितों को (कृत्स्त्रवित्) सत्यभक्ति जाननेवाला ज्ञानी अर्थात् शास्त्र अनुसार साधना करने वाले (न, विचालयेत्) मन्द बुद्धि अज्ञानियों को जो स्वभाववश तीनों गुणों अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी तक की साधना पर अडिग हैं, उनकी गलत साधना से विचलित नहीं कर सकते अर्थात् बहुत कठिन है, वे तो नष्ट ही हैं। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 तक में भी है। (29)

अध्याय 3 का श्लोक 30

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः। ३०।

मयि, सर्वाणि, कर्माणि, सन्न्यस्य, अध्यात्मचेतसा,
निराशीः, निर्ममः, भूत्वा, युध्यस्व, विगतज्वरः।।30।।

अनुवाद : (अध्यात्मचेतसा) पूर्ण परमात्मा में लगे हुए चित्तद्वारा (सर्वाणि) सम्पूर्ण (कर्माणि) कर्मोंको (मयि) मुझमें (सन्न्यस्य) त्याग करके (निराशीः) आशारहित (निर्ममः) ममतारहित और (विगतज्वरः) संतापरहित (भूत्वा) होकर (युध्यस्व) युद्ध कर। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में है कि मेरी सर्व धार्मिक पूजाओं को मुझमें छोड़ कर सर्व शक्तिमान परमेश्वर की शरण में जा। (30)

अध्याय 3 का श्लोक 31

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः। ३१।

ये, मे, मतम्, इदम्, नित्यम्, अनुतिष्ठन्ति, मानवाः,
श्रद्धावन्तः, अनसूयन्तः, मुच्यन्ते, ते, अपि, कर्मभिः।।31।।

अनुवाद : (ये) जो कोई (मानवाः) मनुष्य (अनसूयन्तः) दोषदृष्टिसे रहित और (श्रद्धावन्तः) श्रद्धायुक्त होकर (मे) मेरे (इदम्) इस (मतम्) मत अर्थात् सिद्धांत का (नित्यम्) सदा (अनुतिष्ठन्ति) अनुसरण करते हैं (ते) वे (अपि) भी (कर्मभिः) शास्त्र विधि त्याग कर अर्थात् सिद्धान्त छोड़ कर किए जाने वाले दोष युक्त कर्मोंसे (मुच्यन्ते) बच जाते हैं। (31)

अध्याय 3 का श्लोक 32

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः। ३२।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः। ३२।

ये, तु, एतत्, अभ्यसूयन्तः, न, अनुतिष्ठन्ति, मे, मतम्,
सर्वज्ञानविमूढान्, तान्, विद्धि, नष्टान्, अचेतसः।।32।।

अनुवाद : (तु) परंतु (ये) जो (अभ्यसूयन्तः) दोषारोपण करते हुए (मे) मेरे (एतत्) इस (मतम्) मत अर्थात् सिद्धान्त के (न, अनुतिष्ठन्ति) अनुसार नहीं चलते हैं (तान्) उन (अचेतसः) मूर्खोंको तू (सर्वज्ञानविमूढान्) सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित और (नष्टान्) नष्ट हुए ही (विद्धि) जान। (32)

विशेष :- गीता अध्याय 3 श्लोक 25 से 29 में अपने द्वारा बतायें गए मत अर्थात् सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया है। 3 श्लोक 25 से 29 में विचार व्यक्त किए हैं कि शिक्षित व्यक्ति यदि शास्त्र विधि त्याग कर साधना कर रहे हैं और उन्हें कोई अशिक्षित शास्त्र अनुसार साधना करता हुआ मिले तो उसे विचलित न करें अपितु स्वयं भी उनकी साधना को स्वीकार करे। पूर्ण सन्त से उपदेश प्राप्त करके अपना कल्याण कराएँ। यही प्रमाण गीता अध्याय 13 श्लोक 11 में भी है।

अध्याय 3 का श्लोक 33

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति। ३३।

सदृशम्, चेष्टते, स्वस्याः, प्रकृतेः, ज्ञानवान्, अपि,
प्रकृतिम्, यान्ति, भूतानि, निग्रहः, किम्, करिष्यति।।33।।

अनुवाद : (भूतानि) सभी प्राणी (प्रकृतिम्) प्रकृति अर्थात् स्वभाव को (यान्ति) प्राप्त होते हैं (ज्ञानवान्) ज्ञानवान् (अपि) भी (स्वस्याः) अपने निष्कर्ष द्वारा निकाले भक्ति मार्ग के आधार से (प्रकृतेः) स्वभावके (सदृशम्) अनुसार (चेष्टते) चेष्टा करता है (निग्रहः) हठ (किम्) क्या (करिष्यति) करेगा? (33)

विशेष :- स्वभाव वश सर्व प्राणी धार्मिक कर्म करते हैं। कहने से भी नहीं मानते। वे राक्षस स्वभाव के व्यक्ति शास्त्र विधि रहित अर्थात् मेरे मत के विपरीत मनमाना आचरण करते हैं :- प्रमाण गीता अध्याय 16 व 17 में।

विचार करें :- अध्याय 3 के श्लोक 33, 34, 35 का भाव है कि सर्व प्राणी प्रकृति(माया) के वश ही हैं। स्वभाववश कर्म करते हैं। ऐसे ही ज्ञानी भी अपनी आदत वश कर्म करते हैं फिर हठ क्या करेगा।

सार : -- शिक्षित व्यक्ति जो तत्त्वज्ञान हीन हैं अपनी गलत पूजा को नहीं त्यागते चाहे कितना आग्रह करें, चाहे सदग्रन्थों के प्रमाण भी दिखा दिए जाएँ वे नहीं मानते। कुछ ज्ञानी-विद्वान पुरुष मान वश पैसा प्राप्ति व अधिक शिष्य बनाने की इच्छा से सच्चाई का अनुसरण नहीं करते। उन तत्त्वज्ञान हीन सन्तों के अशिक्षित शिष्य व शिक्षित शिष्य प्रमाण देखकर भी उन अज्ञानी सन्तों को नहीं त्यागते सत्य साधना ग्रहण नहीं करते वे मूढ़ हैं। दोनों (ज्ञानी व अज्ञानी) स्वभाव वश चल रहे हैं। इसलिए भक्ति मार्ग गलत दिशा पकड़ चुका है तथा इन दोनों को समझाना व्यर्थ है।

गरीब, चातुर प्राणी चोर हैं, मूढ़ मुग्ध हैं ठोठ। संतों के नहीं काम के, इनकू दे गल जोट।।

अध्याय 3 का श्लोक 34

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ। ३४।

इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य, अर्थे, रागद्वेषौ, व्यवस्थितौ,
तयोः, न, वशम्, आगच्छेत्, तौ, हि, अस्य, परिपन्थिनौ ।।34।।

अनुवाद : (इन्द्रियस्य, इन्द्रियस्य) इन्द्रिय-इन्द्रियके (अर्थे) अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें (रागद्वेषौ) राग और द्वेष (व्यवस्थितौ) छिपे हुए स्थित हैं। (तयोः) उन दोनोंके (वशम्) वशमें (न) नहीं (आगच्छेत्) होना चाहिये (हि) क्योंकि (तौ) वे दोनों ही (अस्य) इसके (परिपन्थिनौ) विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं। (34)

अध्याय 3 का श्लोक 35

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः । ३५ ।

श्रेयान्, स्वधर्मः, विगुणः, परधर्मात्, स्वनुष्ठितात्,
स्वधर्मे, निधनम्, श्रेयः, परधर्मः, भयावहः ।।35।।

अनुवाद : (विगुणः) गुणरहित अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर (स्वनुष्ठितात्) स्वयं मनमाना अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए (परधर्मात्) दूसरोंकी धार्मिक पूजासे (स्वधर्मः) अपनी शास्त्र विधि अनुसार पूजा (श्रेयान्) अति उत्तम है जो शास्त्रानुकूल है (स्वधर्मे) अपनी पूजा में तो (निधनम्) मरना भी (श्रेयः) कल्याणकारक है और (परधर्मः) दूसरेकी पूजा (भयावहः) भयको देनेवाली है। (35)

यही प्रमाण श्री विष्णु पुराण तृतीश अंश, अध्याय 18 श्लोक 1 से 12 पृष्ठ 215 से 220 तक है।

अध्याय 3 का श्लोक 36 (अर्जुन उवाच)

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः । ३६ ।

अथ, केन, प्रयुक्तः, अयम्, पापम्, चरति, पूरुषः,
अनिच्छन्, अपि, वार्ष्णेय, बलात्, इव, नियोजितः ।।36।।

अनुवाद : (वार्ष्णेय) हे कृष्ण! तो (अथ) फिर (अयम्) यह (पूरुषः) मनुष्य स्वयम् (अनिच्छन्) न चाहता हुआ (अपि) भी (बलात्) बलात् (नियोजितः) लगाये हुएकी (इव) भाँति (केन) किससे (प्रयुक्तः) प्रेरित होकर (पापम्) पापका (चरति) आचरण करता है? (36)

अध्याय 3 का श्लोक 37 (भगवान उवाच)

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् । ३७ ।

कामः, एषः, क्रोधः, एषः, रजोगुणसमुद्भवः,
महाशनः, महापाप्मा, विद्धि, एनम्, इह, वैरिणम् ।।37।।

अनुवाद : (रजोगुणसमुद्भवः) रजोगुणसे उत्पन्न हुआ (एष) यह (कामः) विषय वासना अर्थात् सैक्स और (एष) यह (क्रोधः) क्रोध (महाशनः) जीव को अत्यधिक खाने वाला अर्थात् नष्ट करने वाला (महापाप्मा) बड़ा पापी है (एनम्) इस उपरोक्त पाप को ही तू (इह) इस विषयमें (वैरिणम्) वैरी (विद्धि) जान। (37)

अध्याय 3 का श्लोक 38

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।३८।

धूमेन, आव्रियते, वह्निरः, यथा, आदर्शः, मलेन, च,
यथा, उल्बेन, आवृतः, गर्भः, तथा, तेन, इदम्, आवृतम्।।38।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार (धूमेन) धुएँसे (वह्निरः) अग्नि (च) और (मलेन) मैलसे (आदर्शः) दर्पण (आव्रियते) ढका जाता है तथा (यथा) जिस प्रकार (उल्बेन) जेरसे (गर्भः) गर्भ (आवृतः) ढका रहता है (तथा) वैसे ही (तेन) उपरोक्त विकारों द्वारा (इदम्) यह ज्ञान (आवृतम्) ढका रहता है। (38)

अध्याय 3 का श्लोक 39

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।३९।

आवृतम्, ज्ञानम्, एतेन, ज्ञानिनः, नित्यवैरिणा,
कामरूपेण, कौन्तेय, दुष्पूरेण, अनलेन, च।।39।।

अनुवाद : (च) और (कौन्तेय) हे कुन्ति पुत्र अर्जुन! (एतेन) इस (अनलेन) अग्नि के समान कभी (दुष्पूरेण) न पूर्ण होनेवाले (कामरूपेण) कामरूप विषय वासना अर्थात् सैक्स रूपी (ज्ञानिनः) ज्ञानियोंके (नित्यवैरिणा) नित्य वैरीके द्वारा मनुष्यका (ज्ञानम्) ज्ञान (आवृतम्) ढका हुआ है। (39)

अध्याय 3 का श्लोक 40

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।४०।

इन्द्रियाणि, मनः, बुद्धिः, अस्य, अधिष्ठानम्, उच्यते,
एतैः, विमोहयति, एषः, ज्ञानम्, आवृत्य, देहिनम्।।40।।

अनुवाद : (इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ (मनः) मन और (बुद्धिः) बुद्धि ये सब (अस्य) इस कामदेव अर्थात् सैक्स का (अधिष्ठानम्) वासस्थान (उच्यते) कहे जाते हैं। (एषः) यह काम विषय वासना की इच्छा (एतैः) इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही (ज्ञानम्) ज्ञानको (आवृत्य) आच्छादित करके (देहिनम्) जीवात्माको (विमोहयति) मोहित करता है। (40)

अध्याय 3 का श्लोक 41

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।४१।

तस्मात्, त्वम्, इन्द्रियाणि, आदौ, नियम्य, भरतर्षभ,
पाप्मानम्, प्रजहि, हि, एनम्, ज्ञानविज्ञाननाशनम्।।41।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिए (भरतर्षभ) भरतर्षभ अर्जुन! (त्वम्) तू (आदौ) पहले (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों को (नियम्य) वश में करके (एनम्) इस (ज्ञान-विज्ञान-नाशनम्) ज्ञान और विज्ञान को नष्ट करने वाले (पाप्मानम्) महापापी काम को (ही) अवश्य ही (प्रजही)मार। (41)

अध्याय 3 का श्लोक 42

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।४२।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।४२।

इन्द्रियाणि, पराणि, आहुः, इन्द्रियेभ्यः, परम्, मनः,

मनसः, तु, परा, बुद्धिः, यः, बुद्धेः, परतः, तु, सः ॥42॥

अनुवाद : (इन्द्रियाणि) इन्द्रियोंको स्थूल शरीरसे (पराणि) पर यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म (आहुः) कहते हैं, (इन्द्रियेभ्यः) इन इन्द्रियोंसे (परम्) अधिक (मनः) मन है, (मनसः) मनसे (तु) तो (परा) उत्तम (बुद्धिः) बुद्धि है (तु) और (यः) जो (बुद्धेः) बुद्धिसे भी (परतः) अत्यन्त शक्तिशाली है, (सः) वह परमात्मा सहित आत्मा है। (42)

अध्याय 3 का श्लोक 43

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्। ४३।

एवम्, बुद्धेः, परम्, बुद्ध्वा, संस्तभ्य, आत्मानम्, आत्मना,

जहि, शत्रुम्, महाबाहो, कामरूपम्, दुरासदम् ॥43॥

अनुवाद: (एवम्) इस प्रकार (बुद्धेः) बुद्धिसे (परम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (आत्मानम्) परमात्मा को (बुद्ध्वा) जानकर और (आत्मना) अपने आप को स्वअभ्यास द्वारा (संस्तभ्य) संयमी (महाबाहो) हे महाबाहो! अर्जुन तू इस (कामरूपम्) कामरूप अर्थात् भोग विलास रूप (दुरासदम्) दुर्जय (शत्रुम्) शत्रुको (जहि) मार डाल। (43)

(इति अध्याय तीसरा)



❁ चौथा अध्याय ❁

॥ सारांश ॥

गीता जी के अध्याय 4 के श्लोक 1 से 3 में भगवान कह रहा है कि मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य देव से कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा तथा मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा। इस प्रकार यह परम्परा चली आ रही थी। श्रेष्ठ ज्ञान बहुत समय से फिर लुप्त हो गया था। तू मेरा प्रिय मित्र है। इसलिए मैंने वही ज्ञान तुझे कहा है। यह रहस्यमय अर्थात् गुप्त रखने योग्य है।

विचार करें : ज्ञान को गुप्त रखने योग्य क्यों कहा? क्योंकि यदि आम जीव को काल के जाल का पता लग जाए तो काल लोक खाली हो जाएगा।

विशेष :- यहाँ सूर्य शब्द इस आग के गोले के लिए नहीं है। एक देव है जिसका नाम सूर्य है, जैसे पृथ्वी पर भी किसी का नाम सूर्यकान्त, सूरज आदि होता है। अध्याय 4 के श्लोक 4 में अर्जुन ने पूछा कि आपका जन्म तो अब का है परंतु सूर्य देव का जन्म तो बहुत पहले का है। यह कैसे हो सकता है कि आपने ही यह ज्ञान सूर्य को दिया?

॥ ब्रह्म साधना से जन्म-मरण समाप्त नहीं होता ॥

अध्याय 4 के श्लोक 5 से 9 तक काल भगवान ने कहा है कि अर्जुन तेरे तथा मेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। इन सबको तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। मैं मनुष्य की तरह जन्म न लेने वाला अविनाशी आत्मा होते हुए तथा सर्व (इक्कीस ब्रह्मण्ड के) प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति (शेरवाली) को आधीन करके माया के गोविन्द श्री ब्रह्मा - श्री विष्णु - श्री शिव को उत्पन्न करता हूँ। फिर उन्हीं में से अवतार रूप में श्री कृष्ण-श्री राम, श्री परसुराम आदि रचता हूँ अर्थात् 24 अवतार उत्पन्न करता है तथा उनमें गुप्त रूप से प्रकट होता हूँ। जैसे महर्षि वाल्मीकि में प्रवेश होकर "रामायण" ग्रन्थ की रचना श्री रामचन्द्र जी के जन्म से पूर्व ही कर दी। महर्षि व्यास जी में प्रवेश होकर चारों वेद, श्री मदभगवत् गीता जी, अठारह पुराण आदि ग्रन्थों की रचना कर दी। जब-2 धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती है तब-2 मैं अपने अंश अवतार रचता हूँ और वह अवतार साधुओं की रक्षा तथा असाधुओं का संहार करने के लिए प्रकट हुआ करते हैं। पवित्र गीता बोलने वाला ब्रह्म (काल) कह रहा है कि अर्जुन मेरी भी जन्म-मृत्यु होती है। इसे तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। यही प्रमाण गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में है जिस में कहा है कि मेरी उत्पत्ति को मेरे से उत्पन्न ऋषि देवता आदि नहीं जानते। अध्याय 4 श्लोक 9 में स्पष्ट किया है कि मेरे जन्म अलौकिक हैं। यह ब्रह्म (काल) एक ब्रह्मलोक रचकर उसमें तीन रूपों (महाब्रह्मा, महाविष्णु, महाशिव) में रहता है। इसकी जन्म-मृत्यु होती है। यह शिव रूप में तब मरता है जब इसी का पुत्र त्रिलोकीय शिव 70000 (सत्तर हजार) वार मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसलिए अपने जन्म व मृत्यु को अलौकिक कहा है। अधिक जानकारी के लिए कृप्या पढ़े प्रलय की जानकारी (इसी पुस्तक के पृष्ठ नं 301 से 305 पर।)

हे अर्जुन! मेरे जन्म व कर्म अद्भुत हैं जो कोई इस प्रकार तत्व से नहीं जान लेता है वह शरीर त्याग कर मेरे जाल में फंस जाता है। (उसको कुछ समय स्वर्ग-महास्वर्ग में रख कर फिर चौरासी में डाल देता है।) जो मुझ काल को तत्व से जान लेता है उस पूर्णज्ञानी का पुर्नजन्म नहीं होता।

विशेष : - गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 12 में तथा इसी अध्याय 4 के श्लोक 5 में प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जन्म-मरण बना रहेगा, फिर अध्याय 9 के श्लोक 7 में कहा है कि कल्प के अंत में सर्व

प्राणी (स्वर्ग-नरक व मृत्युलोक) नष्ट हो जाते हैं। फिर कल्प के प्रारम्भ में मैं रचूंगा अर्थात् अस्थाई जन्म-मरण समाप्त हुआ, स्थाई नहीं। काल भगवान अच्छी आत्माओं (परम आत्माओं) को रचता है अर्थात् पैदा करता है। फिर उनमें स्वयं प्रवेश करके गुप्त रूप से अपना उल्लू सीधा कर लेता है तथा अपने आपको आकार में प्रकट नहीं करता। यह इसका अटल अविनाशी नियम है कि वह अपने वास्तविक रूप आकार में कभी प्रकट नहीं होता। प्रमाण गीता जी के अध्याय 7 के श्लोक 24, 25 ।

तीन लोक के सर्व प्राणी इस (काल) के अधीन हैं। यह उनका मालिक है। इसलिए कह रहा है कि मैं धर्म की हानि होने पर पाप कर्मी प्राणियों को मारने के लिए [परसुराम जी के शरीर में प्रवेश करके क्षत्रियों का सफाया कर दिया। फिर दुर्वासा जी में प्रवेश करके 56 करोड़ यादवों समेत भगवान कृष्ण व कृष्ण जी के परिवार समेत खा गया। कपिल मुनि में प्रवेश करके साठ हजार राजा सगड़ के पुत्रों का सफाया कर दिया। इसी प्रकार राजा मानधाता चकवै बैन की बहतर क्षौहिणी सेना को चुणक ऋषि में प्रवेश करके दुःखदाई तत्वों को नष्ट किया तथा धर्म की रक्षा की तथा श्री कृष्ण में प्रवेश करके महाभारत जैसा भयंकर युद्ध करवा दिया तथा स्वयं गुप्त रहा।] अपने अंश प्रकट करता हूँ। मेरे जन्म व कर्म अद्भुत हैं। जो व्यक्ति मुझे इस प्रकार जान लेता है वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश (तीनों गुणों) छोड़कर मुझे ही स्मरता है और मेरे को ही प्राप्त होता है अर्थात् मेरा ही आहार होता है। (उसे महास्वर्ग में भेज कर कुछ लम्बे समय तक जन्म मरण से बचा देता है। फिर चौरासी लाख जूनियों में डाल देता है तथा जो तत्व से जान लेता है उसका पुनर् जन्म नहीं होता है क्योंकि वे भक्त पूर्ण सन्त अर्थात् तत्त्वदर्शी सन्त की शरण में जा कर पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं।)

।। पूर्ण ज्ञानी काल जाल में नहीं रहते ।।

अध्याय 4 के श्लोक 10 से 15 में काल भगवान कह रहे हैं कि जिनके राग द्वेष मर गए हैं जिसने मुझे यहाँ 21 ब्रह्माण्ड के कर्मों का कर्ता तथा मालिक हूँ, ऐसे तत्व से जान लिया है। वह मतावलम्बी हो चुके हैं। [नोट : वे तीनों मंत्रों के उपासक कबीर हंस हैं जो सत्यनाम व सारनाम सुमरण करके काल के यथार्थ स्वरूप को देख कर उसके सिर पर पैर रख कर पार (सतलोक में चले जाते हैं) हो जाते हैं।] जैसे गीता अध्याय 7 श्लोक 17 में कहा है कि ज्ञानी मुझे अच्छे लगते हैं तथा मैं ज्ञानी को प्रिय हूँ। क्योंकि वे तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी) की उपासना न करके मेरी भक्ति करते हैं, इसी प्रकार यहाँ गीता अध्याय 4 श्लोक 11 में कहा है कि जो मुझे भजते हैं मैं उन्हें भजता हूँ अर्थात् मुझे अच्छे लगते हैं क्योंकि वे कभी तत्त्वदर्शी संत से मिलते ही तुरन्त सत्य साधना करने लग जाते हैं, इसी का प्रमाण गीता अध्याय 16 व 17 में विस्तृत है। फिर कहा है कि जो मुझे अच्छी तरह जान लेता है वह फिर मेरे जाल में नहीं फँसता है तथा जो देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) की साधना करते हैं वे जल्दी प्रकट हो कर उन्हें कुछ राहत दे देते हैं परंतु पूर्ण मुक्त नहीं कर सकते। इसलिए तू अपने पूर्वजों की तरह शास्त्रानुकूल भक्ति कर्म कर।

।। कर्मों के बन्धन से त्रिलोकी भगवान भी नहीं बचे ।।

अध्याय 4 के श्लोक 16 से 22 में कर्मों का विवरण कहा है कि जो व्यक्ति जिस किसी कर्म को करे, उसमें कर्तापन नहीं लाए तथा कहे कि कर्म मालिक आपके आश्रित होकर कर रहा हूँ। कर्म-अकर्म का ज्ञान इस तुच्छ जीव को नहीं है। जो निष्काम भावना से कर्म करता है वह पंडित (विद्वान) है तथा कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धता। इसीलिए इसी अध्याय के श्लोक 34 में कहा है कि तत्त्वज्ञान से ही सर्व कर्मों का ज्ञान होगा कि कौन प्रभु पूजा के योग्य है, कौन नहीं? फिर साधक

ब्रह्म द्वारा लगाए कर्मों के बन्धन में न बन्ध कर सत्यलोक में चला जाता है। फिर सदा के लिए कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। ब्रह्म तक के ज्ञान से तो कर्म बन्धन से मुक्ति नहीं मिलती वे तो भोगने ही पड़ते हैं। विचार करें भगवान विष्णु से बंध कर कौन विद्वान हो सकता है? उनका भी कर्म बन्धन में बंध कर श्री रामचन्द्र रूप में जन्म हुआ। क्योंकि महर्षि नारद जी को बन्दर का मुख लगाया जिस कर्म के अनुसार नारद जी ने भगवान विष्णु जी को शाप दिया। जिसके बन्धन के अनुसार राजा दशरथ के घर जन्म लिया फिर वनवास हुआ तथा बाली का वध किया। बाली वध के कर्म बन्धन में बंध कर श्री कृष्ण के रूप में वही विष्णु आत्मा का द्वापर युग में जन्म हुआ। फिर बाली की आत्मा जो उस समय एक शिकारी बना था ने उस कर्म का बदला श्री कृष्ण जी के पैर में तीर मार कर लिया। उसी कर्म बन्धन में बंध कर कृष्ण रूप में जन्मना पड़ा।

कर्म बन्धन से केवल परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ ही छुड़वा सकते हैं। इसलिए उन्हें बन्दी छोड़ कहा जाता है। पवित्र यजुर्वेद अध्याय 5 मंत्र 32 में तथा यजुर्वेद अध्याय 8 मंत्र 13 में भी प्रमाण है (कविरंघारिरसि) कबीर परमेश्वर पाप का शत्रु है अर्थात् पाप विनाशक है (बम्भारिरसि) वह कबीर परमेश्वर बन्धनों का शत्रु है अर्थात् काल के कर्म बन्धन रूपी कारागार से छुड़वाने वाला बन्दी छोड़ है। "अमर करुं सतलोक पठाऊँ। तातें बन्दी छोड़ कहाऊँ।।"

अध्याय 4 के श्लोक 23-24 का भाव है कि जो साधक सर्व कर्म परमात्मा को साक्षी रख कर कर रहा है उसके सर्व कर्म ब्रह्म (परमात्मा) जैसे होते हैं। चूंकि वह तत्व ज्ञानी साधक शास्त्र विधि रहित मनमाना आचरण नहीं करता। इसलिए उसके वचन कर्म परमात्मा के गुणगान करने में तथा सर्व समय प्रभु चिन्तन में ही लीन रहता है। पूर्ण विचार कर कार्य करता है।

।। वेदों व गीता में वर्णित पूजा विधि से कर्म व पाप नहीं कटते।।

अध्याय 4 के श्लोक 25 से 30 तक में कहा है कि इनमें भिन्न-2 प्रकार की कर्म उपासना का विवरण किया है। कहा है कि कुछ साधक तो हवन यज्ञ करके कर्मयोग को कर रहे हैं, कुछ एक स्थान पर विशेष आसन पर बैठ कर कान, नाम, आँख आदि इन्द्रियों को हठ करके रोक कर संयम करने की साधना में लगे हैं, कुछ दान (द्रव्य), कुछ तप कर्म कर रहे हैं। कुछ घोर व्रत कर रहे हैं, कुछ अन्य अभ्यास से तथा स्वाध्याय (धार्मिक शास्त्र पढ़ना) में कर्म श्रेष्ठ मान कर आध्यात्मिक कर्मों में संलग्न हैं तथा अन्य प्राणायाम विधि से भक्ति कर्म कर रहे हैं और मान रहे हैं कि ये सर्व भक्ति कर्म पाप नष्ट करने वाले हैं। भगवान कृष्ण अर्जुन के गुरु रूप में थे। (जैसा कि गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 7 में स्वयं अर्जुन कह रहा है कि मैं आपका शिष्य हूँ।) जब युधिष्ठिर को भयानक स्वपन आने लगे तब श्री कृष्ण (गुरु) जी से कारण व समाधान पूछा था। भगवान ने कहा था कि आपको युद्ध के द्वारा किए पाप दुःखदाई हो रहे हैं। इसका समाधान यज्ञ ही बताया था। यज्ञ की गई। फिर भगवान कृष्ण के पैर में बालिया नामक शिकारी जो बाली की आत्मा थी, ने तीर मारा। उस समय श्री कृष्ण जी ने अर्जुन व सर्व पाण्डवों को कहा कि आप हिमालय में जा कर आसक्ति रहित हो कर मोह ममता त्याग कर ॐ मन्त्र की साधना इन्द्रियों पर काबू पाकर संयम रखते हुए करना। आपके (पाण्डवों के) सर्व पाप समाप्त हो जाएंगे। पाण्डवों ने ऐसा ही किया परंतु फिर भी नरक गए। इससे सिद्ध है कि वेदों व गीता जी में वर्णित साधना से पाप विनाश नहीं होते, भोगने ही पड़ते हैं। अन्य उपलब्धियाँ जैसे सिद्धियाँ व स्वर्ग-महास्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है। परंतु पाप कर्म नहीं कटते। सतनाम व सारनाम का सुमरण करने वाला उपासक सनातन ब्रह्म (सतपुरुष) को प्राप्त हो जाता है। जिसका जन्म-मरण स्थाई रूप से समाप्त हो जाता है। पूर्ण परमात्मा का साधक अन्य चार यज्ञों के साथ-2 ज्ञान यज्ञ अधिक करता है, ज्ञान यज्ञ सुबह, शाम,

दोपहर का स्वाध्याय तथा सतसंग श्रवण व धार्मिक पुस्तकों का पठन तथा साथ-2 गुरु मन्त्र का जाप भी स्वांस-2 में करता है। उस साधक के पाप विनाश हो जाते हैं तथा अनादि मोक्ष प्राप्त करता है।

।। नाम के साथ-साथ यज्ञ भी आवश्यक ।।

अध्याय 4 के श्लोक 31-32 में कहा है कि गीता अध्याय 42 श्लोक 25-30 तक वर्णित शास्त्रविरुद्ध साधना से बचे हुए साधक शास्त्रविधि अनुसार यज्ञ से अलग सतनाम व सारनाम के जाप रूपी आनन्द (अमृत) का अनुभव करने वाले (सनातन ब्रह्म) पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होते हैं। यज्ञ भी आवश्यक बताते हुए कहा है कि नाम साधना के साथ पाँचों यज्ञ (धर्म, ध्यान, हवन, प्रणाम, ज्ञान अर्थात् धार्मिक शास्त्रों का पठन पाठन) भी आवश्यक हैं। जैसे सतनाम व सारनाम रूपी बीज बीजकर उसमें यज्ञ रूपी खाद पानी भी अति आवश्यक है। जिससे भक्ति रूपी पौधा परिपक्व होता है। यदि केवल नाम साधना करते रहे यज्ञ नहीं किए तो जैसे पानी और खाद के अभाव से पौधा सूख जाता है, इसी प्रकार यज्ञ न करने से साधक अहंकारी, दयाहीन, श्रद्धाहीन, हो जाता है। वास्तविक जाप मंत्र बिना केवल यज्ञ करना भी निष्फल है। यदि गुरु जी से नाम नहीं ले रखा है वैसे यज्ञ करता रहे वह भी निष्फल है पूर्ण सन्त से वास्तविक मन्त्र (सत्यनाम व सारनाम) का , उपदेश लेकर पाँचों यज्ञ नहीं करते तो उनको इस लोक में कोई लाभ नहीं होगा फिर परलोक में कैसे हो सकता है? भावार्थ है कि पूर्ण सन्त द्वारा दिया पूर्ण भक्ति मार्ग ही लाभदायक है। अर्जुन यज्ञ में प्रतिष्ठित पूर्ण परमात्मा को इष्ट रूप में मान कर यज्ञ करता है तथा यज्ञों के साथ-साथ वास्तविक नाम का सुमरण करके पूर्ण मोक्ष रूपी अमृत को प्राप्त हो जाता है अर्थात् पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं।

पूर्ण परमात्मा द्वारा अपने मुख कमल से सूक्ष्म वेद में सभी यज्ञों का विस्तार पूर्वक विवरण है जो शारीरिक भक्ति कर्मों से सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार जान कर मुक्त हो जाता है। उस तत्त्वज्ञान को मैं (गीता बोलने वाला प्रभु) भी नहीं जानता। जो पूर्ण परमात्मा के पूर्ण मोक्ष मार्ग का विवरण है, उसके लिए तत्त्वज्ञान को जानने वाले संतों की खोज कर।

।। तत्त्वदर्शी संतों से नाम ले कर पूर्ण मुक्ति संभव ।।

विशेष : अध्याय 4 के श्लोक 33 से 35 का भाव है कि हे अर्जुन! इस प्रकार पूर्ण परमात्मा के ज्ञान को व समाधान को जानने वाले तत्त्वदर्शी संतों के पास जा। उनको आधीनी पूर्वक आदर के साथ दण्डवत् प्रणाम कर प्रेम व विनय पूर्वक उस परमात्मा का मार्ग पूछ। फिर वे संत पूर्ण परमात्मा को पाने की विधि (सतनाम व सारनाम अर्थात् ॐ, तत्, सत् का मन्त्र) बताएंगे जिसको जान कर तू फिर इस प्रकार अज्ञान रूपी मोह को प्राप्त नहीं होगा। फिर तू इसी ज्ञान के आधार पर पहले अपने आपको जानेगा कि मैं काल के जाल में कैसे फंसा तथा फिर मुझे (काल रूप से) देखेगा, तब तू यहाँ से निकलने की पूरी चेष्टा करेगा। तत्त्वदर्शी संत की पहचान गीता अध्याय 15 श्लोक 1 से 4 तक में देखें। अध्याय 4 के श्लोक 33 से 42 में पवित्र श्री मद्भगवत् गीता जी को बोलने वाले काल प्रभु ने कहा कि द्रव्य यज्ञ (दान) से ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है। मैं उस पूर्ण परमात्मा के तत्त्वज्ञान से अनभिज्ञ हूँ अर्थात् मैं नहीं जानता। इसलिए किसी पूर्ण परमात्मा के ज्ञान को जानने वाले ज्ञानी संत (धीराणाम्) के पास जाकर पूर्ण जानकारी (पूर्णब्रह्म परमात्मा का मार्ग) प्राप्त कर, पहले उन पूर्ण संतों को दण्डवत् प्रणाम करना, फिर उनकी सेवा करना तथा अति आधीनी से विनम्र भाव से पूर्ण परमात्मा को पाने की विधि पूछना। तब वे प्रसन्न हो कर तुझे पूर्ण तत्त्व ज्ञान समझाएंगे तथा नाम

उपदेश दे कर कल्याण करेंगे। फिर मुझे समझ पाएगा कि मैं वास्तव में काल हूँ। पहले तो तू अपने आपको समझेगा कि तू कौन है तथा कैसे मेरे (काल के) जाल में फंसा? फिर मुझे (काल समझ कर) विशेष दृष्टिकोण से देखेगा (पहले वाले भाव से नहीं)। जब तुझे पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हो जाएगा। (फिर पूरा गुरु तलाश करेगा जो तुझे सत्यनाम व सारनाम देगा)। फिर तू उस तत्वदर्शी संत से तीन मंत्र का जाप (जिनमें एक ओ३म् + तत् + सत् दो सांकेतिक हैं जो वहीं पूर्ण संत बता सकता है) लेकर सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाएगा। जब तुझे मेरा (काल का) पूर्ण ज्ञान हो जाएगा तो पूरी तड़फ करके नाम लेकर भजन करके अग्नि की तरह वह सत्यनाम व सारनाम की लगन पाप को नष्ट करेगी अर्थात् उस परमात्मा में यह शक्ति है कि वह जीव के सर्व पापों को समाप्त कर सकता है जबकि ब्रह्म (काल) ऐसा नहीं कर सकता। जिसको पूर्ण जानकारी हो गई वह परम शांति को प्राप्त हो जाएगा अर्थात् पूर्ण परमात्मा की साधना करके पूर्ण मुक्त हो जाएगा।

जिस भक्त आत्मा का पूर्ण संशय मिट गया उसने अपने आपको पूर्ण परमात्मा को समर्पित कर दिया। वह ज्ञानी व्यक्ति संशय रूपी राक्षस को तत्वज्ञान रूपी तलवार से काट देता है। इसलिए उठ अर्थात् सचेत होकर तत्वदर्शी संत से तत्वज्ञान सुन कर शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्मों पर अडिग हो जा।



॥ चौथे अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक ॥

परमात्मने नमः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अध्याय 4 का श्लोक 1 (भगवान् उवाच)

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुर्इक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।१।

इमम्, विवस्वते, योगम्, प्रोक्तवान्, अहम्, अव्ययम्,
विवस्वान्, मनवे, प्राह, मनुः, इक्ष्वाकवे, अब्रवीत्।१।॥

अनुवाद : (अहम्) मैंने (इमम्) इस (अव्ययम्) अविनाशी (योगम्) भक्ति मार्ग को (विवस्वते) सूर्यसे (प्रोक्तवान्) कहा था (विवस्वान्) सूर्यने अपने पुत्र वैवस्वत (मनवे) मनु से (प्राह) कहा और (मनुः) मनुने अपने पुत्र (इक्ष्वाकवे) राजा इक्ष्वाकुसे (अब्रवीत्) कहा। (1)

अध्याय 4 का श्लोक 2

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप।२।

एवम्, परम्पराप्राप्तम्, इमम्, राजर्षयः, विदुः,
सः, कालेन, इह, महता, योगः, नष्टः, परन्तप।२।॥

अनुवाद : (परन्तप) हे परन्तप अर्जुन! (एवम्) इस प्रकार (परम्पराप्राप्तम्) परम्परासे प्राप्ते (इमम्) इस भक्ति मार्ग को (राजर्षयः) राजर्षियोंने (विदुः) जाना किंतु उसके बाद (सः) वह (योगः) योग अर्थात् भक्ति मार्ग (महता) बहुत (कालेन) समय से (इह) इस पृथ्वीलोकमें (नष्टः) समाप्त हो गया।२।॥

अध्याय 4 का श्लोक 3

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्।३।

सः, एव, अयम्, मया, ते, अद्य, योगः, प्रोक्तः, पुरातनः,
भक्तः, असि, मे, सखा, च, इति, रहस्यम्, हि, एतत्, उत्तमम्।३।॥

अनुवाद : तू (मे) मेरा (भक्तः) भक्त (च) और (सखा) सखा (असि) है (इति) इसलिये (सः) वही (अयम्) यह (पुरातनः) पुरातन (एव) वास्तविक (योगः) भक्ति मार्ग (अद्य) पुराना (मया) मैंने (ते) तुझको (प्रोक्तः) कहा है (हि) क्योंकि (एतत्) यह (उत्तमम्) बड़ा ही उत्तम (रहस्यम्) रहस्य वाला है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है। (3)

अध्याय 4 का श्लोक 4

(अर्जुन उवाच)

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।४।

अपरम्, भवतः, जन्म, परम्, जन्म, विवस्वतः,

कथम्, एतत्, विजानीयाम्, त्वम्, आदौ, प्रोक्तवान् इति।।4।।

अनुवाद : (भवतः) आपका (जन्म) जन्म तो (अपरम्) अधिक समय का नहीं है अर्थात् अभी हाल का है और (विवस्वतः) सूर्यका (जन्म) जन्म (परम्) अधिक पहले का है (इति) इस बातको (कथम्) कैसे (विजानीयाम्) समझूँ कि (त्वम्) आपहीने (आदौ) कल्पके आदिमें सूर्यसे (एतत्) यह योग (प्रोक्तवान्) कहा था?। (4)

अध्याय 4 का श्लोक 5

(भगवान उवाच)

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप। ५।

बहूनि, मे, व्यतीतानि, जन्मानि, तव, च, अर्जुन,

तानि, अहम्, वेद, सर्वाणि, न, त्वम्, वेत्थ, परन्तप।।5।।

अनुवाद : (परन्तप) हे परन्तप (अर्जुन) अर्जुन! (मे) मेरे (च) और (तव) तेरे (बहूनि) बहुत-से (जन्मानि) जन्म (व्यतीतानि) हो चुके हैं। (तानि) उन (सर्वाणि) सबको (त्वम्) तू (न) नहीं (वेत्थ) जानता किंतु (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ। (5)

अध्याय 4 का श्लोक 6

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। ६।

अजः, अपि, सन्, अव्ययात्मा, भूतानाम्, ईश्वरः, अपि, सन्,

प्रकृतिम्, स्वाम्, अधिष्ठाय, सम्भवामि, आत्ममायया।।6।।

अनुवाद : (अजः) मनुष्यों की तरह मैं जन्म न लेने वाला और (अव्ययात्मा) अविनाशीआत्मा (सन्) होते हुए (अपि) भी तथा (भूतानाम्) मेरे इक्कीस ब्रह्मण्डों के प्राणियोंका (ईश्वरः) ईश्वर (सन्) होते हुए (अपि) भी (स्वाम्) अपनी (प्रकृतिम्) प्रकृति अर्थात् दुर्गा को (अधिष्ठाय) अधीन करके अर्थात् पत्नी रूप में रखकर (आत्ममायया) अपने अंश अर्थात् पुत्र श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, व शिव जी उत्पन्न करता हूँ, फिर उन्हें श्री कृष्ण, श्री राम, श्री परसुराम आदि अंश अवतार (सम्भवामि) प्रकट करता हूँ। (6)

अध्याय 4 का श्लोक 7

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्। ७।

यदा, यदा, हि, धर्मस्य, ग्लानिः, भवति, भारत,

अभ्युत्थानम्, अधर्मस्य, तदा, आत्मानम्, सृजामि, अहम्।।7।।

अनुवाद : (भारत) हे भारत! (यदा,यदा) जब-जब (धर्मस्य) धर्मकी (ग्लानिः) हानि और (अधर्मस्य) अधर्मकी (अभ्युत्थानम्) वृद्धि (भवति) होती है (तदा) तब-तब (हि) ही (अहम्) मैं (आत्मानम्) अपना अंश अवतार (सृजामि) रचता हूँ अर्थात् उत्पन्न करता हूँ। (7)

अध्याय 4 का श्लोक 8

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। ८।

परित्राणाय, साधूनाम्, विनाशाय, च, दुष्कृताम्,
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि, युगे, युगे।।8।।

अनुवाद : (साधूनाम्) साधु पुरुषोंका (परित्राणाय) उद्धार करनेके लिये (दुष्कृताम्) बुरेकर्म करनेवालोंका (विनाशाय) विनाश करनेके लिये (च) और (धर्मसंस्थापनार्थाय) भक्ति मार्ग को शास्त्र अनुकूल दिशा देने के लिए (युगे, युगे) युग-युगमें (सम्भवामि) अपने अंश प्रकट करता हूँ तथा उनमें गुप्त रूप से मैं प्रवेश करके अपनी लीला करता हूँ। (8)

अध्याय 4 का श्लोक 9

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन। ९।

जन्म, कर्म, च, मे, दिव्यम्, एवम्, यः, वेत्ति, तत्त्वतः,
त्यक्त्वा, देहम्, पुनः, जन्म, न, एति, माम्, एति, सः, अर्जुन।।9।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (मे) मेरे (जन्म) जन्म (च) और (कर्म) कर्म (दिव्यम्) दिव्य अर्थात् अलौकिक हैं (एवम्) इस प्रकार (यः) जो मनुष्य (तत्त्वतः) तत्त्वसे (वेत्ति) जान लेता है (सः) वह (देहम्) शरीरको (त्यक्त्वा) त्यागकर (पुनः) फिर (जन्म) जन्मको (न, एति) प्राप्त नहीं होता किंतु जो मुझ काल को तत्व से नहीं जानते (माम्) मुझे ही (एति) प्राप्त होता है। (9)

विशेष :- काल (ब्रह्म) के अलौकिक जन्मों को जानने के लिए देखें अध्याय 8 में प्रलय की जानकारी।

अध्याय 4 का श्लोक 10

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः। १०।

वीतरागभयक्रोधाः, मन्मयाः, माम्, उपाश्रिताः,
बहवः, ज्ञानतपसा, पूताः, मद्भावम्, आगताः।।10।।

अनुवाद : (वीतरागभयक्रोधाः) जिनके राग भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये और (मन्मयाः) जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित रहते हैं ऐसे (माम्) मेरे (उपाश्रिताः) आश्रित रहनेवाले (बहवः) बहुत-से भक्त उपर्युक्त (ज्ञानतपसा) ज्ञानरूप तपसे (पूताः) पवित्र होकर (मद्भावम्) मतावलम्बी अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना करने वाले स्वभाव के (आगताः) हो चुके हैं। (10)

अध्याय 4 का श्लोक 11

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः। ११।

ये, यथा, माम्, प्रपद्यन्ते, तान्, तथा, एव, भजामि, अहम्,
मम्, वर्त्म, अनुवर्तन्ते, मनुष्याः, पार्थ, सर्वशः।।11।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! (ये) जो भक्त (माम्) मुझे (यथा) जिस प्रकार (प्रपद्यन्ते) भजते हैं (अहम्) मैं भी (तान्) उनको (तथा) उसी प्रकार (भजामि) भजता हूँ अर्थात् उनका पूरा ध्यान

रखता हूँ (एव) वास्तव में (मनुष्याः) सभी मनुष्य (सर्वशः) सब प्रकारसे (मम्) मेरे ही (वर्त्म) व्यवहारका (अनुवर्तन्ते) अनुसरण करते हैं। (11)

अध्याय 4 का श्लोक 12

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा । १२ ।

काङ्क्षन्तः, कर्मणाम्, सिद्धिम्, यजन्ते, इह, देवताः,
क्षिप्रम्, हि, मानुषे, लोके, सिद्धिः, भवति, कर्मजा ॥12॥

अनुवाद : (इह) इस (मानुषे) मनुष्य (लोके) लोकमें (कर्मणाम्) कर्मोंके (सिद्धिम्) फलको (काङ्क्षन्तः) चाहनेवाले लोग (देवताः) देवताओं अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव का (यजन्ते) पूजन किया करते हैं (हि) क्योंकि उनको (कर्मजा) कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली अर्थात् कर्माधार से (सिद्धिः) सिद्धि (क्षिप्रम्) शीघ्र (भवति) मिल जाती है। (12)

अध्याय 4 का श्लोक 13

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् । १३ ।

चातुर्वर्ण्यम्, मया, सृष्टम्, गुणकर्मविभागशः,
तस्य, कर्तारम्, अपि, माम्, विद्धि, अकर्तारम्, अव्ययम् ॥13॥

अनुवाद : (चातुर्वर्ण्यम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों का समूह (गुणकर्म विभागशः) गुण और कर्मोंके विभागपूर्वक (मया) मेरे द्वारा (सृष्टम्) रचा गया है इस प्रकार (तस्य) उस कर्म का (कर्तारम्) कर्ता (अपि) भी (माम्) मुझ काल को ही (विद्धि) जान तथा (अव्ययम्) वह अविनाशी परमेश्वर (अकर्तारम्) अकर्ता है। भावार्थः- गीता अध्याय 3 श्लोक 14-15 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि कर्मों को ब्रह्मोद्धवम अर्थात् ब्रह्म से उत्पन्न जान। यही प्रमाण इस अध्याय 4 श्लोक 13 में है। गीता ज्ञान दाता काल ब्रह्म कह रहा है कि चार वर्णों की व्यवस्था मैंने की है। इनके कर्मों का विभाजन भी मैंने किया है। वह अविनाशी पूर्ण परमात्मा इन कर्मों का अकर्ता है, ब्रह्मा रजगुण, विष्णु सतगुण तथा शिव तमगुण के विभाग भी काल ब्रह्म ने बनाए हैं सृष्टि, स्थिती, संहार। इनका करने वाला अविनाशी परमात्मा नहीं है। (13)

अध्याय 4 का श्लोक 14

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते । १४ ।

न, माम्, कर्माणि, लिम्पन्ति, न, मे, कर्मफले, स्पृहा,
इति, माम्, यः, अभिजानाति, कर्मभिः, न, सः, बध्यते ॥14॥

अनुवाद : (कर्मफले) कर्मोंके फलमें (मे) मेरी (स्पृहा) स्पृहा (न) नहीं है इसलिये (माम्) मुझे (कर्माणि) कर्म (न,लिम्पन्ति) लिप्त नहीं करते (इति) इस प्रकार (यः) जो (माम्) मुझ काल-ब्रह्म को (अभिजानाति) तत्वसे जान लेता है (सः) वह भी (कर्मभिः) कर्मोंसे (न) नहीं (बध्यते) बंधता अर्थात् गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहे तत्वदर्शी संत की खोज करके गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहे उस परमात्मा की शरण में जाकर पूर्ण परमात्मा की भक्ति करके कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। (14)

अध्याय 4 का श्लोक 15

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् । १५ ।

एवम्, ज्ञात्वा, कृतम्, कर्म, पूर्वैः, अपि, मुमुक्षुभिः,
कुरु, कर्म, एव, तस्मात्, त्वम्, पूर्वैः, पूर्वतरम्, कृतम् ॥15॥

अनुवाद : (पूर्वैः) पूर्वकालके (मुमुक्षुभिः) मुमुक्षुओंने (अपि) भी (एवम्) इस प्रकार (ज्ञात्वा) जानकर ही शास्त्र विधि अनुसार साधना रूपी (कर्म) कर्म (कृतम्) विशेष कसक के साथ किये हैं (तस्मात्) इसलिये (त्वम्) तू भी (पूर्वैः) पूर्वजोंद्वारा (पूर्वतरम्, कृतम्) सदासे किये जानेवाले शास्त्र विधि अनुसार भक्ति (कर्म) कर्मोंको (एव) ही (कुरु) कर । (15)

अध्याय 4 का श्लोक 16

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् । १६ ।

किम्, कर्म, किम्, अकर्म, इति, कवयः, अपि, अत्र, मोहिताः,
तत्, ते, कर्म, प्रवक्ष्यामि, यत्, ज्ञात्वा, मोक्ष्यसे, अशुभात् ॥16॥

अनुवाद : (कर्म) कर्म (किम्) क्या है और (अकर्म) अकर्म (किम्) क्या है? (इति) इसप्रकार (अत्र) यहाँ निर्णय करनेमें (कवयः) बुद्धिमान् साधक (अपि) भी (मोहिताः) मोहित हो जाते हैं इसलिये (तत्) वह (कर्म) कर्म-तत्त्व में (ते) तुझे (प्रवक्ष्यामि) भलीभाँति समझाकर कहूँगा (यत्) जिसे (ज्ञात्वा) जानकर तू (अशुभात्) शास्त्र विरुद्ध किए जाने वाले दुष्कर्मों से (मोक्ष्यसे) मुक्त हो जायगा । (16)

अध्याय 4 का श्लोक 17

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः । १७ ।

कर्मणः, हि, अपि, बोद्धव्यम्, बोद्धव्यम्, च, विकर्मणः,
अकर्मणः, च, बोद्धव्यम्, गहना, कर्मणः, गतिः ॥17॥

अनुवाद : (कर्मणः) शास्त्र विधि अनुसार कर्मका स्वरूप (अपि) भी (बोद्धव्यम्) जानना चाहिये (च) और (अकर्मणः) शास्त्र विधि रहित अर्थात् अकर्मका स्वरूप भी (बोद्धव्यम्) जानना चाहिए (च) तथा (विकर्मणः) मास-मदिरा तम्बाखु सेवन तथा चोरी - दुराचार आदि विकर्मका स्वरूप भी (बोद्धव्यम्) जानना चाहिए (हि) क्योंकि (कर्मणः) कर्मकी (गतिः) गति (गहना) गहन है । (17)

भावार्थ :- तत्त्वज्ञान को जान कर शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म से होने वाले लाभ से तथा शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म से तथा मांस, मदिरा, तम्बाखु सेवन व चोरी, दुराचार करना झूठ बोलना आदि बुरे कर्म से होने वाली हानि का ज्ञान होना अनिवार्य है । उसके लिए इस अध्याय के मंत्र 34 में विवरण है ।

अध्याय 4 का श्लोक 18

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् । १८ ।

कर्मणि, अकर्म, यः, पश्येत्, अकर्मणि, च, कर्म, यः,

सः, बुद्धिमान्, मनुष्येषु, सः, युक्तः, कृत्स्नकर्मकृत् ।।18।।

अनुवाद : (यः) जो मनुष्य (कर्मणि) कर्म अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना रूपी करने योग्य कर्म तथा (अकर्म) अकर्म अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण न करने योग्य कर्म को (पश्येत्) देखता है अर्थात् जान लेता है (च) और (यः) जो (अकर्मणि) अकर्म अर्थात् वह शास्त्र विरुद्ध साधना न करने योग्य कर्म को नहीं करता (कर्म) कर्म अर्थात् करने योग्य कर्म को करता है (सः) वह (मनुष्येषु) मनुष्योंमें (बुद्धिमान्) बुद्धिमान है और (सः) वह (युक्तः) योगी (कृत्स्नकर्मकृत्) समस्त शास्त्र विधि अनुसार ही कर्मोंको करनेवाला है। (18)

अध्याय 4 का श्लोक 19

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः ।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः । १९ ।

यस्य, सर्वे, समारम्भाः, कामसंकल्पवर्जिताः,

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्, तम्, आहुः, पण्डितम्, बुधाः ।।19।।

अनुवाद : (यस्य) जिसके (सर्वे) सम्पूर्ण (समारम्भाः) शास्त्र अनुकूल कर्म (कामसंकल्प वर्जिताः) बिना कामना और संकल्पके होते हैं तथा (ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणम्) बुरे कर्म अर्थात् शास्त्र विधि रहित कार्य तत्व ज्ञानरूप अग्निके द्वारा भस्म हो गये हैं अर्थात् पूर्ण ज्ञान होने पर साधक पूर्ण संत तलाश करके वास्तविक मंत्र प्राप्त कर लेता है, जिससे सर्व पाप विनाश हो जाते हैं (तम्) उसको (बुधाः) शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले बुद्धिमान लोग (पण्डितम्) पण्डित (आहुः) कहते हैं। (19)

अध्याय 4 का श्लोक 20

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः । २० ।

त्यक्त्वा, कर्मफलासंगम्, नित्यतृप्तः, निराश्रयः,

कर्मणि, अभिप्रवृत्तः, अपि, न, एव, किञ्चित्, करोति, सः ।।20।।

अनुवाद : (कर्मफलासंगम्) तत्त्वज्ञान के आधार से शास्त्र विधि रहित कर्मोंमें और उनके फलमें आसक्ति का सर्वथा (त्यक्त्वा) त्याग करके (निराश्रयः) शास्त्र विधि रहित भक्ति के कर्म से रहित हो गया है और (नित्यतृप्तः) शास्त्र अनुकूल साधना के कर्मों से नित्य तृप्त है (सः) वह (कर्मणि) संसारिक व शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्मोंमें (अभिप्रवृत्त) भलीभाँति बरतता हुआ (अपि) भी (एव) वास्तवमें (किञ्चित्) कुछ भी शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमानी पूजा तथा दोषयुक्त कर्म (न) नहीं (करोति) करता। (20)

अध्याय 4 का श्लोक 21

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् । २१ ।

निराशीः, यतचित्तात्मा, त्यक्तसर्वपरिग्रहः,

शारीरम्, केवलम्, कर्म, कुर्वन्, न, आप्नोति, किल्बिषम् ।।21।।

अनुवाद : (यतचित्तात्मा) शास्त्र विधि अनुसार भक्ति प्राप्त आत्मा (त्यक्तसर्वपरिग्रहः) जिसने समस्त शास्त्र विरुद्ध संग्रह की हुई साधनाओं का परित्याग कर दिया है ऐसा (निराशीः) अविधिवत्

साधना को फँका हुआ अर्थात् शास्त्र विधि रहित साधना त्यागा हुआ भक्त (केवलम्) केवल (शारीरम्) हठ योग न करके शरीर से जो आसानी से होने वाली सहज साधना तथा शरीर सम्बन्धी (कर्म) संसारिक कर्म तथा शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म (कुर्वन्) करता हुआ (किल्बिषम्) क्योंकि शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् पूजा करने वालों को गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म अर्थात् शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने वाले, मूर्ख मेरी भक्ति भी नहीं करते, वे केवल तीनों गुणों अर्थात् रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी की भक्ति करके उनसे मिलने वाली क्षणिक राहत पर आश्रित रहते हैं। इन्हीं तीनों गुणों अर्थात् श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी की साधना शास्त्र विधि रहित कही है इस शास्त्र विधि रहित साधना को त्याग कर शास्त्रविधि अनुसार भक्ति करता है। वह पापको (न) नहीं (आप्नोति) प्राप्त होता। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 47-48 में भी है। (21)

अध्याय 4 का श्लोक 22

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।

समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते। २२।

यदृच्छालाभसन्तुष्टः, द्वन्द्वातीतः, विमत्सरः,

समः, सिद्धौ, असिद्धौ, च, कृत्वा, अपि, न, निबध्यते। 122।।

अनुवाद : (यदृच्छालाभसन्तुष्टः) जो बिना इच्छाके अपने आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा संतुष्ट रहता है (विमत्सरः) जिसमें ईर्ष्याका सर्वथा अभाव हो गया है (द्वन्द्वातीतः) जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है ऐसा (सिद्धौ) कार्य की सिद्धि (च) और (असिद्धौ) असिद्धिमें (समः) समान रहने वाला अर्थात् अविचलित (कृत्वा) कार्य करते-करते शास्त्र अनुकूल भक्ति करता हुआ (अपि) भी उनसे (न) नहीं (निबध्यते) बँधता। क्योंकि पूर्ण संत से पूर्ण मंत्र जाप प्राप्त करने के उपरान्त निष्काम शास्त्र अनुकूल साधना के शुभ कर्म भक्ति में सहयोगी होते हैं तथा पाप विनाश हो जाते हैं। जिससे कर्म बन्धन मुक्त हो जाता है। (22)

अध्याय 4 का श्लोक 23

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते। २३।

गतसंगस्य, मुक्तस्य, ज्ञानावस्थितचेतसः,

यज्ञाय, आचरतः, कर्म, समग्रम्, प्रविलीयते। 123।।

अनुवाद : (गतसंगस्य) शास्त्र विरुद्ध साधना से आस्था हटने के कारण (मुक्तस्य) उस मुक्त हुए साधक का (ज्ञानावस्थितचेतसः) चित्त निरन्तर परमात्मा के तत्त्वज्ञानमें स्थित रहता है ऐसे केवल (यज्ञाय) शास्त्र अनुकूल भक्ति के लिये कर्म (आचरतः) आचरण करनेवाले मनुष्यके (समग्रम्) सम्पूर्ण (कर्म) कर्म (प्रविलीयते) प्रभु साधना के प्रति विलीन हो जाते हैं। (23)

अध्याय 4 का श्लोक 24

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना। २४।

ब्रह्म, अर्पणम्, ब्रह्म, हविः, ब्रह्माग्नौ, ब्रह्मणा, हुतम्,

ब्रह्म, एव, तेन, गन्तव्यम्, ब्रह्मकर्मसमाधिना। 124।।

अनुवाद : (अर्पणम्) ऐसे शास्त्र अनुकूल साधक का समर्पण भी (ब्रह्म) ब्रह्म अर्थात् परमात्मा को है और (हविः) हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी (ब्रह्म) प्रभु ही है तथा (ब्रह्मणा) पूर्ण परमात्मा के निमित्त (ब्रह्माग्नौ) ब्रह्मरूप अग्निमें अर्थात् प्रभु स्तुति से (हुतम्) पापों की आहूति हो जाती है अर्थात् पाप विनाश हो जाते हैं (एव) वास्तव में (ब्रह्मकर्मसमाधिना) सांसारिक कार्य करते हुए भी जिसका ध्यान परमात्मा में ही लीन रहता है और जो आसानी से शरीर से होने वाले कर्म करता है अर्थात् सहज समाधि में रह कर साधना करता है (तेन) उसके लिए (ब्रह्म) परमात्मा (गन्तव्यम्) प्राप्त किये जाने योग्य है अर्थात् वही परमात्मा प्राप्त कर सकता है जो सहज समाधि में रहता है। (24)

आदरणीय गरीबदास जी महाराज भी कहते हैं :-

जैसे हाली बीज धुन, पंथी से बतलावै। वा में खण्ड पड़े नहीं ऐसे ध्यान(समाधि) लगावै।।

भावार्थ :- जैसे किसान खेत में गेहूं या अन्य फसल बीज रहा हो और कोई यात्री आ जाए तो रस्ता पूछने पर वह किसान हल चलाते-चलाते बीज बीजते हुए यात्री को रस्ता भी बताता है, परन्तु उसकी समाधि (ध्यान) अपने मूल कार्य में ही रहता है। इसे सहज समाधि (कर्मसमाधि) कहा जाता है। इसी का प्रमाण पवित्र गीता जी कह रही हैं कि जो कर्मयोगी अपना कार्य करता हुआ भी प्रभु में ध्यान रखता है, वही प्रभु को प्राप्त करने योग्य भक्त है।

गरीब, नाम उठत नाम बैठत नाम सोवत जाग वे। नाम खाते नाम पीते नाम सेती लाग वे।।

अध्याय 4 का श्लोक 25

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।

ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुहति। २५।

दैवम्, एव, अपरे, यज्ञम्, योगिनः, पर्युपासते,

ब्रह्माग्नौ, अपरे, यज्ञम्, यज्ञेन, एव, उपजुहति।।25।।

अनुवाद : (अपरे) इसके विपरित दूसरे (योगिनः) योगीजन (दैवम्) देवताओंके पूजनरूप (यज्ञम्) यज्ञका (एव) ही (पर्युपासते) भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं और (अपरे) अन्य योगीजन (ब्रह्माग्नौ) परमात्मा प्राप्ति की विरह रूपी अग्नि (यज्ञेन) अपने ही विचार से धार्मिक कर्मों के द्वारा (एव) ही (यज्ञम्) धार्मिक कर्मों का (उपजुहति) अनुष्ठान किया करते हैं। (25)

अध्याय 4 का श्लोक 26

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुहति।

शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुहति। २६।

श्रोत्रादीनि, इन्द्रियाणि, अन्ये, संयमाग्निषु, जुहति,

शब्दादीन्, विषयान्, अन्ये, इन्द्रियाग्निषु, जुहति।।26।।

अनुवाद : (अन्ये) अन्य योगीजन (श्रोत्रादीनि) कान नाक आदि बन्द करके अर्थात् हठ योग से (इन्द्रियाणि) समस्त इन्द्रियोंको (संयमाग्निषु) संयमरूप अग्नियोंमें (जुहति) हवन की तरह पाप जलाने का प्रयत्न किया करते हैं और (अन्ये) दूसरे साधक (शब्दादीन्) शब्द-स्पर्श आदि (विषयान्) समस्त विषयोंको (इन्द्रियाग्निषु) इन्द्रियरूप अग्नियोंमें (जुहति) हवन की तरह पाप जलाने का प्रयत्न किया करते हैं अर्थात् हठ करके साधना करने को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (26)

अध्याय 4 का श्लोक 27

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहति ज्ञानदीपिते। २७।

सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि, प्राणकर्माणि, च, अपरे,
आत्मसंयमयोगान्नौ, जुहति, ज्ञानदीपिते।।27।।

अनुवाद : (अपरे) दूसरे योगीजन (सर्वाणि, इन्द्रियकर्माणि) इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण क्रियाओंको (च) और (प्राणकर्माणि) प्राणोंकी अर्थात् स्वांसाँ की समस्त क्रियाओंको (ज्ञानदीपिते) ज्ञानसे प्रकाशित (आत्मसंयमयोगान्नौ) अपने आप को संयमयोगरूप अग्निमें (जुहति) हवन किया करते हैं अर्थात् ज्ञान से संयम करके साधना करते हैं, इसी को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (27)

अध्याय 4 का श्लोक 28

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः। २८।

द्रव्ययज्ञाः, तपोयज्ञाः, योगयज्ञाः, तथा, अपरे,
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः, च, यतयः, संशितव्रताः।।28।।

अनुवाद : (अपरे) कई साधक (द्रव्ययज्ञाः) द्रव्य-सम्बन्धी धार्मिक कर्म केवल दान करनेवाले हैं कितने ही (तपोयज्ञाः) तपस्वरूप धार्मिक कर्म करनेवाले हैं (तथा) तथा दूसरे कितने ही (योगयज्ञाः) योगासन रूप धार्मिक कर्म करनेवाले हैं (च) और कितने ही (संशितव्रताः) घोर व्रतोंसे युक्त (यतयः) यत्नशील हैं और (स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः) कुछ स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ अर्थात् केवल सद्ग्रन्थों का नित्य पाठ करनेवाले हैं अर्थात् इसी को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (28)

अध्याय 4 का श्लोक 29-30

अपाने जुहति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः। २९।
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुहति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः। ३०।

अपाने, जुहति, प्राणम्, प्राणे, अपानम्, तथा, अपरे,
प्राणापानगती, रुद्ध्वा, प्राणायामपरायणाः।।29।।
अपरे, नियताहाराः, प्राणान्, प्राणेषु, जुहति,
सर्वे, अपि, एते, यज्ञविदः, यज्ञक्षपितकल्मषाः।।30।।

अनुवाद : (अपरे) दूसरे (अपाने) अपानवायुमें (प्राणम्) प्राणवायुको (जुहति) हवन की तरह पाप जलाने का प्रयत्न करते हैं। (तथा) वैसे ही (प्राणे) प्राणवायुमें (अपानम्) अपानवायुको करते हैं तथा (अपरे) अन्य कितने ही (नियताहाराः) नियमित आहार करनेवाले (प्राणायामपरायणाः) प्राणायामपरायण (प्राणापानगती) प्राण और अपानकी गतिको (रुद्ध्वा) रोककर (प्राणान्) प्राणोंको अर्थात् स्वांसाँ को सूक्ष्म करके (प्राणेषु) प्राणोंमें ही (जुहति) हवन की तरह जलाने का प्रयत्न किया करते हैं अर्थात् प्राणायाम करके ही प्रभु प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। (एते) ये (सर्वे, अपि) सभी साधक (यज्ञक्षपितकल्मषाः) उपरोक्त धार्मिक कर्मों अर्थात् साधनाओं द्वारा पापोंका नाश कर देनेवाले(यज्ञविदः) भक्ति साधन समझते हैं अर्थात् इसी साधना को मोक्ष मार्ग मानते हैं। (29-30)

अध्याय 4 का श्लोक 31

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम। ३१।

यज्ञशिष्टामृतभुजः, यान्ति, ब्रह्म, सनातनम्,

न, अयम्, लोकः, अस्ति, अयज्ञस्य, कुतः, अन्यः, कुरुसत्तम ।।31।।

अनुवाद : (कुरुसत्तम) हे कुरुक्षेष्ट अर्जुन! (यज्ञशिष्टामृतभुजः) उपरोक्त शास्त्रविधि रहित साधनाओं से बचे हुए बुद्धिमान साधक शास्त्र अनुकूल साधना से बचे हुए लाभ को उपभोग करके (सनातनम् ब्रह्म) आदि पुरुष परमेश्वर अर्थात्-पूर्णब्रह्मको (यान्ति) प्राप्त होते हैं और (अयज्ञस्य) शास्त्र विधि अनुसार पूर्ण प्रभु की भक्ति न करनेवाले पुरुषके लिये तो (अयम्) यह (लोकः) मनुष्य-लोक भी सुखदायक (न) नहीं (अस्ति) है फिर (अन्यः) परलोक (कुतः) कैसे सुखदायक हो सकता है?(31)

भावार्थ :- यज्ञ से बचे हुए अमृत का भोग करने का अभिप्रायः है कि “पूर्ण परमात्मा की साधना करने वाले साधक अपने शरीर के कमलों को खोलने वाले मन्त्र का जाप करते हैं। वे मन्त्र श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी व श्री दुर्गा जी के जाप भी हैं जो संसारिक सुख प्राप्त कराते हैं। इन के मन्त्र जाप से उपरोक्त देवी व देवताओं के ऋण से मुक्ति मिलती है जो मन्त्र जाप की ऋण उतरने के पश्चात् शेष कमाई है उस शेष जाप की कमाई से पूर्ण परमात्मा के साधक को अत्यधिक संसारिक लाभ प्राप्त होता है। इस श्लोक 31 में यही कहा है कि पूर्ण परमात्मा का साधक यज्ञ अर्थात् साधना (अनुष्ठान) से बची शेष भक्ति कमाई का उपयोग करके पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। भावार्थ है कि पूर्ण परमात्मा के विधिवत् साधक को संसारिक सुख भी अधिक प्राप्त होता है तथा पूर्ण मोक्ष भी प्राप्त होता है।

विशेष - यही प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 3 श्लोक 13 में वर्णन है तथा अध्याय 16 श्लोक 23-24 में भी है कि हे भारत जो साधक शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमुखी पूजा करते हैं उनको न तो कोई सुख प्राप्त होता है, न सिद्धि तथा न ही कोई गति प्राप्त होती है अर्थात् व्यर्थ है। इसलिए शास्त्रों में अर्थात् वेदों में जो भक्ति साधना के कर्म करने का आदेश है तथा जो न करने का आदेश है वही मानना श्रेयकर है।

अध्याय 4 का श्लोक 32

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।

कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानिवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे । ३२ ।

एवम्, बहुविधाः, यज्ञाः, वितताः, ब्रह्मणः, मुखे,

कर्मजान्, विद्धि, तान्, सर्वान्, एवम्, ज्ञात्वा, विमोक्ष्यसे ।।32।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार और भी (बहुविधाः) बहुत तरहके शास्त्रानुसार (यज्ञाः) धार्मिक क्रियाएँ हैं (तान्) उन (सर्वान्) सबको तू (कर्मजान्) कर्मों के द्वारा होने वाली यज्ञों को (विद्धि) जान (एवम्) इस प्रकार (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्माके (मुखे) मुख कमल से (वितताः) पाँचवे वेद अर्थात् स्वसम वेद में विस्तारसे कहे गये हैं। (ज्ञात्वा) जानकर (विमोक्ष्यसे) पूर्ण मुक्त हो जायगा। (32)

अध्याय 4 का श्लोक 33

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ञानयज्ञः परन्तप।

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते । ३३ ।

श्रेयान्, द्रव्यमयात्, यज्ञात्, ज्ञानयज्ञः, परन्तप,

सर्वम्, कर्म, अखिलम्, पार्थ, ज्ञाने, परिसमाप्यते ।।33।।

अनुवाद : (परन्तप,पार्थ) हे परंतप अर्जुन! (द्रव्यमयात्) द्रव्यमय अर्थात् धन के द्वारा किये

जाने वाले दान, भण्डारे आदि (यज्ञात्) यज्ञ अर्थात् धार्मिक कर्मों की अपेक्षा (ज्ञानयज्ञः) ज्ञानयज्ञ (श्रेयान्) अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा (सर्वम्) सम्पूर्ण (कर्म)शास्त्र अनुकूल कर्म (अखिलम् ज्ञाने) सम्पूर्ण ज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञानमें (परिसमाप्यते)समाप्त हो जाते हैं। (33)

अध्याय 4 का श्लोक 34

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः। ३४।

तत्, विद्धि, प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया,

उपदेक्ष्यन्ति, ते, ज्ञानम्, ज्ञानिनः, तत्त्वदर्शिनः।।34।।

अनुवाद : पवित्र गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि उपरोक्त नाना प्रकार की साधना तो मनमाना आचरण है। मेरे तक की साधना की अटकल लगाया ज्ञान है, परन्तु पूर्ण परमात्मा के पूर्ण मोक्ष मार्ग का मुझे भी ज्ञान नहीं है। उसके लिए इस मंत्र 34 में कहा है कि उस (तत्) तत्त्वज्ञान को (विद्धि) समझ उन पूर्ण परमात्मा के वास्तविक ज्ञान व समाधान को जानने वाले संतोंको (प्रणिपातेन) भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे उनकी (सेवया) सेवा करनेसे और कपट छोड़कर (परिप्रश्नेन) सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे (ते) वे (तत्त्वदर्शिनः) पूर्ण ब्रह्म को तत्त्व से जानने वाले अर्थात् तत्त्वदर्शी (ज्ञानिनः) ज्ञानी महात्मा तुझे उस (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञानका (उपदेक्ष्यन्ति) उपदेश करेंगे। (34) इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 15-16 में भी है।

अध्याय 4 का श्लोक 35

यज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि। ३५।

यत्, ज्ञात्वा, न, पुनः, मोहम्, एवम्, यास्यसि, पाण्डव,

येन, भूतानि, अशेषेण, द्रक्ष्यसि, आत्मनि, अथो, मयि।।35।।

अनुवाद : (यत्) जिस तत्त्व ज्ञान को (ज्ञात्वा) जानकर (पुनः) फिर तू (एवम्) इस प्रकार (मोहम्) मोहको (न) नहीं (यास्यसि) प्राप्त होगा तथा (पाण्डव) हे अर्जुन! (येन) जिस ज्ञानके द्वारा तू (भूतानि) प्राणियोंको (अशेषेण) पूर्ण रूपसे (आत्मनि) पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप में रहता है उस पूर्ण परमात्मा में (अथो) और पीछे (मयि) मुझे (द्रक्ष्यसि) देखेगा कि मैं काल हूँ यह जान जाएगा। (35)

अध्याय 4 का श्लोक 36

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि। ३६।

अपि, चेत्, असि, पापेभ्यः, सर्वेभ्यः, पापकृत्तमः,

सर्वम्, ज्ञानप्लवेन, एव, वृजिनम्, सन्तरिष्यसि।।36।।

अनुवाद : (चेत्) यदि तू अन्य (सर्वेभ्यः) सब (पापेभ्यः) पापियोंसे (अपि) भी (पापकृत्तमः) अधिक पाप करनेवाला (असि) है तो भी तू (ज्ञानप्लवेन) तत्त्वज्ञान के आधार पर वास्तविक नाम रूपी नौकाद्वारा (सर्वम्) सर्वस जानकर (वृजिनम्) अज्ञान से पार जाकर (एव) निःसन्देह (सन्तरिष्यसि) पूर्ण तरह तर जायेगा अर्थात् पाप रहित होकर पूर्ण मुक्त हो जायेगा। (36)

अध्याय 4 का श्लोक 37

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा । ३७ ।

यथा, एधांसि, समिद्धः, अग्निः, भस्मसात्, कुरुते, अर्जुन,

ज्ञानाग्निः, सर्वकर्माणि, भस्मसात्, कुरुते, तथा ॥ 37 ॥

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यथा) जैसे (समिद्धः) प्रज्वलित (अग्निः) अग्नि (एधांसि) ईधनोंको (भस्मसात्) भस्ममय (कुरुते) कर देता है (तथा) वैसे ही (ज्ञानाग्निः) तत्त्वज्ञानरूप अग्नि (सर्वकर्माणि) सम्पूर्ण अविधिवत् कर्मोंको (भस्मसात्) भस्ममय (कुरुते) कर देता है। (37)

अध्याय 4 का श्लोक 38

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति । ३८ ।

न, हि, ज्ञानेन, सदृशम्, पवित्रम्, इह, विद्यते,

तत् स्वयम्, योगसंसिद्धः, कालेन, आत्मनि, विन्दति ॥ 38 ॥

अनुवाद : (इह) इस संसारमें (ज्ञानेन) तत्व ज्ञानके (सदृशम्) समान (पवित्रम्) पवित्र करनेवाला (हि) निःसन्देह कुछ भी (न) नहीं (विद्यते) जान पड़ता (योगसंसिद्धः) उस तत्त्वदर्शी संत के द्वारा दिए सत भक्ति मार्ग के द्वारा जिसकी भक्ति कमाई पूर्ण हो चुकी है (कालेन) समय अनुसार (तत् आत्मनि) आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले उस पूर्ण परमात्मा को गीता अध्याय 8 श्लोक 8 से 10 में वर्णित उल्लेख के आधार से (स्वयम्) अपने आप ही (विन्दति) प्राप्त कर लेता है। (38)

अध्याय 4 का श्लोक 39

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति । ३९ ।

श्रद्धावान्, लभते, ज्ञानम्, तत्परः, संयतेन्द्रियः,

ज्ञानम्, लब्ध्वा, पराम्, शान्तिम्, अचिरेण, अधिगच्छति ॥ 39 ॥

अनुवाद : (संयतेन्द्रियः) जितेन्द्रिय (तत्परः) उस तत्त्वदर्शी संत द्वारा प्राप्त साधन के साधनपरायण (श्रद्धावान्) श्रद्धावान् मनुष्य भक्ति की उपलब्धि होने पर पूर्ण परमेश्वर के (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञानको (लभते) प्राप्त होता है तथा (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञानको (लब्ध्वा) प्राप्त होकर वह (अचिरेण) बिना विलम्बके तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप (पराम्) परम (शान्तिम्) शान्तिको (अधिगच्छति) प्राप्त हो जाता है (39)

अध्याय 4 का श्लोक 40

अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति ।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः । ४० ।

अज्ञः, च, अश्रद्धानः, च, संशयात्मा, विनश्यति,

न, अयम् लोकः, अस्ति, न, परः, न, सुखम्, संशयात्मनः ॥ 40 ॥

अनुवाद : जो साधक उस तत्त्वदर्शी संत के ज्ञान व साधना पर अविश्वास करता है वह (अज्ञः) विवेकहीन (च) और (अश्रद्धानः) श्रद्धारहित (च) तथा (संशयात्मा) संशययुक्त मनुष्य

(विनश्यति) भक्ति मार्ग से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है ऐसे (संशयात्मनः) संशययुक्त मनुष्यके लिये (न) न (अयम्) यह (लोकः) लोक में (न) न (परः) परलोक में (सुखम्) सुख (न अस्ति) नहीं है। (40) इसी का प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 40 में भी है।

अध्याय 4 का श्लोक 41

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय। ४१।

योगसन्न्यस्तकर्माणम्, ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्,
आत्मवन्तम्, न, कर्माणि, निबध्नन्ति, धनजय।। 41।।

अनुवाद : (धनजय) हे धनजय! (योगसन्न्यस्तकर्माणम्) जिसने तत्त्वज्ञान के आधार से शास्त्र विधि रहित भक्ति के सर्व कर्मों को त्याग कर दिया और (ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्) जिसने तत्त्वज्ञान द्वारा समस्त संश्योंका नाश कर दिया है ऐसे (आत्मवन्तम्) पूर्ण परमात्मा के शास्त्र अनुकूल ज्ञान पर अडिग साधक को (कर्माणि) शास्त्र विधि त्याग कर मनमाना आचरण करने से पाप कर्म होते हैं वे शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले को नहीं होते इसलिए पाप कर्म (न) नहीं (निबध्नन्ति) बाँधते अर्थात् वे पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं। (41)

अध्याय 4 का श्लोक 42

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत। ४२।

तस्मात्, अज्ञानसम्भूतम्, हृत्स्थम्, ज्ञानासिना, आत्मनः,
छित्त्वा, एनम्, संशयम्, योगम्, आतिष्ठ, उत्तिष्ठ, भारत।।42।।

अनुवाद : (तस्मात्) इसलिये (भारत) हे भरतवंशी अर्जुन! तू (हृत्स्थम्) हृदयमें स्थित (अज्ञानसम्भूतम्) अज्ञानजनित (एनम् संशयम्) शास्त्र विधि रहित संशय रूपी (एनम्) पाप को (ज्ञानासिना) तत्त्वज्ञानरूप तलवारद्वारा (छित्त्वा) छेदन करके अर्थात् दूध पानी छान कर (उत्तिष्ठ) उठ अर्थात् सावधान होकर (आत्मनः) अन्तरात्मा से पूर्ण परमात्मा के (योगम्) शास्त्र अनुकूल भक्ति में (आतिष्ठ) अडिग हो जा। (42)

(इति अध्याय चौथा)



❁ पांचवा अध्याय ❁

॥ सारांश ॥

अध्याय 5 के श्लोक 1 में अर्जुन पूछ रहा है कि कर्म सन्यास और कर्मयोग में कौन सा श्रेष्ठ है?

कर्म सन्यास का विवरण :- कर्म सन्यास दो प्रकार से होता है, 1. एक तो सन्यास वह होता है जिसमें साधक परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रेरित होकर हठ करके जंगल में बैठ जाता है तथा शास्त्र विधि रहित साधना करता है, दूसरा घर पर रहते हुए भी हठयोग करके घण्टों एक स्थान पर बैठ कर शास्त्र विधि त्याग कर साधना करता है, ये दोनों ही कर्म सन्यासी हैं।

कर्मयोग का विवरण :- यह भी दो प्रकार का होता है। एक तो बाल-बच्चों सहित सांसारिक कार्य करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार भक्ति साधना करता है या शादी न करवा करके घर पर या किसी आश्रम में रहता हुआ सांसारिक कर्म अर्थात् सेवा करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है, ये दोनों ही कर्मयोगी हैं।

दूसरी प्रकार के कर्मयोगी वे होते हैं जो बाल-बच्चों में रहते हैं तथा साधना शास्त्र विधि त्याग कर करते हैं या शादी न करवाकर किसी आश्रम में सेवा करता है, यह भी कर्म योगी ही कहलाते हैं।

॥ कर्म सन्यासी से कर्म योगी उत्तम हैं ॥

भावार्थ : उपरोक्त श्लोक 2 का भावार्थ है कि तत्त्वदर्शी सन्त के अभाव से जो शास्त्र विरुद्ध साधक हैं वे दो प्रकार के हैं, एक तो कर्म सन्यासी, दूसरे कर्म योगी। दोनों की साधना अमंगलकारी तथा न करने वाली अर्थात् व्यर्थ हैं क्योंकि गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में कहा है कि शास्त्रविधि त्याग कर जो मनमाना आचरण अर्थात् पूजा करते हैं उनको लाभ नहीं होता श्लोक 24 में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए जो साधना त्यागने की है अर्थात् न करने वाली है तथा जो करने वाली है उनके लिए शास्त्रों को ही प्रमाण मानना। शास्त्रों का यथार्थ ज्ञान तत्त्वदर्शी सन्त बताता है उसी से प्राप्त करके भक्ति करना लाभदायक है (प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13)। फिर भी इन उपरोक्त शास्त्र विरुद्ध दोनों साधकों में कर्मसन्यासी से कर्मयोगी अच्छा है, क्योंकि कर्मयोगी जो शास्त्र विधि रहित साधना करता है, उसे जब कोई तत्त्वदर्शी संत का सतसंग प्राप्त हो जायेगा तो वह तुरन्त अपनी शास्त्र विरुद्ध पूजा को त्याग कर शास्त्र अनुकूल साधना पर लग कर आत्म कल्याण करवा लेता है। परन्तु कर्म सन्यासी दोनों ही प्रकार के हठ योगी घर पर रहते हुए भी, जो कान-आंखें बन्द करके एक स्थान पर बैठ कर हठयोग करने वाले तथा घर त्याग कर उपरोक्त हठ योग करने वाले तत्त्वदर्शी संत के ज्ञान को मानवश स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उन्हें अपने त्याग तथा हठयोग से प्राप्त सिद्धियों का अभिमान हो जाता है तथा गृह त्याग का भी अभिमान सत्यभक्ति प्राप्ति में बाधक होता है। करोड़ों कर्म सन्यासियों में कोई-कोई ही सत्य भक्ति स्वीकार करता है। इसलिए शास्त्र विरुद्ध कर्म सन्यासी साधक से शास्त्र विरुद्ध कर्मयोगी साधक ही अच्छा है। प्रकार सन्यास लेकर किसी आश्रम में रह कर शास्त्र विधि अनुसार साधना लेकर आश्रम में रहने वाले कामचोर से तो कर्मयोगी अच्छा है। क्योंकि सन्यास धारण करने वाले को अपने सन्यास का अभिमान हो जाता है। यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र में लिखा है कि ब्रह्म

साधना वेदों में वर्णित विधि से करता है वह मर्यादा में नहीं रहता है तो वह आत्माघाती है-----?

सार :- अध्याय 5 के श्लोक 2 में वर्णन है कि कर्म सन्यास (घर छोड़कर जाने वाले साधक) से कर्मयोग (घर पर बाल-बच्चों सहित रहते हुए या विवाह न करवा कर सांसारिक कार्य करता हुआ घर या आश्रम में रहने वाले साधक) श्रेष्ठ हैं। उदाहरण के लिए राजा अम्ब्रीस, राजा जनक, परम पूज्य कबीर साहिब जी (कविर्देव पूर्ण परमात्मा होते हुए भी लीला करके यही सिद्ध कर रहे हैं कि जैसे मैं साधना कर रहा हूँ यही श्रेष्ठ है), संत गरीबदास साहेब जी महाराज, श्री नानक देव जी, संत नामदेव जी, संत रविदास जी आदि-2 सन्त व परमेश्वर कर्मयोगी थे साथ में यह भी कहा कि यदि साधना ठीक है तो चाहे घर रहो या बाहर आश्रम आदि में दोनों ही बराबर उपलब्धि प्राप्त करेंगे। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 46 में कहा है कि चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र) के व्यक्ति भी अपने स्वभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धी अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परम सिद्धी के विषय में स्पष्ट किया है श्लोक 46 में कि जिस परमात्मा परमेश्वर से सर्व प्राणियों की उत्पत्ति हुई है जिस से यह समस्त संसार व्याप्त है, उस परमेश्वर कि अपने-2 स्वभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धी को प्राप्त हो जाता है अर्थात् कर्म करता हुआ सत्य साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। अध्याय 18 श्लोक 47 में स्पष्ट किया है कि शास्त्र विरुद्ध साधना करने वाले (कर्म सन्यास) से अपना शास्त्र विधी अनुसार (कर्म करते हुए) साधना करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने कर्म करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कर्म सन्यास करके हठ करना पाप है। श्लोक 48 में स्पष्ट किया है कि अपने स्वाभाविक कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए चाहे उसमें कुछ पाप भी नजर आता है। जैसे खेती करने में जीव मरते हैं आदि-2।

गरीब, डेरे डांडे खुश रहो, खुशारे लहे न मोक्ष। धू प्रहलाद उधर गए, तो डेरे में क्या दोष॥ गरीब, केले की कोपीन है, फूल पान फल खाहीं। नर का मुख नहीं देखते, बस्ती निकट न जाहीं॥ गरीब, वो जंगल के रोज हैं, मनुष्यों बिदके जाहीं। निश दिन फिरें उजाड़ में, साहिब पावे नाहीं॥

जो कर्म सन्यासी घर त्याग कर जंगल में चले जाते हैं तथा निःवस्त्र होकर केवल केले के पत्ते की कोपीन (लंगोट) बना कर फल-फूल व पत्तों का आहार करते हैं, नगर में नहीं जाते हैं, मनुष्यों के दर्शन भी नहीं करते हैं, जंगल में गुफा बनाकर या झाड़-बोझड़ों में अपना सारा जीवन बिताते हैं, यदि उनकी साधना शास्त्र विधि अनुसार नहीं है तो वे परमात्मा प्राप्ति नहीं कर सकते। क्योंकि वे तो जंगली जानवर रोज के समान हैं। जंगल में गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास से परेशानी तथा दुःख व जंगली हिंसक जानवरों का भय बना रहता है। भक्ति तो तब हो सकती है जब गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास का समय पर समाधान हो जाए। यह सुविधा जंगल में कर्म सन्यासी को प्राप्त नहीं हो सकती। फिर उन्हें अपने त्याग का अभिमान हो जाता है उस कारण वह भक्ति हीन हो जाता है।

कबीर, मन के मारे बन गए, बन तज बस्ती मांह। कहैं कबीर मैं क्या करूँ, मन तो मानै नांह॥

॥ श्रंगी ऋषि जैसे कर्मसन्यासी भी असफल रहे ॥

एक समय श्रंगी ऋषि कर्म सन्यासी बन कर वर्षों तक जंगल में चले गए। फिर कुछ समय जंगल में भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी से बचने के लिए कठिन हठयोग अभ्यास किया। निराहार प्राण-अपान वायु को वश करके समाधिस्थ हो जाना जिससे शरीर को गर्मी-सर्दी कम लगती है। जैसे 'ओ३म' मन्त्र (जो वेदों व गीता में ब्रह्म उपासना का सही नाम है) के जाप को करते हुए समाधी प्राप्त करना, शास्त्र विधि रहित मनमाना आचरण करने वालों का ध्यान यज्ञ कहलाता है।

यज्ञ का प्रतिफल स्वर्ग या राज प्राप्ति तथा फिर चौरासी लाख योनियों में कष्ट उठाना। क्योंकि ध्यान यज्ञ करने के लिए बैठा रहना होता है। फिर वह बैठना तप बन जाता है। ओ३म मन्त्र से उपलब्धि :-सिद्धियाँ व स्वर्ग प्राप्ति।

गरीब, ओंकार ईश्वरी माया, जिन ब्रह्मा विष्णु महेश भ्रमाया।

गरीब, ओ३म आनंदी लहर है रंग होरी हो। सोहं मुक्ता सिंध राम रंग होरी हो।

तप से राज प्राप्ति। फिर दोनों को भोगकर नरक व चौरासी लाख योनियों में कष्ट सदा बना रहता है। क्योंकि प्राणायाम द्वारा स्वांस छोटा करके ध्यान (Meditation) से समाधी लगती है। उसमें स्वांस रोकने से वायु के कीटाणु जो स्वांस रूकने से मर जाते हैं उनका पाप अभ्यासी को भोगना पड़ता है। क्योंकि तीन लोक व ब्रह्म तक की साधना में जैसे कर्म प्राणी करता है सर्व भोग्य होते हैं। पुण्य स्वर्ग में और पाप नरक व चौरासी लाख जूनियों में भोगना पड़ता है। इसके विपरीत प्रभु के द्वारा दिए भक्ति साधन के मत (सिद्धान्त) के विरुद्ध साधना करने से दोष लगता है, प्रभु की आज्ञा की अवहेलना करने के कारण वह पाप और भयंकर होता है। श्रंगी ऋषि जी ने स्वांस रोक कर तथा अल्प आहार करने का अभ्यास कर लिया। वे वृक्ष की ओर मुख करके साधना करते तथा सारा दिन में एक बार वृक्ष की छाल पर जिह्वा से चाटते थे। बस यह आहार था। फिर कुछ वर्षों के बाद अयोध्या के बाहर नजदीक ही जंगल में आकर बैठ गए तथा अपनी साधना का प्रदर्शन करने लगे। अयोध्यावासियों के लिए एक विशेष चर्चा तथा आकर्षण का कारण बन गए।

एक दिन राजा दशरथ की लड़की शांता भी अपने पिता से आज्ञा लेकर ऋषि के दर्शनार्थ गईं। वह श्रंगी ऋषि के स्वरूप को देख कर आसक्त हो गईं। फिर उसको उठाने का प्रयत्न करने लगीं। किसी ने बताया कि जहाँ यह जिह्वा से छाल को चाटता है वहाँ कुछ शहद लगा दो तथा साथ में खाना ले जाना। जब यह आँखें खोले तो इसे खाना खिलाना। फिर यह ज्यादा समाधिस्थ नहीं हो पाएगा। ऐसा ही किया। ऋषि जी ने शहद के लगने से आनन्द आया तथा कई बार छाल को चाटा। दूसरे दिन आँखें खोली तथा खीर खाई। फिर राजा दशरथ श्रंगी ऋषि को पहुँचा हुआ योगी मान कर घर ले गया तथा गुरु बनाया। पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की, तब श्रंगी ऋषि ने एक पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने की सलाह दी। दिन निश्चित हुआ। उसी दौरान श्रंगी ऋषि से शांता का प्रेम सम्बन्ध हो गया। परंतु राजा दशरथ ने मना कर दिया कि हम क्षत्री हैं, यह ब्राह्मण है, इसलिए विवाह असंभव है। परंतु शांता नहीं मानी तथा ऋषि से प्रेम विवाह करके दोनों दूर चले गए। इसका प्रमाण श्री तुलसीदास कृत रामायण के बाल काण्ड 'रामकलेवा' में (पृष्ठ नं. 274) में निम्न साखियों में है।

बोली सिद्धि सुनहु रघुनन्दन तुम हमार नन्दोई। एक बात तुम सौ हम पूछें लला न राखहु गोई॥
होत ब्याह सम्बन्ध सबन कौ अपनी ही जातिहि माही। निज बहिनी श्रंगी ऋषि को तुम कैसे दियौ विवाही॥
की उनको मुनीश लै भाग्यौ की बोई संग लागी। ऐसी बात बतावहु लालन तुम रघुवंश अदागी॥

यहां पर आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज कहते हैं पूर्ण परमात्मा की सही साधना न मिलने से यह प्राणी समझ लेता है मैं ठीक कर रहा हूँ। परंतु प्रतिफल गलत होता है।

गरीब, डींभ करै डूंगर चढें, अंतर झीनी झूल। जग जाने बंदगी करे, बोवै शूल बबूल॥

गरीब, जैसे चंदन शर्प लिपटाई। शीतल तन भया विष नहीं जाई॥

सतनाम व सारनाम की भक्ति (कमाई) बिना अन्य साधना पूज्य परमेश्वर कविदेव (कबीर प्रभु) के बताए अनुसार आदरणीय गरीबदास साहेब जी ने ऐसी बताई जैसे सर्प गर्मियों में चन्दन के वृक्ष से चिपक जाते हैं। उन्हें महसूस होता है कि हमें शांति मिल रही है परन्तु उनका विष कम नहीं हो रहा है जिसके कारण उन्हें गर्मी तथा बेचैनी-भय बना रहता है।

इसी प्रकार साधक चाहे ब्रह्म (काल) उपासना कितनी ही करें उनके विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अंहकार) कम नहीं होते जो उनके दुःख का कारण है। इसलिए कर्म सन्यासी से कर्मयोगी उत्तम है।

॥ वेदों में वर्णित साधना से विकार रहित नहीं होते ॥

अध्याय 5 के श्लोक 7 का भाव है कि जो व्यक्ति आत्म तत्त्व में आ जाता है वह विचार करता है कि बुराई नहीं करनी चाहिए, उसके लिए मन को वश करने की कोशिश करता है उसने मान लिया कि मन वश कर लिया वह पवित्र आत्मा बुरे कर्म न करने की कोशिश करता है परंतु ब्रह्म साधना से मन काबू नहीं हो सकता। जैसे :-

श्री नारद जी ने कई वर्षों तक जंगल में जाकर (कर्म सन्यास लेकर) साधना की तथा मान लिया कि अब मैंने मन व इन्द्रियों पर काबू पा लिया है।

॥ नारद जी की कहानी ॥

एक दिन नारद जी ने अपने पिता ब्रह्मा को कहा कि पिता जी मैंने वर्षों तक घोर साधना करके मन व इन्द्रियों का दमन कर लिया है। अब योग युक्त हो गया हूँ। तब ब्रह्मा ने कहा यह बात अपने मन में रखना। किसी को मत कहना, विशेष कर अपने चाचा विष्णु जी को तो बिल्कुल न बताना।

नारद जी ने सोचा पिता जी मेरी उपलब्धि पर विश्वास नहीं करते कि मैं पूर्ण तरह विकार रहित हो चुका हूँ। नारद जी एक दिन चलते-2 विष्णु लोक में पहुँच गए। विष्णु जी ने पूछा ऋषिवर कई वर्षों बाद दर्शन दिए, दूज का चाँद बन गए। कुशल मंगल तो है? तब नारद जी ने बताया कि भगवान! मैं वर्षों तक जंगल में (कर्म सन्यास लेकर) साधना करके आया हूँ। मैंने अपने मन व इन्द्रियों का दमन कर लिया है। अब मैं इनके वश नहीं रहा। इस पर विष्णु जी ने कहा बहुत अच्छा किया। ऋषियों का यह प्रथम कार्य होता है कि अपने मन व इन्द्रियों को वश करें। काल (ज्योति निरंजन) की प्रेरणा वश होकर भगवान विष्णु को ख्याल आया कि इसे अभिमान हो गया है (काल भगवान को चिंता बनी रहती है कि कहीं ये ऋषि लोग साधना करके उत्पादन कम न कर दें। काल भगवान दोनों तरफ खेलता है। एक तरफ तो नारद जी को अभिमान वश विष्णु जी के पास भेजा। फिर स्वयं विष्णु को वही काल प्रेरणा देता है) इसका मान भंग किया जाए तथा फिर योजना बनवाई। (यह सब काल ज्योति निरंजन-महाविष्णु खेल खेलता है।) विष्णु जी ने माया से एक सुन्दर नगर बनवाया। उसमें राजा की लड़की का स्वयंवर रचा। नारद जी विष्णु जी से विदा ले कर चले जा रहे थे। उस नगरी में विशेष चहल-पहल देखी। फिर पूछा कि आज इस नगरी में इतनी सौन्दर्य (चहल-पहल) कैसे है? पता चला कि यहाँ के राजा की लड़की अपना मन पसंद वर वरेगी। दूर-दूर से युवराज (नवजवान राजा) आए हैं। लड़की, क्या बात है? मानो स्वर्ग से परी उतर आई हो। पृथ्वी पर ऐसी लड़की नहीं होगी। जो इसको पाएगा भाग्यशाली होगा।

उसी समय विवाह के गीतों से व काल प्रेरणा से कामदेव जाग उठा। (भूभल में आग, राख में दबी हुई अग्नि को जब छेड़ा जाता है वह अत्यधिक धधकता हुआ अंगारा होता है) ठीक उसी प्रकार कामदेव (सैक्स) इतना प्रबल हुआ कि नारद जी ने ज्ञान हीन होकर केवल पत्नी प्राप्ति का यत्न सोचा। विचार किया कि मेरे इस रूप को लड़की पसंद नहीं करेगी। क्यों न विष्णु जी से उनका रूप मांग लूं। लड़की देखते ही पसंद करेगी। एकांत स्थान पर जा कर विष्णु जी को सुमरण किया, उसी समय भगवान विष्णु जी ने प्रकट होकर याद करने का कारण पूछा। नारद ने सर्व विवरण बता

कर कहा कि हे भगवन! आजतक इस दास ने आप से कुछ नहीं माँगा है। आज कुछ माँगना चाहता हूँ, मना मत करना। विष्णु जी ने कहा माँगो, ऋषिवर। नारद ने कहा वचन बद्ध हो जाओ, तब माँगू। भगवान बोले माँगो। नारद जी बोले मुझे हरि रूप चाहिए। मैंने विवाह नहीं कराना है। इस पर भगवान विष्णु 'तथास्तु' कह कर चले गए। हरि नाम बन्दर का भी होता है। नारद जी का मुख बन्दर का बन गया। ऋषि जी अपने मन में अति प्रसन्न चित्त से स्वयंवर स्थल की ओर चला तथा पहुँच कर आसन पर विराजमान हुआ। लड़की हाथ में वरमाला लिए सर्व राजाओं को ध्यान व अदा से देखती हुई चली आ रही है। वह नारद जी को छोड़ कर आगे चली गई। नारद जी वहाँ से यह सोचते हुए उठ कर अगली खाली कुर्सी पर जा बैठा कि शायद लड़की ने मेरी ओर ध्यान नहीं दिया नहीं तो मुझे देखते ही वरमाला डाल देती। लड़की फिर नारद जी को छोड़ कर आगे चली जाती है। नारद जी ने सोचा यह लड़की अंधी तो नहीं है। फिर आगे जाकर खाली कुर्सी (आसन) पर बैठ गया। जब नारद के पास लड़की आई तो नारद जी खड़ा हो गया और सोचा कि अब तो अवश्य ध्यान पड़ेगा। लड़की दो कदम पीछे होकर आगे चल पड़ी। नारद ने सोचा कि क्या कमाल है? इतने में एक राजकुमार ने नारद जी को दर्पण दिखाया। उसमें अपने कुरूप (वानर रूप) को देखकर विष्णु जी को छलिया कहा तथा सामने क्या देखता है कि स्वयं विष्णु जी आकर एक सिंहासन पर विराजमान हो जाते हैं और लड़की उनके गले में वरमाला डाल देती है। तब नारद जी के क्रोध की सीमा न रही तथा शाप दे दिया कि जैसे मैं आज पत्नी के वियोग में तड़फ रहा हूँ ऐसे ही आप भी एक पूरा जीवन पत्नी के वियोग में बिताओगे। जिसके शाप वश विष्णु जी ने श्री रामचन्द्र जी के रूप में राजा दशरथ के यहां जन्म लिया, फिर सीता से विवाह तथा तुरंत ही वनवास, फिर वन से सीता हरण, फिर लड़ाई करके रावण को मार कर सीता जी की अग्नि परीक्षा लेकर अयोध्या आए, फिर एक धोबी के कहने से सीता को घर से निकालना तथा अंत तक सीता व राम का मिलन न होना नारद जी के शाप का परिणाम है।

यहां यह काल स्वयं जीव को विवश करके कर्म करवाता है तथा उसके भोग का भागी उसे ही बनाता है। जैसे श्री विष्णु जी को प्रेरित करके श्री नारद जी को बन्दर का मुख लगाना, फिर उसके शाप का दुःख भोग विष्णु जी को मिला।

भावार्थ :- इस अध्याय 5 श्लोक 3 में शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले कर्मयोगी का विवरण है कि जो श्रद्धालु भक्त चाहे बाल-बच्चों सहित है या रहित है या किसी आश्रम में रहकर सतगुरु व संगत की सेवा में रत है। वह सर्वथा राग-द्वेष रहित होता है। वास्तव में वही सन्यासी है, वही फिर अन्य शास्त्र विरुद्ध साधकों को पूर्ण निश्चय के साथ सत्य साधना का ज्ञान बताता है।

विशेष :- अध्याय 5 के श्लोक 4 में ज्ञानयोगी व गृहस्थी दोनों की एक ही उपलब्धि बताई है। यदि कोई नादान कहता है कि ज्ञानयोगी श्रेष्ठ या गृहस्थी श्रेष्ठ है, वह पण्डित नहीं है। यदि दोनों की भक्ति शास्त्रानुकूल है तथा गुरु मर्यादा में रहते हैं तो दोनों ही सफल हैं। यदि भक्ति शास्त्र विधि अनुकूल नहीं है वह चाहे गृहस्थी है या ज्ञानयोगी दोनों ही असफल हैं। फिर भी स्वयं भगवान कह रहे हैं कि शास्त्र विधि रहित साधक कर्म सन्यासियों से कर्म योगी (गृहस्थी) उत्तम है। चूंकि कर्म सन्यास में त्याग का अभिमान होना स्वाभाविक है जो परमात्मा प्राप्ति में पूर्ण रूप से बाधक है। (अध्याय 5 के श्लोक 2 में)। अध्याय 5 के श्लोक 5 में कहा है कि ज्ञान योगी तथा कर्म योगी एक ही स्थान प्राप्त करते हैं। जिनकी साधना यदि शास्त्रानुकूल है और जो कोई ऐसा जानता है उसे सही ज्ञान है।

विशेष :- उपरोक्त अध्याय 5 श्लोक 4-5 का भावार्थ है कि कोई तो कहता है कि जिसको ज्ञान हो गया है वही शादी नहीं करवाता तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहता है और वही पार हो सकता है, वह चाहे घर रहे, चाहे किसी आश्रम में रहे। कारण वह व्यक्ति कुछ ज्ञान प्राप्त करके अन्य जिज्ञासुओं को अच्छी प्रकार उदाहरण देकर समझाने लग जाता है। तो भोली आत्माएँ समझती हैं कि यह तो बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया है। यह तो पार है, हमारा गृहस्थियों का नम्बर कहाँ है? कुछ एक कहते हैं कि बाल-बच्चों में रहता हुआ ही कल्याण को प्राप्त होता है। कारण गृहस्थ व्यक्ति दान-धर्म करता है, इसलिए श्रेष्ठ है। इसलिए कहा है कि वे तो दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले बच्चे हैं, उन्हें विद्वान मत समझो। वास्तविक ज्ञान तो पूर्ण संत जो तत्त्वदर्शी है, वही बताता है कि शास्त्र विधि अनुसार साधना गुरु मर्यादा में रहकर करने वाले उपरोक्त दोनों ही प्रकार के साधक एक जैसी ही प्राप्ति करते हैं। जो साधक इस व्याख्या को समझ जाएगा वह किसी की बातों में आकर विचलित नहीं होता। ब्रह्मचारी रहकर साधना करने वाला भक्त जो अन्य को ज्ञान बताता है, फिर उसकी कोई प्रशंसा कर रहा है कि बड़ा ज्ञानी है, क्या कहने, परन्तु तत्त्वज्ञान से परिचित गृहस्थी व ब्रह्मचारी जानता है कि ज्ञान तो सतगुरु का बताया हुआ है, ज्ञान से नहीं, नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से मुक्ति होगी। इसी प्रकार जो गृहस्थी है वह भी जानता है कि यह भक्त जी भले ही चार मंत्र व वाणी सीखे हुए है तथा अन्य इसके व्यर्थ प्रशंसक बने हैं, ये दोनों ही नादान हैं। मुक्ति तो नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से होगी, नहीं तो दोनों ही पाप के भागी व भक्तिहीन हो जायेंगे। ऐसा जो समझ चुका है वह चाहे ब्रह्मचारी है या गृहस्थी दोनों ही वास्तविकता को जानते हैं। उसी वास्तविक ज्ञान को जान कर साधना करने वाले साधक के विषय में निम्न मंत्रों का वर्णन किया है।

विशेष :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्ताओं ने जो अनुवाद गीता अध्याय 5 श्लोक 4 में लिखा है कि सन्यास और कर्मयोग दोनों द्वारा एक ही फल मिलता है यह गीता अध्याय 5 श्लोक 6 के आधार से गलत सिद्ध होता है जिस में लिखा है कि “सन्यासः अयोगतः दुःखम् आप्तुम्” शब्दार्थ है कि सन्यास मार्ग शास्त्रविरुद्ध साधना होने से दुःख का हेतु है। इसलिए योगयुक्त मुनि कर्मयोगी ब्रह्म निचिरेण अधिगच्छति। शब्दार्थ है शास्त्र अनुकूल साधक कर्मयोगी अविलम्ब परमात्मा को प्राप्त होता है। इस अध्याय 5 श्लोक 6 के अन्दर सर्व संस्य निवारण हो गए कि गीता अनुवाद कर्ताओं ने अनुवाद यथोचित नहीं किया। इस के अतिरिक्त अध्याय 5 श्लोक 2 में भी स्पष्ट किया है कि सन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है। इस कारण से भी अध्याय 5 श्लोक 4 का अनुवाद गलत किया है। गीता अध्याय 5 श्लोक 5 में सांख्ययोग का अर्थ तत्त्वज्ञान आधार से साधना करना है न कि सन्यास मार्ग से इसलिए मेरे द्वारा (रामपाल दास द्वारा) किया गया अनुवाद श्रेष्ठ है।

गीता अध्याय 5 श्लोक 6 का भावार्थ है कि जो सन्यास मार्ग से शास्त्र विधि त्याग कर साधना करते हैं वे चाहे ब्रह्म की साधना करते हैं, चाहे निम्न देवताओं की वे तो दुःख ही प्राप्त करते हैं। कर्मयोगी शीघ्र परमात्मा प्राप्त करते हैं।

“कर्म सन्यासी को त्याग अभिमान हो जाता है”

गीता जी अध्याय 5 श्लोक 7 में स्पष्ट किया है कि उपरोक्त दोनों प्रकार के सन्यासियों (कर्मसन्यास वाले) को अपने त्याग व साधना का अभिमान बने बिना नहीं रहता। अभिमान भगवान के मार्ग में पूरा बाधक है अर्थात् अभिमानी व्यक्ति की सर्व साधना पूजा निष्फल हो जाती है, परमात्मा प्राप्ति नहीं होती। गीता जी के अध्याय 5 के श्लोक 2 में कहा है कि कर्मसन्यास से

कर्मयोग श्रेष्ठ है।

प्रमाण : ध्रुव, प्रह्लाद, राजा अम्ब्रीस, राजा जनक शास्त्र विधि रहित गृहस्थी कर्मयोगी थे, श्री नानक जी, संत रविदास, संत गरीबदास साहेब जी शास्त्र अनुकूल साधना करने वाले गृहस्थी (कर्मयोगी) थे, कर्मयोगी में अभिमान नहीं हो पाता है। वह अपने अशुभ से डरता रहता है और संतों का आदर करता है।

।। सुखदेव ऋषि की कथा ।।

प्रमाण :- 1 सुखदेव ऋषि कर्म सन्यास लेकर साधना करता था। पिछले भजन के प्रताप से उसमें आकाश में उड़ जाने की सिद्धि भी थी, जिससे उसमें मान बहुत हो गया था। अपने समान साधक (योगी) किसी को नहीं मानता था। गृहस्थियों को हेय समझता था और उनके द्वारा की जा रही साधना को गलत तथा मुक्ति न मिलने वाली मानता था। चूंकि आकाश में उड़ जाने की सिद्धि प्राप्त करके यह मान लिया था कि मेरे जैसी उपलब्धि किसी को नहीं है। मैं सबसे श्रेष्ठ योगी हूँ। सर्व देवगण (इन्द्र लोक के) उन्हें पहुँचा हुआ ऋषि मान कर विशेष आदर करते थे। यहाँ तक कि एक बार सुखदेव के पास एक सुन्दर उर्वसी आई। तब सुखदेव ने उसे छुआ तक नहीं। वह अपसरा हार कर चली गई थी। इससे ऋषि सुखदेव को अभिमान हो जाना स्वाभाविक था। वह तीनों लोकों में उड़ कर चला जाता था। इसी विषय में सन्त गरीबदास जी महाराज ने कहा है :-

गोरख से ज्ञानी घने, सुखदेव जती जिहान।

सीता सी बहुत भार्या, सन्त दूर अस्थान ।।

एक दिन सुखदेव जी श्री विष्णु जी के लोक में पहुँच गए तथा वहाँ के स्वर्ग (रेस्टोरेंट) में रहना चाहा। इस पर पहरेदारों ने पूछा आपके पूज्य गुरुदेव कौन हैं? कृपया उनका शुभ नाम बताईए ताकि हम अपनी सूची (जिसमें उस समय के मान्यता प्राप्त गुरुओं के नाम लिखे हैं) में उनका नाम देखेंगे कि वे उपदेश देने के अधिकारी भी हैं या नहीं। इस पर ऋषि जी ने कहा कि मैंने कोई गुरु नहीं बनाया और न ही आवश्यकता समझी। चूंकी जो गुरु बनाए बैठे हैं वे दो फुट भी जमीन से हिल नहीं सकते और मैं यहाँ तक पहुँच आया हूँ। गुरु की क्या आवश्यकता है? सुखदेव जी कहते जा रहे हैं। इस पर स्वर्ग के पहरेदारों ने बताया कि हम आपको अन्दर नहीं जाने देंगे। यह भगवान विष्णु का आदेश है कि गुरु विहीन प्राणी स्वर्ग में नहीं रह सकता। यह सुन कर ऋषि सुखदेव ने सोचा कि यह नादान प्राणी (पहरेदार) मेरी महिमा से परिचित नहीं है। कहा कि मुझे भगवान विष्णु से मिलाओ, नहीं तो मैं वापिस नहीं जाऊँगा। एक पारखद (स्वर्ग के सेवक) ने भगवान विष्णु को सारा वृत्तान्त सुनाया। तब भगवान विष्णु अपने महल से बाहर आए और सुखदेव से पूछा ऋषि जी क्या करने आए? इस पर सुखदेव ऋषि ने प्रणाम करके कहा स्वामी मैं स्वर्ग में रहने की इच्छा से आया हूँ। मुझे आपके अनुचर प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। भगवान विष्णु सर्व जानते हुए भी पूछते हैं क्यों सेवकों (पारखदों) क्या बात है? ऋषि जी को किस लिए रोका है? इस पर सेवक (पारखद) बोले परवरदिगार! ऋषि गुरु विहीन हैं। इन्होंने कोई गुरु नहीं बना रखा। आपकी आज्ञा है कि बिना गुरु वाले साधक को स्वर्ग में प्रवेश मना है, रहना तो बहुत दूर है। पारखद के मुख से यह बात सुनकर श्री विष्णु जी ने प्रश्नात्मक पूछा क्या ऋषि जी आप गुरु विहीन हो? आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा -आपने गुरु नहीं बना रखा? यह सुनकर सुखदेव ने कहा! नहीं। तब विष्णु जी ने कहा आप गुरु बनाओ फिर उनके बताए अनुसार साधना कर व मर्यादावत रह कर फिर अपनी कमाई करके स्वर्ग में आना। तब सुखदेव ने कहा भगवन! पृथ्वी पर मेरे समान कोई संत दिखाई

नहीं देता। इस पर भगवान विष्णु जी ने कहा राजा जनक से नाम लो।

कबीर, गुरु को किए बिना, लागा हरि की सेव। कह कबीर बैकुण्ठ से फेर दिया सुखदेव॥

विष्णु जी के मुख से यह बात सुन कर स्वर्ग (इन्द्र लोक) में आया। उस दिन सुखदेव जी का चेहरा उतरा हुआ था। पहले जैसी रोनक (तेज) नहीं थी। सुखदेव जी के चेहरे पर निराशाजनक चिन्ह देखकर स्वर्ग में रहने वाले देवों ने पूछा क्या कारण है ऋषि जी? आज आपका चेहरा उतरा हुआ है। तब सुखदेव जी ने अपनी सारी कहानी सुनाई कि मैं विष्णु लोक में गया था तथा वहां स्वर्ग में रहने की प्रार्थना की तो भगवान ने मना कर दिया। यह सुनकर सर्व देवगण कहने लगे भगवान विष्णु ऐसे तो नहीं करते। वे तो ऋषियों के देखते ही हर्षित होते हैं तथा सीने से लगाते हैं सही कारण बताओ क्या गलती बनी है? सुखदेव ने कहा भगवान बोले आपने गुरु नहीं बना रखा। पहले गुरु बनाईए, फिर गुरु द्वारा प्राप्त उस नाम की कमाई करके यहाँ आ सकते हैं। सर्व उपस्थित देव एक स्वर से आश्चर्य जताते हुए बोले क्या? आपका कोई गुरु नहीं है? इस पर सुखदेव कुछ नहीं बोला। देवों ने कहा यह तो आप की सरा-सर नादानगी है। हम तो आपको एक अच्छा पहुँचा हुआ संत मानते थे। आप तो नादानों के भी नादान निकले। आप अति शीघ्र गुरु बनाएँ, नहीं तो चौरासी लाख जूनियों तैयार हैं। यह पिछले तप पुण्यों की शक्ति (सिद्धि) आपके पास है जिसके आधार पर आप आकाश में उड़ जाते हो। यह बैट्टी जिस दिन डिस्चार्ज हो जाएगी उस दिन आपकी पिछली सिद्धि शक्ति समाप्त हो जाएगी। चूंकि आपकी नई कमाई (साधना) शास्त्र विरुद्ध होने से नहीं बन पा रही है। इसलिए आप नरक के भागी होवोगे और उसके बाद लख चौरासी योनियों में कष्ट पर कष्ट पावोगे। ये सब नेक सलाह देवों के मुखसे सुनकर सुखदेव जी बोले कि मेरे जैसा बाल ब्रह्मचारी, वैरागी संत पृथ्वी पर नजर नहीं आता है जिससे उपदेश लेने से आत्म कल्याण हो सके तथा विष्णु जी ने सलाह दी है कि राजा जनक से नाम (उपदेश मन्त्र) ले लो। सुखदेव ने कहा - हे देवताओ! आप ही बताओ उस गृहस्थी व्यक्ति को जिसने दस हजार रानियाँ रखी हैं कैसे प्रणाम करूँ? मैं बाल ब्रह्मचारी तथा स्त्री का मुख भी नहीं देखा है। महाराज गरीबदास जी छुड़ानी वाले की वाणी से - सुखदेव बोला --

कैसे शीश नवाऊँ जाई, जनक विदेही राजा भाई॥

सुखदेव बोले शब्द विवेका, हमने स्त्री का मुख नहीं देखा॥

सर्व उपस्थित देवों ने कहा सुखदेव जब भगवान ने स्वयं आपको राजा जनक को गुरु बनाने को कहा है तो फिर विलम्ब किसलिए कर रहे हो। जीवों के पालनकर्ता, दुःखी जीवों के दुःख में दुःखी होने वाले भगवान का कोई स्वार्थ थोड़ा ही है। जल्दी जा कर राजा जनक से नाम ले लो। आपका कल्याण हो जाएगा। इसके बाद ऋषि सुखदेव जी अपने पिता श्री वेदव्यास जी के पास गए तथा सर्व बीती बात कह सुनाई। तब शास्त्रों के ज्ञाता श्री भगवान वेदव्यास जी ने कहा नादान आपने गुरु नहीं बना रखा है। यह आपकी महान गलती है। मैं तो बहुत खुश था कि मेरा पुत्र एक होनहार भगवत् प्रेमी है तथा मेरा नाम ऊँचा करेगा और अपना कल्याण करेगा। आपने तो शास्त्र विहीन योग साधना करके नरक व चौरासी लाख योनियों में जाने की पूरी तैयारी कर रखी है। जाओ जैसे भगवान ने सलाह दी है वैसे ही अति शीघ्र करो। राजा जनक को गुरु धारण करके स्वर्ग प्राप्ति के अधिकारी बनो। कबीर साहेब (पूर्ण ब्रह्म) कहते हैं कि -

कबीर, गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान। गुरु बिन दोनों निष्फल हैं, पूछो वेद पुरान॥

गुरु ग्रन्थ साहिब के पृष्ठ नं. 946 (सीरी राग महला पहला) से सहाभार

बिन सतगुरु सेवें जोग न होई । बिन सतगुरु भेटें मुक्ति न कोई ॥

बिन सतगुरु भेटे नाम पाईया न जाई । बिन सतगुरु भेटे महा दुःख पाई ॥

बिन सतगुरु भेटे महा गरब गुबारी । नानक बिन गुरु मुआ जन्म हारि ॥70॥

इस 70 नं. पौड़ी में स्पष्ट किया है कि बिना गुरु के कोई भक्ति पूर्ण नहीं होती तथा गुरु के बिना नाम (सतनाम) प्राप्त नहीं हो सकता और जीव का अभिमान समाप्त नहीं हो सकता। नानक जी कहते हैं कि बिना गुरु के यह प्राणी अपना जीवन हार जाता है अर्थात् व्यर्थ समाप्त कर जाता है।

फिर सुखदेव जी अपनी मनमुखी समझ को त्याग कर नाम लेने की प्रबल इच्छा से राजा जनक के पास गए।

“गरीब, माना वचन कल्पना छाडी, सुखदेव लगी लगन जद गाढी”

जब ऋषि सुखदेव राजा जनक के पास नाम लेने के उद्देश्य से पहुँचे तो उस समय राजा जनक स्नान करने की तैयारी में था। राजा जनक ने सेवकों से कहा कि हमारा अहोभाग्य है कि हमारे घर पर एक बहुत पहुँचे हुए महापुरुष योगी बाल ब्रह्मचारी महात्मा सुखदेव जी आए हैं। ऊँचा आसन स्वच्छ वस्त्र बिछा कर लगाओ। अनुचरों ने ऐसा ही किया। राजा जनक ने सुखदेव से कहा विराजो ऋषिवर! सुखदेव जी ने कहा कि मैं नीचे बैठूंगा। मैं आपको गुरु बनाने आया हूँ। मेरा उद्धार करो संत जी। सुखदेव के मुख से यह बात सुनकर राजा जनक ने कहा ऋषिवर क्यों उपहास करते हो? आप एक स्वयं सिद्ध पुरुष एक भिखारी से नाम दान की कह रहे हो। इस बात को सुनकर सुखदेव जी ने अपनी आप बीती बताई तथा कहा कि भगवान विष्णु जी ने भी आपको गुरु बनाने के लिए मुझे आदेश दिया है।

तब राजा जनक ने कहा सुखदेव जी मैं स्नान कर लेता हूँ। फिर आपको उपदेश दूँगा। राजा जनक ने अपनी पटरानी (मुख्य स्त्री) को कहा कि मेरे नहाने का पानी गर्म करो। रानी ने नौकरों से कह कर वहीं पर ईंटों का एक बड़ा चूल्हा बनवाया तथा उस पर बड़ा पतीला रखकर पानी को गर्म करने के लिए लकड़ी जला दी। जब पानी उबलने लगा तो स्नान करने के लिए एक पटड़ा (लकड़ी की बड़ी चौकी) उबलते हुए पतीले के पास ही डाल दिया। उबलते हुए पानी के पतीले से लोटा भर कर राजा जनक के सिर पर डालकर पटरानी स्वयं अपने हाथों से स्नान कराने लगी। यह देख कर सुखदेव जी ने आश्चर्य हुआ कि इतने उबलते हुए पानी से राजा व रानी का शरीर जलता नहीं? राजा ने कहा आओ बाल ब्रह्मचारी, जो पानी मेरे स्नान करने के बाद नीचे नाली में जा रहा है उसमें ऊँगली डालकर दिखा दे। यदि आपकी ऊँगली नहीं जली तो आप जती हो, नहीं तो तेरी झूठी योग साधना है। सुखदेव ने कहा मेरा तो सारा शरीर जल जाएगा। मेरे बस की बात नहीं है।

तब राजा ने हँसकर हथेली बजाई (तारी दी) कि मुझे एक नारी स्नान करवा रही है यह नहीं जल रही है। नादान सुखदेव तेरे से अच्छी साधना तो रानी की है जो घर में रह कर भक्ति करती है। तब सुखदेव का भ्रम मिटा और राजा जनक में पूरी श्रद्धा हो गई। श्री व्यास जी के पुत्र सुख देव जी ने विवाह किया तथा भक्ति की राजा जनक जी को गुरु धारण किया। यदि गुरु में पूरी आस्था नहीं होगी तो जीव भक्ति पर नहीं लग सकता। गुरु को भगवान तुल्य मानना चाहिए। तब सुखदेव जी का कल्याण हुआ और स्वर्ग प्राप्ति हुई।

प्रमाण के लिए आदरणीय गरीबदास साहेब जी महाराज की वाणी

(सतग्रन्थ साहिब पृष्ठ नं. 399 से 403 तक) :-

सुरनर मुनि गण गंधर्व ज्ञानी, सबसें ऊंचा है अभिमानी ।
 अधर विमान चलै मन रूपा, गर्भ योगेश्वर ज्ञान स्वरूपा ॥
 इन्द्रिय पांच पचीसों साधी, गर्भ योगेश्वर जोगी वादी ॥
 गरीब, बादी जोगी बाद करि, बिचर्या तीनों लोक ।
 सतगुरु जनक विदेही बिन, पावत नांही मोक्ष ॥24 ॥
 शुकदेव के तो मान घनेरा, सुरपति लुब्ध काम दल घेरा ।
 शुकदेव कल्प वृक्षकी छांहि, जनक विदेही करै गुरु नांहि ॥
 जनक बडा अक शुकदेव जोगी, दश सहंस रानी रसभोगी ।
 शुकदेव बोले ज्ञान बिवेका, हम स्त्री का मुख नहीं देखा ॥
 हम हैं गर्भ योनि सें न्यारा, ज्ञान खड्ग इन्द्रिय प्रहारा ।
 कैसे शीश नमाऊं जाई, जनक विदेही राजा भाई ॥
 पुंडरीक नारदमुनि व्यासा, ब्रह्मा विष्णु महेश उपासा ।
 आसन आदर अति अधिकारा, शुकदेव सकल मांहि शिरदारा ॥
 चौदा भुवन फिरे पलमांहि, शुकदेव सरबर दूजा नांहि ।
 सुर तेतीसों सहंस अठासी, शुकदेवकी सब करै खवासी ॥
 वसिष्ठ विश्वामित्र ज्ञानी, कागभुसंड कहो प्रवानी ॥
 गरीब, कागभुशुण्डी ध्यान धरि, भये ज पद प्रवान ।
 आधीनी अधिकार बिन, शुकदेव मूढ अज्ञान ॥25 ॥
 सनक सनंदन नारद भाई, शुकदेव ज्ञान बहुत समझाई ।
 नारद कूं झीवरगुरु कीना, कह्या ज्ञानमें हो गया हीना ॥
 बोले ब्रह्मा विष्णु महेशा, शुकदेव नांही ज्ञान प्रवेशा ।
 चीन्ह्या नहीं पुरुष अविनाशी, शुकदेव गर्भ योनिके वासी ॥
 जनक विदेह करो गुरु सोई, गर्भ योनि सें छूटो तोही ।
 जनक विदेह गर्भ से न्यारा, शुकदेव गर्भ योनि अवतारा ॥
 गर्भ योनि है मान बडाई, सो शुकदेव तुम मांहि बसाई ।
 जनक विदेही करौ दीदारा, तौ तू गर्भ योनि सें न्यारा ॥
 पिंड ब्रह्मण्ड दोऊ हैं योनी, इच्छा बीज न शुकदेव भूनी ।
 चौदा भवन फिरे पल मांही, उड्या फिरौ पंखी की नांई ॥
 गरीब, राजा जोगी जनक है, तीन लोक तत्त सार ।
 मिहर करै गुरुदेव जदि, शुकदेव उतरै पार ॥26 ॥
 मान्या बचन कल्पना छाडी, शुकदेव लगी लगनि जदि गाडी ।
 शुकदेव छाडी मान बडाई, जनक विदेह किया गुरु जाई ॥
 बोलै जनक विदेही राजा, इन्द्रिय दमन करी किस काजा ।
 ब्रह्मानंद पद मिल्या न तोकूं, ऐसैं दर्शत हैं सब मोकूं ॥
 शुकदेव सुनौ व्यास के पूता, इन्द्रिय लार लगी संजूता ।
 मन गुण इन्द्रिय कर्म न जानै, व्यास पुत्र तू ज्ञान दिवानै ॥
 इन्द्रिय कर्म लगावौ किसकै, जिह्वा लेप नहीं मधु रसकै ।
 नैन पटलमें ईसर भागा, देखे सकल रूप अनरागा ॥
 तुम खेलत कुल बनज गियाना, ईश्वर पदका नांही ध्याना ॥

जैसे चंदन सर्प लिपटाई, शीतल तन भया विष नहीं जाई ॥
 ऐसा जोग कमाया पूता, कहा हुवा जो इन्द्रिय धूता ।
 सीप मांही मोती मुक्ताहल, बाहर खारा नीर हलाहल ॥
 कुरंग मतंग पतंग भृंग संग, इन्द्रिय एक ठग्यो तिस अंगा ।
 तुमरे संग पांचौं प्रकाशा, जोग जुगति की झूठी आशा ॥
 हाड चाम तन खाल खलीती, याह शुकदेव तुम माया जीती ।
 भग सैं बिंदुबिंदुसैदेही, चीन्हा नाहीशब्द सनेही ॥
 गरीब, दीनदुनी सुमरण करे, जपै कालका नाम ।
 काल काल भक्षण करे, लख्या न अविगत धाम ॥ 30 ॥
 अगर फुलेल हमाम चढाया, राजा जनक न्हानकू धाया ।
 दस सहंसमें जो पटरानी, करे खवासी जलहर पानी ॥
 जरे अंगीठ बरे तिस नीचे, राजा रानी परिमल सींचे ।
 आवो गर्भ जोगेश्वर जोगी, हमराजा इन्द्रिय रस भोगी ॥
 जो तुमरी देह अग्नि जरि जाई, तो झूठा शुकदेव जोग कमाई ।
 मलागिर रानी तन लावै, अगर फुलेल हमाम न्हावै ॥
 राजा राणी शब्द स्वरूपा, शुकदेव परे अंध गृहकूपा ।
 जब फुलेल लगावे अंगरी, हमरी जरिहै काया सगरी ॥
 राजा बिहंसि दई जदि तारी, हम अस्नान करावे नारी ।
 करि अस्नान तखत पर आये, शुकदेव परम ज्ञान गौहराये ॥
 अकल अचित शब्द निर्मोही, शुकदेव दरशभर्म सब खोई ॥
कबीर पंथी शब्दावली (पृष्ठ नं. 440.441) से सहाभार
 सतगुरु बोलै अमृत वानी । गुरु विन मुक्ति नहीं रे प्रानी ॥
 गुरु हैं आदि अंतके दाता । गुरु है मुक्ति पदारथ भ्राता ॥
 गुरु गंगा काशी अस्थाना । चारि वेद गुरु गमते जाना ॥
 गुरु है सुरसरि निर्मल धारा । विन गुरु घटनाहि हो उजियारा ॥
 अइसठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आवे । गुरुकी दया घर बैठहि पावे ॥
 गुरु कहै सोई पुन करिये । मातु पिता दोउ कुल तरिये ॥
 गुरु पारस परसे नर लोई । लोहते कंचन होय सोई ॥
 शुकदेव के गुरु जनक बिदेही । वो भी गुरुके परम सनेही ॥
 नारद गुरु प्रह्लाद पठाये । भक्ति हेतु जिन दर्शन पाये ॥
 कागभुसंड जोगजीत गुरु कीन्हा । अगम निगम सबही कहि दीन्हा ॥
 ब्रह्मा गुरु कविरग्निको कीन्हा । होम यज्ञ जिन आज्ञा दीन्हा ॥
 वशिष्ठ गुरु किया रघुनाथा । पाए दरस तब भये सनाथा ॥
 कृष्ण गये दुर्वासा शरना । पाइ भक्ति तब तारन तरना ॥
 नारद दिच्छा झिंमर सो पायो । चौरासी सों तुरंत छुड़ायो ॥
 गुरु कहै सोई है साँचा । विन परिचय सेवक है काँचा ॥
 कहै कवीर गुरु आपु अकेला । दश औतार गुरुका चेला ॥
 साखी — राम कृष्ण ते को बडा, उनहू तो गुरु कीन ।
 तीन लोकके वै धनी, गुरु आगे आधीन ॥
 इससे यह स्पष्ट हुआ कि शास्त्रविरुद्ध साधना निष्फल तथा धोखा है ।

अध्याय 16 का श्लोक 23

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (शास्त्रविधिम्) शास्त्रविधिको (उत्सृज्य) त्यागकर (कामकारतः) अपनी इच्छासे मनमाना (वर्तते) आचरण करता है (सः) वह (न) न (सिद्धिम्) सिद्धिको (अवाप्नोति) प्राप्त होता है (न) न (पराम्) परम (गतिम्) गतिको और (न) न (सुखम्) सुखको ही । 123 ।।

अध्याय 16 का श्लोक 24

अनुवाद : (तस्मात्) इससे (ते) तेरे लिये (इह) इस (कार्याकार्यव्यवस्थितौ) कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें (शास्त्रम्) शास्त्र ही (प्रमाणम्) प्रमाण है (एवम्) ऐसा (ज्ञात्वा) जानकर तू (शास्त्रविधानोक्तम्) शास्त्रविधिसे नियत (कर्म) कर्म ही (कर्तुम्) करने (अर्हसि) योग्य है । 124 ।।

।। राजा अम्बरीष कर्मयोगी तथा दुर्वासा ऋषि कर्म सन्यासी थे ।।

श्रीमद्भागवत सुधा सागर (पृष्ठ नं. 456,57) से सहाभार "नोवां स्कन्ध - अध्याय 4"

ब्रह्माजीने कहा - जब मेरी दो परार्थकी आयु समाप्त होगी और कालस्वरूप भगवान् अपनी यह सृष्टिलीला समेटने लगेंगे और इस जगत्को जलाना चाहेंगे, उस समय उनके भ्रमसंगमात्रसे यह सारा संसार और मेरा यह लोक भी लीन हो जायगा । 153 ।। मैं, शंकरजी, दक्ष-भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि सब जिनके बनाये नियमोंमें बँधे हैं तथा जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमलोग संसारका हित करते हैं, (उनके भक्तके द्रोहीको बचानेके लिये हम समर्थ नहीं हैं) । 154 ।।

श्रीमहादेवजीने कहा - 'दुर्वासाजी! जिन अनन्त परमेश्वरमें ब्रह्मा-जैसे जीव और उनके उपाधिभूत कोश, इस ब्रह्माण्ड के समान ही अनेकों ब्रह्माण्ड समय पर पैदा होते और समय आनेपर फिर उनका पता भी नहीं चलता, जिनमें हमारे-जैसे हजारों चक्कर काटते रहते हैं - उन प्रभुके सम्बन्धमें हम कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते । 156 ।। मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिलदेव, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरी तथा मरीचि आदि दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर - ये हम सभी भगवान् की माया को नहीं जान सकते, क्योंकि हम उसी मायाके घेरेमें हैं । 157-58 ।।

(श्रीमद् भागवत सुधा सागर से लेख समाप्त)

इसमें ब्रह्मा स्वयं कहता है कि यह काल भगवान् है जो महाविष्णु है। शंकर जी कह रहे हैं हम सब इसी महाविष्णु (काल) के घेरे में हैं।

नोट :- प्रमाण के लिए देखें श्रीमद् भागवत सुधा सागर के नवम् (नौवां) स्कन्ध में अध्याय चौथा व पाँचवा।

राजा अम्बरीष (राजा नाभाग के पुत्र) भगवान् (महाविष्णु-काल-ज्योति निरंजन-ब्रह्म) के बहुत श्रद्धालु भक्त थे तथा श्री विष्णु जी को इष्ट मान कर साधना करते थे। एक समय उनके मन में आया कि भजन कम बनता है, इसलिए कुछ अन्न-जल संयम करूं। जिस कारण मुझे अधिक निन्द्रा आलस्य न सताए। वह निर्गुण व सर्गुण दोनों रूप से ब्रह्म की उपासना करता था। राजा ने एक नित्य नियम करना चाहा - वेदों में प्रमाण है (गीता जी में भी प्रमाण है) कि बिल्कुल न खाने वाले प्राणी की साधना सफल नहीं होती। जैसे प्रतिदिन 10 रोटियाँ खाने वाला व्यक्ति एक दिन न खाए तो भूख अधिक सताती है। भजन में ध्यान न लग कर भूख पर ध्यान बना रहता है। अत्यधिक खाना व बिल्कुल न खाना (व्रत रखना) वर्जित है। राजा अम्बरीष प्रतिदिन 10 रोटियाँ खाते थे। प्रतिदिन एक रोटि कम करनी शुरू कर दी। दसवें दिन केवल एक रोटि खाई। फिर एकादशी को पानी-2 प्रयोग किया करता था। इसका विशेष अभिप्राय यह है कि शरीर में 10 द्वार हैं। नौ तो प्रकट दिखाई देते हैं। जैसे दो आँख, दो कान, दो नाक, मुख, गुदा, लिंग और दसवाँ सुषमना प्रवेश का द्वार गुप्त है। ब्रह्मरंद्र में जाकर साधक ब्रह्मलोक (महास्वर्ग) की प्राप्ति कर लेता है।

विशेष :- सुष्मना नाड़ी का प्रवेश द्वार दसवां द्वार इसलिए कहा जाता है कि इसका प्रथम सिरा दोनों नाक छिद्रों के मध्य में है तथा यह सुष्मना नाड़ी बहुत बड़ी है, इसका अन्तिम सिरा इसी ब्रह्माण्ड के अन्तिम छोर तक जाता है। इस के बीच में भी कई छिद्र हैं। जो साधक जिस देव की साधना करता है उसी का छिद्र स्वयं खुल जाता है तथा अन्तिम छिद्र द्वारा महाशिव रूप में बैठे काल की जटा कुण्डली झील के पास खुलता है। वैसे वह बन्द रहता है। इसी प्रकार इक्कीसवाँ भी एक ब्रह्माण्ड है, वह काल लोक का अन्तिम है, वहाँ भी यही व्यवस्था है। यह कल्पना करके सर्गुण रूप से उसी ब्रह्म लोक (महास्वर्ग) महाविष्णु (काल भगवान, ज्योति निरंजन) की श्रद्धा मन में बनाए रखने के लिए अपनी याद बनाने के लिए कि जीव ब्रह्मरंद्र को पार करके ही चौथी मुक्ति प्राप्त कर सकता है जो (काल साधकों ने) अति उत्तम मान रखी है तथा निर्गुण रूप में उसका ध्यान और गुरु द्वारा प्राप्त ऊँ मन्त्र का जाप कर रहे थे। (इसी को अनजान लोगों ने व्रत की संज्ञा देकर भजन त्याग कर केवल खाना न खाना ही व्रत मान रखा है, जो निषेध है)

एक दिन ऋषि दुर्वासा जो कर्म सन्यासी थे राजा अम्ब्रीष के द्वार पर आए। तब राजा ने कहा कि हे ऋषिवर! खाना खाईए, भोजन तैयार है उस पर ऋषि दुर्वासा ने कहा कि मैं स्नान ध्यान के लिए गंगा के किनारे जाता हूँ, लौट कर खाना खाऊँगा। जब ऋषि दुर्वासा स्नान ध्यान से निर्वर्त होकर आए, खाना खाया, फिर राजा से प्रार्थना की कि आप भी खाईए। इस पर राजा अम्ब्रीष ने कहा आज एकादशी है। मैं भोजन न खा कर केवल जल पान करता हूँ तथा विशेष ब्रह्म ध्यान करता हूँ। इस पर ऋषि दुर्वासा ने कहा राजन् यह व्रत तो शास्त्र विरुद्ध साधना है। आप मत किया करो तथा निर्गुण मार्ग से भजन-ध्यान की विधि बताई। राजा अम्ब्रीष ने ऋषि दुर्वासा का अनादर न करके ध्यान पूर्वक सुना तथा सोचा की कौन से दुर्वासा रोज आते हैं। न जाने मेरे अच्छे कर्म उदय हो गये हों जो आज ऐसे महान ऋषि मेरे द्वार पर आए हैं। क्यों नाराज किया, कहा - सही है-सही है। आप ठीक कह रहे हो। परंतु अपने मन से स्वीकार नहीं किया। राजा ने ऋषि के चरण छुए, दण्डवत् प्रणाम किया तथा दक्षिणा देकर विदा किया और कहा ऋषिवर इस दास को सम्भालते रहना। जल्दी ही आने की कृप्या करना।

एक दिन ऋषि दुर्वासा जी यह देखने के लिए कि राजा ने मेरी बात पर असर किया या नहीं, एकादशी वाले दिन राजा अम्ब्रीष जी के द्वार पर पहुँच गए। फिर राजा को उसी विधि से साधना करते पाया तो क्रोध वश सिद्धि छोड़ी (सुदर्शन चक्र चलाया) तथा आदेश दिया कि इस अभिमानी अम्ब्रीष का शीश काट दे। 'सुदर्शन चक्र' राजा अम्ब्रीष के पैर छूकर ऋषि दुर्वासा को मारने को उल्टा चला। ऋषि भय खाय कर भाग लिया। सुमेरु पर्वत पर छुपना चाहा। फिर भी सुदर्शन चक्र साथ ही रहा। फिर देवराज इन्द्र के पास गया और ब्रह्मा - शिव के पास से भी अपनी रक्षा न होने के बाद विष्णु लोक में भगवान विष्णु के द्वार पर जाकर उनके चरणों में गिरकर सुदर्शन चक्र से अपनी रक्षा की भीख मांगने लगा। उसी समय काल-महाविष्णु जो सर्व जीवों को नचा रहा है जिसने ब्रह्मा-विष्णु-महेश को भी नहीं बरखा अपने ब्रह्मलोक से आकर त्रिलोकिय विष्णु के शरीर में प्रवेश करके काल ने पूछा - हे ब्राह्मण! क्या गुस्ताखी की है जिसके कारण यह रिएक्सन (प्रतिक्रिया) हुआ? अर्थात् सुदर्शन चक्र आप ही को मारने पर उतारू है। सच्च-2 बताना झूठ मत बोलना। उस समय विष्णु जी की सभा में अठासी हजार ऋषि भी बैठे यह कौतुक देख रहे थे। उस समय दुर्वासा की हालत देखकर अठासी हजार ऋषियोंको हंसी आई। दुर्वासा ने सारी कहानी सुनाई कि मैंने राजा अम्ब्रीष से कहा कि आप निर्गुण साधना करो तथा एकादशी का व्रत मत करो। व्रत कोई लाभ

नहीं देता। उसने मेरी बात को महत्व नहीं दिया। तब मैंने चक्र चलाया। यह सुनकर भगवान विष्णु में प्रवेश ब्रह्म (ज्योति निरंजन) बोला कि हे ऋषिवर, राजा व्रत नहीं कर रहा था। वह केवल संयम करके ध्यान लगाता था। वह सर्गुण व निर्गुण दोनों साधना करता है। निर्गुण को अपने मन-2 में करता है। सर्गुण सब दिखाई देती है। सर्गुण उपासना में गुरु पूजा, पाठ, आरती, हवन (ज्योति) आदि आता है तथा निर्गुण में नाम साधना (अजपा जाप) मानी जाती है। किसी साधक को बलात न कह कर प्यार से समझाना चाहिए। माने उसका भला न माने उसकी इच्छा। नहीं तो परमात्मा अप्रसन्न हो जाते हैं। ऋषि जी आप जाओ और राजा अम्ब्रीष से क्षमा याचना करो। वे आपको क्षमा करेंगे तो क्षमा है, नहीं तो नहीं। यह बात सुनकर दुर्वासा जी अति भयभीत होकर कहने लगा कि हे भगवन! आपके दरबार में मेरी सुरक्षा नहीं है तो फिर कहाँ जान बचेगी? इस पर विष्णु जी ने कहा आप निःसन्देह राजा अम्ब्रीष के पास जा कर क्षमा याचना करो। वे दयालु हैं, उनमें भक्ति लक्षण हैं। जल्दी जाईए, देर मत करो। इतना सुनते ही दुर्वासा जी भागे-2 राजा अम्ब्रीष के द्वार पर जाकर उनके चरणों को पकड़ कर अपनी नादानी (गलती) की क्षमा याचना करने लगा। राजा अम्ब्रीष ने चक्र को हाथ से पकड़ कर शांत कर दिया। तब दुर्वासा ऋषि ने कहा - हे राजा! मेरी कमर पर हाथ रख दो ताकि मेरे हृदय में शांति होवे। तब राजा अम्ब्रीष ने दुर्वासा की कमर पर हाथ रखते हुए कहा कि आपकी करनी आपको हानिकारक हुई। मैंने कुछ नहीं किया। आप तो मेरे लिए अति आदरणीय तथा पूजनीय हो, परंतु ऋषि जी भक्ति के भाव से ही रहना चाहिए। भक्ति के नियमों को भंग करने वाला परमात्मा को बिल्कुल पसंद नहीं है। जैसे बिजली (विद्युत) के नंगे तार को हाथ लगाना हानिकारक है। वह विद्युत नियमों के विरुद्ध है। इस नियम को चाहे बिजली महकमें का मुख्य अधिकारी क्यों न हो वह भेद नहीं करती। इस प्रकार क्रोध करना भक्त व संत के लिए हानिकारक है। ऐसा करने से भाव भक्ति समाप्त हो जाती है। सब जीवों को ईश्वरीय जाने तथा परेशान न करें।

अध्याय 5 श्लोक 8 और 9 का भाव है कि जो भी कर्म व्यक्ति करता है वह यह सोच ले कि मैं कुछ नहीं करता। यह अनुवाद अन्य गीता जी के अनुवाद कर्ताओं ने किया है।

सार :- यदि कोई किसी की हत्या कर दे और कहे कि मैंने कुछ नहीं किया। क्या वह दोष मुक्त है? यह ज्ञान भगवान कृष्ण का नहीं ब्रह्म (काल) का है। पहले तो कर्म करवाएगा फिर भोग देता है।

अध्याय 5 श्लोक 8 व 9 का भावार्थ है कि तत्त्वज्ञान युक्त साधक सर्व कर्म करता हुआ ध्यान रखता है कि मैं कोई पाप कर्म तो नहीं कर रहा हूँ। इसलिए कहा है कि वह ज्ञान आधार से सोच समझकर सर्व कर्म करता है।

अध्याय 5 के श्लोक 10 से 13 में कहा है कि आत्म तत्व में आए साधक अर्थात् जिन्होंने पूर्ण परमात्मा का ज्ञान हुआ तथा पूर्ण गुरु से नाम ले लिया वह व्यक्ति शुभ कर्म करता है। इसलिए कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धता तथा अन्य काल (ब्रह्म) ज्ञान के आधार पर कर्म करते हैं और फिर फल भोगते हैं।

॥ प्राणी अपने स्वभाव वश चलते हैं ॥

गीता अध्याय 5 श्लोक 14,15 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा ने जब सतलोक में सृष्टि रची थी उस समय किसी को कोई कर्म आधार बना कर उत्पत्ति नहीं की थी। सत्यलोक में सुन्दर शरीर

दिया था जो कभी विनाश नहीं होता। परन्तु प्रभु ने कर्म फल का विधान अवश्य बनाया था। इसलिए सर्व प्राणी अपने स्वभाववश कर्म करके सुख व दुःख के भोगी होते हैं। जैसे हम सर्व आत्माएँ सत्यलोक में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा (सतपुरुष) द्वारा अपने मध्य से शब्द शक्ति से उत्पन्न किए। वहाँ हमें कोई कर्म नहीं करना था तथा सर्व सुख उपलब्ध थे। हम स्वयं अपने स्वभाव वश होकर ज्योति निरंजन (ब्रह्म-काल) पर आसक्त हो कर अपने सुखदाई प्रभु से विमुख हो गए। उसी का परिणाम यह निकला कि अब हम कर्म बन्धन में स्वयं ही बन्ध गए। अब जैसे कर्म करते हैं, उसी का फल निर्धारित नियमानुसार ही प्राप्त कर रहे हैं। शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से पाप क्षमा कर देता है, अन्यथा संस्कार ही वर्तता है।

नीचे के श्लोक 16 से 28 तक शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म तथा मर्यादा में रहकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं तथा पूर्ण प्रभु पाप क्षमा कर देता है। इसलिए कर्म करता हुआ ही पूर्ण मुक्त होता है।

सब स्वभाववश चलता है। कर्म तो काल (ब्रह्म) ज्योति निरंजन ने लगा रखे हैं। वही अज्ञान पैदा करके जीव को भ्रमित करता है। वास्तविक ज्ञान (पूर्ण परमात्मा का) अज्ञान (काल ज्ञान) के द्वारा दबा रखा है। जिससे अज्ञानी (जिनको पूर्णब्रह्म परमात्मा का ज्ञान नहीं) मोहित हो रहे हैं। इस अज्ञान (काल ज्ञान) को तत्त्व ज्ञान (पूर्ण परमात्मा के ज्ञान) द्वारा नष्ट करके उत्तम ज्ञान को सूर्य की तरह प्रकाशित कर दिया जाता है। जिनको पूर्ण ज्ञान हो गया वह (व्यक्ति पूर्ण संत से नाम ले लेता है तथा काल साधना त्याग देता है क्योंकि सत्यनाम से पाप कटते हैं) अपने पापों को पूर्ण ज्ञान से समझ कर सतनाम व सारनाम से काट कर एक रस होकर अविनाशी परमात्मा (पूर्णब्रह्म सतपुरुष) में स्थित हो कर जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है।

पंडित की परिभाषा

विचार करें :- अध्याय 5 के श्लोक 18 में पंडित की परिभाषा बताते हुए कहा है कि जो समदर्शी (ज्ञान योगी) ज्ञानी (पंडित) जन ब्राह्मण, गौ, कुत्ते, हाथी व चाण्डाल को एक समझता है वह जीवत मुक्ता कहलाता है तथा भगवान प्राप्ति कर (योग युक्त हो) चुका है। जो ऐसा नहीं करता वह बेसक बात बनाए चौरासी लाख योनियों का कष्ट भोगेगा तथा नरक में जाएगा। पंडित वही है जो छुआछात नहीं करता, जो चांडाल (नीच) को भी एक जैसा समझता है। सबमें परमात्मा को देखें तथा रहम करे, दुतकारे नहीं।

॥ साहेब कबीर द्वारा भैसे से वेद मन्त्र बुलवाना ॥

एक समय तोताद्रि नामक स्थान पर विद्वानों (पंडितों) का महा सम्मेलन हुआ। उसमें दूर-दूर के ब्रह्मवेत्ता, वेदों, गीता जी आदि के विशेष ज्ञाता महापुरुष आए हुए थे। उसी महासम्मेलन में वेदों और पुराणों तथा शास्त्रों व गीता जी के प्राकाण्ड ज्ञाता महर्षि स्वामी रामानन्द जी भी आमन्त्रित किए गए थे। स्वामी रामानन्द जी के साथ उनके परम शिष्य साहेब कबीर भी पहुँच गए। श्री रामानन्द जी साहेब कबीर को अपने साथ ही रखते थे। क्योंकि स्वामी रामानन्द जी जानते थे कि यह कबीर (कविर्देव) साहेब परम पुरुष हैं। इनके रहते मुझे कोई ज्ञान और सिद्धि में पराजित नहीं कर सकता। सम्मेलन में इस बात की विशेष चर्चा हो गई कि श्री रामानन्द जी के शिष्य कबीर साहेब (छोटी जाति के) जुलाहा हैं। यदि हमारे भण्डारे में भोजन करेंगे तो हम अपवित्र हो जाएंगे।



कबीर साहेब द्वारा भैसे से वेद मन्त्र बुलवाना।

हमारा धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। यदि सीधे शब्दों में मना करेंगे तो हो सकता है श्री रामानन्द जी नाराज हो जाएँ क्योंकि श्री रामानन्द जी उस समय के जाने-माने विद्वानों में से एक थे। यह सोच कर एक युक्ति निकाली कि भण्डारा दो स्थानों पर शुरु किया जाए। एक तो पंडितों के लिए, जो पंडितों (ब्राह्मणों) वाले भण्डारे में प्रवेश करे उसे चारों वेदों के एक-2 मन्त्र संस्कृत में सुनाने पड़ेंगे। ऐसा न करने वालों को दूसरे भण्डारे में जो आम संगत (साधारण व्यक्तियों) के लिए बना है में जाएंगे। क्योंकि उनका मानना था कि श्री रामानन्द जी तो विद्वान (पंडित) हैं। वेद मन्त्र सुना कर उत्तम भण्डारे में आ जाएंगे तथा साहेब कबीर (कविर्देव) ऐसा नहीं कर पाएंगे क्योंकि उन्हें वे पंडितजन अशिक्षित मानते थे। अपने आप आम (साधारण) भण्डारे में चले जाएंगे। फिर सतसंग (प्रवचन) चल रहा था। उसमें वही उपस्थित पंडित जन संगत में मीठी-2 बातें बना कर कथाएँ सुना रहे थे कि -

एक अछूत जाति की भीलनी (शबरी) परमात्मा के वियोग में वर्षों से तड़फ-2 कर राह जोह रही थी कि मेरे भगवान राम आएंगे। मैं उन्हें बेरों का भोग लगवाऊँगी। प्रतिदिन बहुत दूर तक रास्ता बुहार कर आती है। कहीं मेरे भगवान को कांटा न लग जाए। क्योंकि मेरे भगवान के पैर कोमल हैं न। मेरे भगवान राम बहुत अच्छे हैं। एक दिन वह समय भी आ गया कि भगवान श्री रामचन्द्र जी आते दिखाई दिए। भिलनी सुध-बुद्ध भूल कर श्री रामचन्द्र जी के मुख कमल की ओर बावलों की तरह निहार रही है। क्या मैं कोई स्वपन तो नहीं देख रही हूँ या सचमुच मेरे राम जी आए हैं। आँखों को मल-मल कर फिर देख रही है। श्री राम व लक्ष्मण खड़े-2 देख रहे हैं। इस पर लक्ष्मण ने कहा शबरी भगवान को बैठने के लिए भी कहेगी या ऐसे ही ठडेसरी (खड़े तपस्वी) बनाए रखेगी। तब मानो नींद से जागी हो। हड़बड़ा कर अपने सिर का फटा पुराना मैला-कुचैला चीर उतार कर एक पत्थर के टुकड़े पर बिछा दिया और कहा कि भगवन! बैठो इस पर। श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि नहीं बेटी, चीर उठाओ। यह कह कर उसका चीर उठा कर उसी के सिर पर रखना चाहा। भिलनी (शबरी) रोने लगी और रोती हुई ने कहा यह गन्दा (मैला) है न भगवान! इसलिए स्वीकार नहीं किया न। मैं कितनी अभागिन हूँ। आपके लिए उत्तम कपड़ा नहीं ला सकी। क्षमा करना भगवन। यह कह कर आँखों से अश्रुधारा बह चली। तब श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि शबरी! यह कपड़ा मेरे लिए मखमल से भी अच्छा कपड़ा है। लाओ बिछाओ! फिर भगवान उसी मैले कुचैले चीर पर विराजमान हो गए और शबरी के आँसुओं को अपने पिताम्बर से पोंछने लगे। फिर शबरी ने बेरों का भोग भगवान को लगवाया। पहले बेर को स्वयं थोड़ा सा खाती (चखती) है फिर वही बेर श्री राम को अपने हाथों से खिला रही है। भगवान श्री राम ने उस काली कलूटी, लम्बे-2 दाँतों वाली मैली कुचैली, अछूत शबरी के हाथ के झूठे बेरों का भोग रूचि-2 लगाया तथा कहा शबरी, बहुत स्वादिष्ट हैं। क्या मिलाया है इन बेरों में? शबरी ने कहा आपका प्यार मिलाया है आपकी बेटी ने। फिर लक्ष्मण को भी दिए कि खाओ बेर। लक्ष्मण ग्लानि करके श्री राम जी के भय से खाने का बहाना करके हाथ में लेकर पीछे फेंक देता है। जो बाद में द्रोणागिरी पर (शबरी के झूठे बेर) संजीवनी बूटी बन गए और लक्ष्मण के युद्ध में मूर्च्छित हो जाने पर वही बेर फिर खाने पड़े। भक्त की भावना का अनादर हानिकारक होता है।

जब आस-पास के ऋषियों को मालूम हुआ कि श्री राम आए हैं। वो हमारे यहाँ आश्रमों में अवश्य आएंगे क्योंकि हम ब्राह्मण हैं और भगवान श्री राम (क्षत्री हैं) अवश्य आएंगे। जब ऐसा नहीं हुआ तो सर्व ऋषि जन बन में साधना करने वाले (कर्मसन्यासी) श्री राम को मिले तथा कहा

भगवन! एक ही नदी है जो साथ बह रही है। उसका पानी गंदा हो गया है। कृपया इसे स्वच्छ करने की कृप्या करें। श्री राम ने कहा कि आप सर्व योगी जन बारी-2 अपना दायां पैर नदी के जल में डुबोएँ। फिर निकाल लें। सब उपस्थित ऋषियों ने ऐसा ही किया। परंतु जल निर्मल नहीं हुआ। फिर श्री राम ने उस प्रेमाभक्ति युक्त शबरी से कहा आप भी ऐसा ही करें। तब शबरी ने अपने दायां पैर नदी के जल में डाला तो उसी समय नदी का जल निर्मल हो गया। सर्व उपस्थित साधुजन शबरी की प्रशंसा करने लगे तथा शर्मिन्दा होकर श्री राम से पूछा कि प्रभु! क्या कारण है जो इस अछूत के स्पर्श मात्र से जल निर्मल हुआ जबकि हमारे से नहीं। तब श्री राम ने कहा - जो व्यक्ति परमात्मा का सच्चे प्रेम से भजन करता है तथा विकारों से रहित है वह उच्च प्राणी है। जाति ऊँची नीची नहीं होती है। आपको भक्ति साधना के साथ-2 जाति अहंकार भी है जो भक्ति का दुश्मन है। गीता जी भी यह सिद्ध करती है कि कर्मसन्यासी (गृहत्यागी) को अपने कर्तापन का अभिमान हुए बिना नहीं रहता। इसलिए कर्मयोगी (ब्रह्मचारी या गृहस्थी कार्य करते-2 साधना करने वाला) भक्त कर्म सन्यासी (गृहत्यागी) भक्तों से श्रेष्ठ हैं तथा जो पूर्ण परमात्मा की भक्ति करते हैं वो सर्वोत्तम हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि --

कबीर, पोथी पढ-2 जग मुआ, पंडित भया न कोय। अढ़ाई अक्षर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।।

प्रेम में जाति कुल का कोई अभिमान नहीं रहता है। केवल अपने महबूब का ही ध्यान बना रहता है।

(सतसंग समाप्त हुआ)

सतसंग समाप्त के पश्चात् भण्डारे का समय हुआ। दो ब्राह्मण वेदों के मन्त्र सुनने के लिए परीक्षार्थ पंडितों वाले भण्डार के द्वार पर खड़े हो गए तथा परीक्षा लेकर वेद मन्त्र सुन कर भण्डारे में प्रवेश करवा रहे थे। साहेब कबीर (कविरग्नि) भी पंक्ति में खड़े अपनी वारी का इन्तजार कर रहे थे। जब साहेब कबीर की बारी आई उसी समय एक पास में घास चर रहे भैंसे को साहेब कबीर ने पुकारा - ऐ भैंसा! कृप्या इधर आना। इतना कहना था कि भैंसा दौड़ा-2 आया तथा साहेब कबीर के चरणों में शीश झुका कर अगले आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। तब कविर्देव ने उस भैंसे की कमर पर हाथ रखकर कहा कि - हे भैंसा! चारों वेदों का एक-2 श्लोक सुनाओ! उसी समय भैंसे ने शुद्ध संस्कृत भाषा में चारों वेदों के एक-2 मन्त्र कह सुनाए। साहेब कबीर ने कहा - भैंसा इन श्लोकों का हिन्दी अनुवाद भी करो, कहीं पंडित जन यह न सोच बैठें कि भैंसा हिन्दी नहीं जानता। भैंसे ने साहेब कबीर की शक्ति से चारों वेदों के एक-2 मन्त्र का हिन्दी अनुवाद भी कर दिया। कबीर साहेब ने कहा - जाओ भैंसा पंडित! इन उत्तम जनों के भण्डारे में भोजन पाओ। मैं तो उस साधारण भण्डारे में प्रसाद पाऊँगा। कबीर साहेब जी की यह लीला देखकर सैकड़ों कथित पंडितों ने नाम लिया तथा आत्म कल्याण करवाया और अपनी भूल का पश्चाताप किया। साहेब कबीर ने कहा नादानों कथा सुना रहे थे शबरी और श्री राम की, आप समझे नहीं। अपने आप को उच्च समझ कर भक्त आत्माओं का अनादर करते हो। यह आप भक्तों का अनादर नहीं बल्कि भगवान का अनादर करते हो। जो गीता जी में कहते हैं कि अर्जुन कोई व्यक्ति कितना ही दुराचारी हो यदि वह भगवत विश्वासी है, साधु समान मान्य है।

अध्याय 9 का श्लोक 30

अनुवाद : (चेत्) यदि कोई (सुदुराचारः) अतिशय दुराचारी (अपि) भी (अनन्यभाक्) अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर (माम्) मुझको (भजते) भजता है तो (सः) वह (साधुः) साधु (एव) ही (मन्तव्यः) मानने योग्य है (हि) क्योंकि (सः) वह

(सम्यक्) यथार्थ (व्यवसितः) निश्चयवाला है।

गरीबदास जी महाराज कहते हैं -

कुष्टि होवे साध बन्दगी कीजिए। वैश्या के विश्वास चरण चित दीजिए॥

ऐसे अनजानों को जो कहते कुछ और करते कुछ हैं। कबीर साहेब कहते हैं-

कबीर, कहते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार। दोजख धक्के खाएंगे, धर्मराय दरबार॥
कबीर, करनी तज कथनी कथें, अज्ञानी दिन रात। कुकर ज्यों भौकत फिरै, सुनी सुनाई बात॥

एक समय नामदेव संत खाना बना रहे थे। कुत्ता रोटी उठा कर भाग लिया। वह संत घी का पात्र हाथ में ले कर पीछे-2 यह कहता हुआ चल पड़ा कि भगवन सूखी रोटी कैसे खाओगे? लाओ चुपड़ देता हूँ। काफी दूर निकल गए। वहाँ कुत्ता रुक गया। नामदेव जी रोटी को चुपड़ कर कुत्ते के सामने रखी दोनों इक्का ही खाना खाने लगे। क्योंकि नामदेव जी को भगवान साक्षात् नजर आ रहे थे। आम व्यक्ति को कुत्ता नजर आ रहा था। यह लक्षण हैं पंडितों के। जब तक ऐसा नहीं है वह पंडित नहीं है अर्थात् भक्ति योग्य साधक नहीं है। यह गीता जी में भगवान का कथन है। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं गीता जी के अध्याय 5 के श्लोक 19 से 21 में। फिर प्रमाण है कि वही व्यक्ति मुक्त समझो जिसमें निम्न लक्षण हैं जो गीता जी के श्लोकों में निम्नलिखित हैं। अध्याय 5 के श्लोक 22 में कहा है कि हे अर्जुन! कर्मों के संयोग से उत्पन्न भोग (राज के लिए लड़ाई करना तथा फिर मौज मारना) नाशवान हैं। ज्ञानवान व्यक्ति इससे दूर रहता है तथा अध्याय 2 के श्लोक 37 में भगवान कह रहा है कि अर्जुन तू युद्ध कर। यदि युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग में मौज मारेगा और यदि जीत गया तो राज का आनन्द लेगा।

अध्याय 5 के श्लोक 23 से 26 में -

योगी की व्याख्या इस प्रकार है कि जो अपने काम-क्रोध को जीत लेता है वही योगी (परमात्मा प्राप्त) है और वही सुखी है।

विचारें : यह मन तथा इन्द्रियाँ तो शंकर जी जैसे योगी से भी नहीं जीते गए अन्य प्राणी अर्जुन (जिसने दो-2 शादी करवा रखी थी) जैसे साधक कैसे योग युक्त (परमात्मा प्राप्ति) हो सकता है।

'गरीब, कहन सुनन की करते बातां। कोई न देख्या अमृत खाता॥'

॥ वार कौन तथा पार कौन ॥

अध्याय 5 के श्लोक 24 में कहा है कि वह योगी (साधक) ही निर्वाण ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) को प्राप्त होता है। श्लोक 25 में भी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) को पाने का वर्णन है तथा श्लोक 26 भी निर्वाण ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) पाने का प्रमाण देता है। जिसने काम-क्रोध समाप्त कर लिए वह व्यक्ति ही पूर्ण ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त समझो। यह क्षमता न ब्रह्माजी में, न शिव जी में, न विष्णु जी में फिर पार कौन? अर्थात् वार ही ब्रह्मा, वार ही इन्द्र। वार का तात्पर्य है कि काल लोक में उरली तरफ ही रह गये, पार नहीं हुए अर्थात् सतलोक में नहीं पहुँचे।

॥ शब्द ॥

कोई है रे परले पार का, जो भेद कहै झनकार का।।टेक॥

वारिही गोरख वारिही दत्त। वारिह धू प्रहलाद अरथ॥

वारिही सुखदे वारिही व्यास, वारिही पारासुर प्रकाश॥१॥

वारिही दुरवासा दरवेश, वारिही नारद शारद शेष।

वारिही भरथरी गोपीचन्द, वारिही सनक सनन्दन बंध ।।2 ।।
वारिही ब्रह्मा वारिही इन्द्र, वारिही सहंस कला गोविंद ।

वारिही शिव शंकर जो सिंभ, वारिही धर्मराय आरंभ ।।3 ।।

वारिही धर्मराय धरधीर । परमधाम पौहचे कबीर ।।

ऋग यजु साम अथर्वन वेद, परमधाम नहीं लह्या भेद ।।4 ।।

अलल पंख अगाध भेव, जैसे कुंजी सुरति सेव ।

वार पार थेहा न थाह, गरीबदास निरगुन निगाह ।।5 ।।

इस शब्द में आदरणीय गरीबदास जी साहेब कह रहे हैं कि कोई सतलोक का साधक नहीं दिखाई देता है जो उस सच्चे शब्द की धुन को बताए। केवल काल लोक में बने नकली सतलोक-अलख लोक, अगम लोक तथा अनामी लोक की नकली धुनों को वर्णन करने वाले साधक हैं।

धुनि क्या है? जैसे एक डण्डा ढोल की ताल (सुर) मिलाने के लिए लगाया जाता है जिससे सही धुनि होती है। यदि उस ढोल पर कोई और वस्तु जैसे चप्पल व जूता मारे तो भी धुन तो होगी परंतु वह वास्तविक नहीं होगी। इसी प्रकार धुनि सही नाम (सतनाम) के जाप से वास्तविक धुनि प्रकट होगी। यदि कोई गलत नाम जाप कर रहा है धुनि उसमें भी प्रकट होगी परंतु सही नहीं होगी। इसलिए निम्न साधकों ने कोशिश की परंतु सतनाम साधना बिना उरली ओर (काल-ब्रह्म) के जाल में वार ही रहे, पार नहीं हुए अर्थात् सतलोक में नहीं गए। जबकि बहुत अच्छे साधक थे। जैसे कितनी ही उपजाऊ भूमि है यदि उसमें आम के स्थान पर बबूल का बीज बीज दीया जमीन ने तो उपजाना है परंतु जो वस्तु चाहिए थी नहीं मिली। जिन महापुरुषों में -- 1 श्री गोरख नाथ जी 2. श्री प्रह्लाद जी 3. श्री ध्रुव जी 4. श्री दत्तात्रे जी 5. श्री सुखदेव जी 6. श्री वेद व्यास जी 7. श्री पारासुर जी 8. श्री दुर्वासा जी 9. श्री नारद जी 10. श्री सारदा जी 11. श्री शेष जी 12. श्री भरथरीनाथजी 13. श्री गोपीचन्द नाथ जी 14. श्री सनक जी 15. श्री सनन्दन जी 16. श्री सनातन जी 17. श्री संत कुमार जी (ये चार ब्रह्मा के पुत्र भी महर्षि हैं जो बहुत अच्छे साधक हैं परंतु सतनाम व सारनाम बिना काल के जाल में ही बंधे हैं, पार नहीं हुए हैं) 18. श्री ब्रह्मा जी 19. श्री इन्द्र जी 20. श्री काल भगवान जो एक हजार कलाओं वाला है 21. श्री शिव शंकर जी 22. श्री विष्णु जी 23. श्री धर्मराय जी जो यहां (काल) का न्यायधीश है।

ये सभी पार नहीं हुए। ये तथा इनके उपासक भी जन्म-मरण तथा काल जाल में ही हैं। आदि माया (प्रकृति देवी) और देवता भी काल के बंधन में बंधे हुए हैं।

“कबीर, सुर नर मुनि जन, तेतीस करोरि, बंधे सब निरंजन (काल) की डोरी।।”

सर्व देवता व साधक जो ब्रह्म की उपासना चाहे सर्गुण रूप में कर रहे हैं और चाहे निर्गुण रूप में कर रहे हैं वे जन्म-मरण चौरासी लाख जूनियों का कष्ट व फिर स्वर्ग नरक कर्मधार से चक्र लगाते रहते हैं। पूर्ण मोक्ष के आनन्द से वंचित रह जाते हैं। ये सब काल जाल में ही हैं। क्योंकि इनको सतनाम व सारनाम का दाता कोई पूर्ण संत नहीं मिला। परम धाम (सतलोक) में साहेब कबीर जी पहुँचे जो सतनाम व सारनाम की उपासना को आधार मान कर सुमरण स्वयं करते थे तथा अपने शिष्यों को बताते थे। चारों वेदों (यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद, अथर्ववेद) में भी परम धाम को पाने की विधि का ज्ञान नहीं है। साहेब गरीबदास जी महाराज कहते हैं कि मैंने सतनाम को साहेब कबीर (अपने सतगुरु) जी से प्राप्त किया। फिर ऐसी लगन लगाई जैसे अलल पक्षी अपने

माता-पिता को पाने की जो आकाश में रहते हैं कोशिश करता है तथा कुंज पक्षी की तरह पल-पल कसक के साथ अपने सतलोक में जाने की तथा सतपुरुष को पाने की हृदय से लगन लगा कर स्मरण किया जिससे वह अपार लोक पाया और उस निर्गुण (गुणातीत सतपुरुष) को तेजपुंज के शरीर में देखा। जिसे पाँच तत्व के शरीर रहित होने से अधूरे साधक निराकार परमात्मा कहते हैं वह आकार में अपने सतधाम (सतलोक-परमधाम) में रहता है।

॥ अजपा जाप से विकार मरते हैं ॥

विचार करें :- अध्याय 5 के श्लोक 27, 28 में वर्णन है कि स्वांस के द्वारा सतनाम सुमरण से ही मन तथा विकारों को मार सकता है। वही मुक्त होगा। "स्वांसा पारस भेद हमारा, जो खोजे सो उतरे पारा।" मन स्वयं काल का अंश है जो एक हजार भुजाओं का भगवान है। मन तथा विकारों को केवल कबीर साहिब (जो असंख्य भुजाओं के मालिक अर्थात् भगवान हैं) के सुमरण (नाम) से मारा जा सकता है। इसके इलावा अन्य जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश व काल के जाप से मन काबू नहीं आ सकता। स्वांस सुमरण (सतनाम के जाप) से विकार मरते हैं। इसका प्रमाण आदरणीय नानक साहेब जी ने भी दिया है। पंजाबी गुरु ग्रंथ साहिब के पृष्ठ नं. 646 (रामकली राग पौड़ी नं. 68, 69) में पूछ रहा है कि संसार में किस-किस कारण से जन्म-मरण होता है तथा कैसे समाप्त होता है? कित् कित् विधि जग उपजै पुरखा, कित् कित् विधि बिनस जाई? उतर दिया है :-

हुऊमें विच जग उपजै पुरखा, नाम बिसारे दुःख पाई ॥

गुरु मुख होवै ज्ञान तत विचारै, हुऊमें सबदै जलाई ॥

तन मन निरमल निरमल बाणी, साचै रहै समाई ॥

नामे नामि रह बैरागी साच रखिया उर धारै ॥

नानक बिन नाम जोग कदे न होवै, देखहु रिदै विचारै ॥ 68 ॥

उत्तर दिया है कि विकारों (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार) के वश हो कर जीव जन्म-मरण में रहता है। सच्चे परमात्मा (सतपुरुष) के सच्चे नाम (सतनाम) से विकार समाप्त हो जाते हैं तथा नाम के बिना योग अधूरा है। इसलिए पूर्ण गुरु सेवै।

गुरुमुख साच शब्द बिचारै कोई। गुरुमुख सच वाणी प्रकट होई ॥

गुरुमुख मन भीजे बुझै बिरला कोई। गुरुमुख निज घर वासा होई ॥

गुरुमुख जोगी जूगत पछाणै। गुरुमुख नानक इको जाणै ॥ 69 ॥

साच शब्द का प्रमाण तथा हुवमें विकारों को मारने का प्रमाण

पंजाबी गुरु ग्रन्थ साहेब पृष्ठ नं. 59.60 (राग सिरि - महला पहला) से सहाभार शब्द नं. 11

बिन गुरु प्रीत न उपजै हुवमें मैल न जाई।

सोहं आप पछाणिया, शब्दई भेद पतिआई ॥

गुरु मुख आप पछाणिअै, अवर की करे कराई।

गुरु जी के मिले बिना विकार व मन नहीं मर सकते। सतगुरु ने सोहं नाम दिया (सर्व नामों में उत्तम नाम सोहं दिया) अब और कोई साधना क्यों करें? जब एक ही पूर्ण नाम (सतनाम) से पूर्ण लाभ प्राप्त हो गया। पूर्ण गुरु का शिष्य एक ही पूर्ण परमात्मा पर आधारित हो जाता है। फिर सारनाम प्राप्त करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

॥ दयालु परमात्मा कौन? ॥

विशेष :- गीता अध्याय 5 श्लोक 29 में गीता बोलने वाला ब्रह्म काल कह रहा है कि जो नादान

मुझे ही सर्व का मालिक व सर्व सुखदाई दयालु प्रभु मान कर मेरी ही साधना पर आश्रित हैं, वे मेरी साधना से मिलने वाली अश्रेष्ठ अस्थाई शान्ति को प्राप्त होते हैं जिस कारण से वे पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने से मिलने वाली शान्ति से वंचित रह जाते हैं अर्थात् उनका पूर्ण मोक्ष नहीं होता। उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाते रहते हैं। इसीलिए गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि यदि पूर्ण शान्ति चाहता है तो अर्जुन उस परमेश्वर की शरण में जा जिसकी कृपा से ही तू परमशान्ति तथा शाश्वत स्थान को प्राप्त होगा। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में भी है।

विशेष : क्योंकि काल (ब्रह्म) भगवान तीन लोक के (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) भगवानों तथा 21 ब्रह्मण्ड के लोकों का मालिक है। इसलिए ईश्वरों का भी ईश्वर है। इसलिए महेश्वर कहा है तथा जो भी साधक यज्ञ या अन्य साधना (तप) करके जो सुविधा प्राप्त करता है उसका भोक्ता (खाने वाला) काल ही है। जैसे राजा बन कर आनन्द करना, नाना प्रकार के विकार करना। इन सब का आनन्द स्वयं काल भगवान मन रूप से प्राप्त करता है तथा फिर तप्त शिला पर गर्म करके उससे वासना युक्त पदार्थ निकाल कर खाता है। अज्ञानतावश नादान प्राणी इसी काल भगवान को दयालु व प्रेमी जान कर शान्ति को प्राप्त हैं। जैसे कसाई के बकरे अपने मालिक (कसाई) को देखते हैं कि वह चारा डालता है, पानी पिलाता है, गर्मी-सर्दी से बचाता है। इसलिए उसे दयालु तथा प्रेमी समझते हैं परंतु वास्तव में वह कसाई उनका काल है। सबको काटेगा, मारेगा तथा स्वार्थ सिद्ध करेगा। ऐसे ही काल भगवान दयालु दिखाई देता है परंतु सर्व प्राणियों को खाता है। इसलिए कहा है कि उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है अर्थात् महाकष्ट को प्राप्त होते हैं। गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में कहा है कि उत्तम पुरुष अर्थात् श्रेष्ठ परमात्मा तो कोई अन्य ही है। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का धारण पोषण करता है वह वास्तव में अविनाशी है। वह परमात्मा कहा जाता है। अपने विषय में गीता ज्ञान दाता अध्याय 11 श्लोक 32 में कहता है कि अर्जुन मैं काल हूँ, सर्व लोकों (मनुष्यों) को खाने के लिए आया हूँ। जिस के दर्शन करके अर्जुन जैसे योद्धा की शान्ति चली गई वह भय के मारे कांप रहा था। इसलिए इसी अध्याय 5 श्लोक 24 से 26 में गीता ज्ञान दाता से अन्य शान्त ब्रह्म का उल्लेख है। इससे यह भी प्रमाणित हुआ कि गीता ज्ञान दाता शान्त ब्रह्म नहीं है। अर्थात् काल है।

सार - विचार :- जो कुत्ता बनाए, गधा बनाए, टांग काटे (क्योंकि यहां सर्व भक्तजन मानते हैं कि परमात्मा की कृपा से सब होता है। उसके आदेश के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।) सबको खाए तथा अर्जुन जैसे योद्धा को डराकर युद्ध करवाए तथा फिर युद्ध में हुए पापों का फल युधिष्ठिर को बुरे स्वपन आना, फिर कृष्ण जी द्वारा बताना कि आप यज्ञ करो क्योंकि आपके युद्ध में किए हुए पाप दुःखदाई हो रहे हैं। फिर हिमालय में तप करवा कर शरीर गलाना, फिर नरक में डालना। अब पाठक स्वयं विचार करें।

दयायुक्त परमेश्वर कबीर साहेब जी हैं जो सतलोक के स्वामी हैं। वे सुख सागर हैं। वहाँ कोई जीव दुःखी नहीं है और यहाँ (काल लोक में) भी यदि कोई भक्त जन सुखी होना चाहता है तो उसी परम पिता परमात्मा, पूर्णब्रह्म, अविनाशी परमेश्वर कबीर भगवान की उपासना करें तथा आजीवन शरण में रहें।



॥पांचवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक॥

परमात्मने नमः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अध्याय 5 का श्लोक 1

(अर्जुन उवाच)

सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।

यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् । १ ।

सन्न्यासम्, कर्मणाम्, कृष्ण, पुनः, योगम्, च, शंससि,

यत्, श्रेयः, एतयोः, एकम्, तत्, मे, ब्रूहि, सुनिश्चितम् । ॥ १ ॥

अनुवाद : (कृष्ण) हे कृष्ण! आप (कर्मणाम्) कर्मोंके (सन्न्यासम्) सन्न्यास अर्थात् कर्म छोड़कर आसन लगाकर कान आदि बन्द करके साधना करने की (च) और (पुनः) फिर (योगम्) कर्मयोगकी अर्थात् कर्म करते करते साधना करने की (शंससि) प्रशंसा करते हैं इसलिए (एतयोः) इन दोनोंमेंसे (यत्) जो (एकम्) एक (मे) मेरे लिए (सुनिश्चितम्) भलीभाँती निश्चित (श्रेयः) कल्याणकारक साधन हो (तत्) उसको (ब्रूहि) कहिये । (1)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे कृष्ण! आप कर्मोंके सन्न्यास अर्थात् कर्म छोड़कर आसन लगाकर कान आदि बन्द करके साधना करने की और फिर कर्मयोगकी अर्थात् कर्म करते करते साधना करने की प्रशंसा करते हैं इसलिए इन दोनोंमेंसे जो एक मेरे लिए भलीभाँती निश्चित कल्याणकारक साधन हो उसको कहिये । (1)

भावार्थ :- अर्जुन कह रहा है कि भगवन आप एक ओर तो कह रहे हो कि काम करते करते साधना करना ही श्रेयकर है। फिर अध्याय 4 मंत्र 25 से 30 तक में कह रहे हो कि कोई तप करके कोई प्राणायाम आदि करके कोई नाक कान बन्द करके, नाद (ध्वनि) सुन करके आदि से आत्मकल्याण मार्ग मानता है। इसलिए आप की दो तरफ (दोगली) बात से मुझे संशय उत्पन्न हो गया है कृपया निश्चय करके एक मार्ग मुझे कहिए।

कर्म सन्न्यास का विवरण :- कर्म सन्न्यास दो प्रकार से होता है, 1. एक तो सन्न्यास वह होता है जिसमें साधक परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रेरित होकर हठ करके जंगल में बैठ जाता है तथा शास्त्र विधि रहित साधना करता है, दूसरा घर पर रहते हुए भी हठयोग करके घण्टों एक स्थान पर बैठ कर शास्त्र विधि त्याग कर साधना करता है, ये दोनों ही कर्म सन्न्यासी हैं।

कर्मयोग का विवरण :- यह भी दो प्रकार का होता है। एक तो बाल-बच्चों सहित सांसारिक कार्य करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार भक्ति साधना करता है या विवाह न करा कर घर पर या किसी आश्रम में रहता हुआ सांसारिक कर्म अर्थात् सेवा करता हुआ शास्त्र विधि अनुसार साधना करता है, ये दोनों ही कर्मयोगी हैं। दूसरी प्रकार के कर्मयोगी वे होते हैं जो बाल-बच्चों में रहते हैं तथा साधना शास्त्र विधि त्याग कर करते हैं या शादी न करवाकर घर में रहता है या किसी आश्रम में सेवा करता है, यह भी कर्म योगी ही कहलाते हैं।

अध्याय 5 का श्लोक 2
(भगवान उवाच)

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते । २ ।

सन्न्यासः, कर्मयोगः, च, निःश्रेयसकरौ, उभौ,
तयोः, तु, कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगः, विशिष्यते ॥2॥

अनुवाद : तत्त्वदर्शी संत न मिलने के कारण वास्तविक भक्ति का ज्ञान न होने से (सन्न्यासः) शास्त्र विधि रहित साधना प्राप्त साधक प्रभु प्राप्ति से विशेष प्रेरित होकर गृहत्याग कर वन में चला जाना या कर्म त्याग कर एक स्थान पर बैठ कर कान नाक आदि बंद करके या तप आदि करना (च) तथा (कर्मयोगः) शास्त्र विधि रहित साधना कर्म करते-करते भी करना (उभौ) दोनों ही व्यर्थ है अर्थात् श्रेयकर नहीं हैं तथा न करने वाली है शास्त्रविधी अनुसार साधना करने वाले जो सन्न्यास लेकर आश्रम में रहते हैं तथा कर्म सन्न्यास नहीं लेते तथा जो विवाह करा कर घर पर रहते हैं उन दोनों की साधना ही (निःश्रेयसकरौ) अमंगलकारी नहीं हैं (तु) परन्तु (तयोः) उपरोक्त उन दोनोंमें भी (कर्मसन्न्यासात्) यदि आश्रम रह कर भी काम चोर है उस कर्मसन्न्याससे (कर्मयोगः) कर्मयोग संसारिक कर्म करते-करते शास्त्र अनुसार साधना करना (विशिष्यते) श्रेष्ठ है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 46 में कहा है कि चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र) के व्यक्ति भी अपने स्वभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धि अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परम सिद्धि के विषय में स्पष्ट किया है श्लोक 46 में कि जिस परमात्मा परमेश्वर से सर्व प्राणियों की उत्पत्ति हुई है जिस से यह समस्त संसार व्याप्त है, उस परमेश्वर कि अपने-2 स्वभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है अर्थात् कर्म करता हुआ सत्य साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। अध्याय 18 श्लोक 47 में स्पष्ट किया है कि शास्त्र विरुद्ध साधना करने वाले (कर्म सन्न्यास) से अपना शास्त्र विधी अनुसार (कर्म करते हुए) साधना करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने कर्म करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कर्म सन्न्यास करके हठ करना पाप है। श्लोक 48 में स्पष्ट किया है कि अपने स्वाभाविक कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए चाहे उसमें कुछ पाप भी नजर आता है। जैसे खेती करने में जीव मरते हैं आदि-2।

भावार्थ : उपरोक्त मंत्र नं. 2 का भावार्थ है कि जो शास्त्र विरुद्ध साधक हैं वे दो प्रकार के हैं, एक तो कर्म सन्न्यासी, दूसरे कर्म योगी। उन की दोनों प्रकार की साधना जो तत्त्वदर्शी सन्त के अभाव से शास्त्रविरुद्ध होने से श्रेयकर अर्थात् कल्याण कारक नहीं है तथा दोनों प्रकार की शास्त्रविरुद्ध साधना न करने वाली है। जैसे गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में कहा है कि शास्त्र विधि को त्यागकर मनमाना आचरण अर्थात् पूजा व्यर्थ है। श्लोक 24 में कहा है कि भक्ति मार्ग की जो साधना करने वाली है तथा न करने वाली उसके लिए शास्त्रों को ही प्रमाण मानना चाहिए। शास्त्रों (गीता व वेदों) में कहा है कि पूर्ण मोक्ष के लिए किसी तत्त्वदर्शी सन्त की खोज करो। उसी से विनम्रता से भक्ति मार्ग प्राप्त करें। प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 34, यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 10 व 13 में इन दोनों में कर्मसन्न्यासी से कर्मयोगी अच्छा है, क्योंकि कर्मयोगी जो शास्त्र विधि रहित साधना करता है, उसे जब कोई तत्त्वदर्शी संत का सत्संग प्राप्त हो जायेगा तो वह तुरन्त अपनी शास्त्र विरुद्ध पूजा को त्याग कर शास्त्र अनुकूल साधना पर लग कर आत्म कल्याण करा लेता है। परन्तु कर्म सन्न्यासी दोनों ही प्रकार के हठ योगी घर पर रहते हुए भी, जो कान-आंखें बन्द करके

एक स्थान पर बैठ कर हठयोग करने वाले तथा घर त्याग कर उपरोक्त हठ योग करने वाले तत्त्वदर्शी संत के ज्ञान को मानवश स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उन्हें अपने त्याग तथा हठयोग से प्राप्त सिद्धियों का अभिमान हो जाता है तथा गृह त्याग का भी अभिमान सत्यभक्ति प्राप्ति में बाधक होता है। इसलिए शास्त्रविधि रहित कर्मसन्यासी से शास्त्र विरुद्ध कर्मयोगी साधक ही अच्छा है। यही प्रमाण गीता अध्याय 18 श्लोक 41 से 46 में कहा है कि चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य तथा शुद्र) के व्यक्ति भी अपने स्वभाविक कर्म करते हुए परम सिद्धी अर्थात् पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परम सिद्धी के विषय में स्पष्ट किया है श्लोक 46 में कि जिस परमात्मा परमेश्वर से सर्व प्राणियों की उत्पत्ति हुई है जिस से यह समस्त संसार व्याप्त है, उस परमेश्वर कि अपने-2 स्वभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धी को प्राप्त हो जाता है अर्थात् कर्म करता हुआ सत्य साधक पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। अध्याय 18 श्लोक 47 में स्पष्ट किया है कि शास्त्र विरुद्ध साधना करने वाले (कर्म सन्यास) से अपना शास्त्र विधी अनुसार (कर्म करते हुए) साधना करने वाला श्रेष्ठ है। क्योंकि अपने कर्म करता हुआ साधक पाप को प्राप्त नहीं होता। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि कर्म सन्यास करके हठ करना पाप है। श्लोक 48 में स्पष्ट किया है कि अपने स्वाभाविक कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए चाहे उसमें कुछ पाप भी नजर आता है। जैसे खेती करने में जीव मरते हैं आदि-2।

विशेष :- गीता अध्याय 2 श्लोक 39 से 53 तक तथा अध्याय 3 श्लोक 3 में दो प्रकार की साधना बताई है। उनके विषय में कहा है कि मेरे द्वारा बताई साधना तो मेरा मत है। जो दोनों ही अमंगल कारी तथा न करने वाली है। पूर्ण ज्ञान जो मोक्षदायक है किसी तत्त्वदर्शी सन्त से जान गीता अध्याय 4 श्लोक 33-34 में प्रमाण है। यही प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 46 में है कहा है शास्त्र विरुद्ध साधना करने वाले कर्मयोगी से शास्त्रविद् योगी श्रेष्ठ है।

अध्याय 5 का श्लोक 3

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।

निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।३।

ज्ञेयः, सः, नित्यसन्न्यासी, यः, न, द्वेष्टि, न, काङ्क्षति,

निर्द्वन्द्वः, हि, महाबाहो, सुखम्, बन्धात्, प्रमुच्यते।।3।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे अर्जुन! (यः) जो साधक (न) न किसीसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (न) न किसीकी (काङ्क्षति) आकांक्षा करता है, (सः) वह तत्त्वदर्शी (नित्यसन्न्यासी) सन्न्यासी ही है क्योंकि राग द्वेष युक्त व्यक्ति का मन भटकता है तथा इन से रहित साधक का मन काम करते करते भी केवल प्रभु के भजन व गुणगान में लगा रहता है इसलिए वह सदा सन्न्यासी ही है (हि) क्योंकि वही व्यक्ति (बन्धात्) बन्धन से मुक्त होकर (सुखम्) पूर्ण मुक्ति रूपी सुख के (ज्ञेयः) जानने योग्य ज्ञान को (निर्द्वन्द्वः) ढोल के डंके से अर्थात् पूर्ण निश्चय के साथ भिन्न-भिन्न (प्रमुच्यते) स्वतन्त्र होकर सही व्याख्या करता है। (3)

भावार्थ :- इस मंत्र नं. 3 में शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले कर्मयोगी का विवरण है कि जो श्रद्धालु भक्त चाहे बाल-बच्चों सहित है या रहित है या किसी आश्रम में रहकर सतगुरु व संगत की सेवा में रत हैं। वह सर्वथा राग-द्वेष रहित होता है। वास्तव में वही सन्न्यासी है, वही फिर अन्य शास्त्र विरुद्ध साधकों को पूर्ण निश्चय के साथ सत्य साधना का ज्ञान स्वतन्त्र होकर बताता है।

अध्याय 5 का श्लोक 4

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।

एकमप्यास्थितः सम्यग्भयोर्विन्दते फलम् । ४ ।

साङ्ख्ययोगौ, पृथक्, बालाः, प्रवदन्ति, न, पण्डिताः,

एकम्, अपि, आस्थितः, सम्यक्, उभयोः, विन्दते, फलम् ।।4।।

अनुवाद : (साङ्ख्ययोगौ) तत्त्वज्ञान के आधार से गृहस्थी व ब्रह्मचारी रहकर जो एक ही प्रकार की साधना करते हैं उन दोनों को (प्रथक्) प्रथक्-2 फल प्राप्त होता है ऐसा(बालाः) नादान (प्रवदन्ति) कहते हैं। वे (पण्डिताः) पण्डित (अपि) भी (न) नहीं हैं (एकम्) एक सर्व शक्तिमान परमेश्वर पर (सम्यक् आस्थितः) सम्यक् प्रकार से स्थित पुरुष (उभयोः) दोनों (फलम्)समान फलरूप को (विन्दते) तत्त्वज्ञान आधार से ही प्राप्त करते हैं गीता अध्याय 13 श्लोक 24-25 में विस्तृत वर्णन है। (4)

भावार्थ है कि जो अपनी अटकलों को लगा कर कोई कहते हैं कि शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले जिन्होंने शादी नहीं करवाई है अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर घर पर या आश्रम आदि में साधना करने वाले कर्म योगी श्रेष्ठ हैं। कोई कहते हैं कि शादी करवाकर बाल बच्चों में रहकर कर्म करते करते साधना करना श्रेष्ठ है, वे दोनों ही नादान हैं, क्योंकि वास्तविक ज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञान तो तत्त्वदर्शी संत ही सही भिन्न-भिन्न बताएगा कि शास्त्रविधि अनुसार साधना से दोनों को समान फल प्राप्त होता है। तत्त्वदर्शी सन्त का गीता अध्याय 4 मंत्र 34 में वर्णन है तथा तत्त्वदर्शी संत की पहचान गीता अध्याय 15 मंत्र 1 से 4, में यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 व 13 में भी कहा है कि पूर्ण परमात्मा के विद्यान को तत्त्वदर्शी सन्त ही बताता है उस से सुनों।

अध्याय 5 का श्लोक 5

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।

एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति । ५ ।

यत्, साङ्ख्यैः, प्राप्यते, स्थानम्, तत्, योगैः, अपि, गम्यते,

एकम्, साङ्ख्यम्, च, योगम्, च, यः, पश्यति, सः, पश्यति ।।5।।

अनुवाद : शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से (साङ्ख्यैः) तत्त्वज्ञानियों द्वारा (यत्) जो (स्थानम्) स्थान अर्थात् सत्यलोक (प्राप्यते) प्राप्त किया जाता है (योगैः) तत्त्वदर्शीयों से उपदेश प्राप्त करके साधारण गृहस्थी व्यक्तियों अर्थात् कर्मयोगियोंद्वारा (अपि) भी (तत्) वही (गम्यते) सत्यलोक स्थान प्राप्त किया जाता है (च) और इसलिए (यः) जो पुरुष (साङ्ख्यम्) ज्ञानयोग (च) और (योगम्) कर्मयोगको फलरूपमें (एकम्) एक (पश्यति) देखता है (सः) वही यथार्थ (पश्यति) देखता है अर्थात् वह वास्तव में भक्ति मार्ग जानता है (5)

विशेष :- उपरोक्त अध्याय 5 मंत्र 4-5 का भावार्थ है कि कोई तो कहता है कि जिसको ज्ञान हो गया है वही शादी नहीं करवाता तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहता है वही पार हो सकता है। वह चाहे घर रहे, चाहे किसी आश्रम में रहे। कारण वह व्यक्ति कुछ ज्ञान प्राप्त करके अन्य जिज्ञासुओं को अच्छी प्रकार उदाहरण देकर समझाने लग जाता है। तो भोली आत्माएँ समझती हैं कि यह तो बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया है। यह तो पार है, हमारा गृहस्थियों का नम्बर कहाँ है। कुछ एक कहते हैं कि बाल-बच्चों में रहता हुआ ही कल्याण को प्राप्त होता है। कारण गृहस्थ व्यक्ति दान-धर्म करता है,

इसलिए श्रेष्ठ है। इसलिए कहा है कि वे तो दोनों प्रकार के विचार व्यक्त करने वाले बच्चे हैं, उन्हें विद्वान मत समझो। वास्तविक ज्ञान तो पूर्ण संत जो तत्त्वदर्शी है, वही बताता है कि शास्त्र विधि अनुसार साधना गुरु मर्यादा में रहकर करने वाले उपरोक्त दोनों ही प्रकार के साधक एक जैसी ही प्राप्ति करते हैं। जो साधक इस व्याख्या को समझ जाएगा वह किसी की बातों में आकर विचलित नहीं होता। ब्रह्मचारी रहकर साधना करने वाला भक्त जो अन्य को ज्ञान बताता है, फिर उसकी कोई प्रशंसा कर रहा है कि बड़ा ज्ञानी है, परन्तु तत्त्व ज्ञान से परिचित जानता है कि ज्ञान तो सतगुरु का बताया हुआ है, ज्ञान से नहीं, नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से मुक्ति होगी। इसी प्रकार जो गृहस्थी है वह भी जानता है कि यह भक्त जी भले ही चार मंत्र व वाणी सीखे हुए है तथा अन्य इसके व्यर्थ प्रशंसक बने हैं, ये दोनों ही नादान हैं। मुक्ति तो नाम जाप व गुरु मर्यादा में रहने से होगी, नहीं तो दोनों ही पाप के भागी व भक्तिहीन हो जायेंगे। ऐसा जो समझ चुका है वह चाहे ब्रह्मचारी है या गृहस्थी दोनों ही वास्तविकता को जानते हैं। उसी वास्तविक ज्ञान को जान कर साधना करने वाले साधक के विषय में निम्न मंत्रों का वर्णन किया है।

अध्याय 5 का श्लोक 6

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमामुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति । ६ ।

सन्न्यासः, तु, महाबाहो, दुःखम्, आप्तुम्, अयोगतः,
योगयुक्तः, मुनिः, ब्रह्म, नचिरेण, अधिगच्छति।।6।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे अर्जुन! (तु) इसके विपरित (सन्न्यास) कर्म सन्न्यास से तो (अयोगतः) शास्त्र विधि रहित साधना होने के कारण (दुःखम्) दुःख ही (आप्तुम्) प्राप्त होता है तथा (योगयुक्तः) शास्त्र अनुकूल साधना प्राप्त (मुनिः) साधक (ब्रह्म) प्रभु को (नचिरेण) अविलम्ब ही (अधिगच्छति) प्राप्त हो जाता है। (6)

अध्याय 5 का श्लोक 7

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते । ७ ।

योगयुक्तः, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रियः,
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्, अपि, न, लिप्यते।।7।।

अनुवाद : (विजितात्मा) तत्त्वज्ञान तथा सत्य भक्ति से जिसका मन संस्य रहित है, (जितेन्द्रियः) इन्द्री जीता हुआ (विशुद्धात्मा) पवित्र आत्मा और (सर्वभूतात्मभूतात्मा) सर्व प्राणियों के मालिक की सत्यसाधना से सर्व प्राणियों को आत्मा रूप में एक समझकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त प्राणी संसार में रहता हुआ (योगयुक्तः) सत्य साधना में लगा हुआ (कुर्वन्) सांसारिक कर्म करता हुआ (अपि) भी (न, लिप्यते) लिप्त नहीं होता अर्थात् सन्तान व सम्पत्ति में आसक्त नहीं होता। क्योंकि उसे तत्त्वज्ञान से ज्ञान हो जाता है कि यह सन्तान व सम्पत्ति अपनी नहीं है। जैसे कोई व्यक्ति किसी होटल में रह रहा हो, वहाँ के नौकरों व अन्य सामान जैसे टी.वी., सोफा सेट, दूरभाष, चारपाई व जिस कमरे में रह रहा है को अपना नहीं समझता उस व्यक्ति को पता होता है कि ये वस्तुएँ मेरी नहीं हैं। इसलिए उन से द्वेष भी नहीं होता तथा लगाव भी नहीं बनता तथा अपने मूल उद्देश्य को नहीं भूलता। इसलिए जिस घर में हम रह रहे हैं, इस सर्व सम्पत्ति व सन्तान को अपना न समझ कर प्रेम पूर्वक रहते हुए प्रभु प्राप्ति की लगन लगाए रखें। (7)

अध्याय 5 का श्लोक 8, 9

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्अश्नन्गच्छन्स्वपन्। ८।

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्उन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्ते इति धारयन्। ९।

न, एव, किञ्चित्, करोमि, इति, युक्तः, मन्येत, तत्त्ववित्,
पश्यन्, शृण्वन्, स्पृशन्, जिघ्रन्, अश्नन्, गच्छन्, स्वपन्, ॥८॥
श्वसन्, प्रलपन्, विसृजन्, गृह्णन्, उन्मिषन्, निमिषन्, अपि,
इन्द्रियाणि, इन्द्रियार्थेषु, वर्तन्ते, इति, धारयन्, ॥९॥

अनुवाद : (तत्त्ववित्) तत्त्वदर्शी (युक्तः) प्रभु में लीन योगी तो (पश्यन्) देखता हुआ (शृण्वन्) सुनता हुआ (स्पृशन्) स्पर्श करता हुआ (जिघ्रन्) सूँघता हुआ (अश्नन्) भोजन करता हुआ (गच्छन्) चलता हुआ (स्वपन्) सोता हुआ (श्वसन्) श्वांस लेता हुआ (प्रलपन्) बोलता हुआ (विसृजन्) त्यागता हुआ (गृह्णन्) ग्रहण करता हुआ तथा (उन्मिषन्) आँखोंको खोलता और (निमिषन्) मूँदता हुआ (अपि) भी (इन्द्रियाणि) सब इन्द्रियाँ (इन्द्रियार्थेषु) अपने-अपने अर्थोंमें (वर्तन्ते) बरत रही हैं अर्थात् दुराचार नहीं करता (इति) इस प्रकार (धारयन्) समझकर (एव) निःसन्देह (इति) ऐसा (मन्येत) मानता है कि मैं (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं (करोमि) करता हूँ अर्थात् ऐसा कर्म नहीं करता जो पाप दायक है। (8,9)

भावार्थ है कि जो कुछ भी हो रहा है परमात्मा की कृप्या से ही हो रहा है। जीव कुछ नहीं कर सकता। परमात्मा के विद्यानुसार चलने वाला सुखी रहता है तथा मोक्ष प्राप्त करता है। विपरीत चलने वाले को हानी होती है।

अध्याय 5 का श्लोक 10

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा। १०।

ब्रह्मणि, आधाय, कर्माणि, संगम्, त्यक्त्वा, करोति, यः,
लिप्यते, न, सः, पापेन, पद्मपत्रम्, इव, अम्भसा, ॥१०॥

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (कर्माणि) सब कर्मोंको (ब्रह्मणि) पूर्ण परमात्मामें (आधाय) अर्पण करके और (संगम्) आसक्तिको (त्यक्त्वा) त्यागकर शास्त्र विधि अनुसार कर्म (करोति) करता है (सः) वह साधक (अम्भसा) जलसे (पद्मपत्रम्) कमलके पत्ते की (इव) भाँति (पापेन) पापसे (न, लिप्यते) लिप्त नहीं होता अर्थात् पूर्ण परमात्मा की भक्ति से साधक सर्व बन्धनों से मुक्त हो जाता है जो पाप कर्म के कारण बन्धन बनता है। (10)

अध्याय 5 का श्लोक 11

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये। ११।

कायेन, मनसा, बुद्ध्या, केवलैः, इन्द्रियैः, अपि,
योगिनः, कर्म, कुर्वन्ति, संगम्, त्यक्त्वा, आत्मशुद्धये, ॥११॥

अनुवाद : (योगिनः) होटल में निवास की तरह संसार में रहने वाले भक्त (केवलैः) केवल

(इन्द्रियैः) इन्द्रिय (मनसा) मन (बुद्ध्या) बुद्धि और (कायेन) शरीरद्वारा (अपि) भी (संगम्) आसक्तिको (त्यक्त्वा) त्यागकर (आत्मशुद्धये) अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये अर्थात् आत्म कल्याण के लिए (कर्म) सत्यनाम सुमरण, दान, सतगुरु सेवा व संसार में शुद्ध आचरण रूपी कर्म (कुर्वन्ति) करते हैं। (11)

अध्याय 5 का श्लोक 12

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते। १२।

युक्तः, कर्मफलम्, त्यक्त्वा, शान्तिम्, आप्नोति, नैष्ठिकीम्,

अयुक्तः, कामकारेण, फले, सक्तः, निबध्यते।।12।।

अनुवाद : (युक्तः) शास्त्रानुकूल सत्य साधना में लगा भक्त (कर्मफलम्) कर्मोंके फलका (त्यक्त्वा) त्याग करके (नैष्ठिकीम्) स्थाई अर्थात् परम (शान्तिम्) शान्तिको (आप्नोति) प्राप्त होता है और (अयुक्तः) शास्त्र विधि रहित साधना करने वाला अर्थात् असाध (कामकारेण) मनो कामना की पूर्ति के लिए (फले) फलमें (सक्तः) आसक्त होकर (निबध्यते) पाप कर्म के कारण बँधता है। (12)

अध्याय 5 का श्लोक 13

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी।

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्। १३।

सर्वकर्माणि, मनसा, सन्न्यस्य, आस्ते, सुखम्, वशी,

नवद्वारे, पुरे, देही, न, एव, कुर्वन्, न, कारयन्।।13।।

अनुवाद : (मनसा) मन को तत्त्वज्ञान के आधार से (वशी) काल लोक के लाभ से हटा कर दृढ़ इच्छा से (सर्व कर्माणि) सम्पूर्ण शास्त्र अनुकूल धार्मिक कर्मों अर्थात् सत्य साधना से (सन्न्यस्य) संचित कर्म के आधार से अर्थात् सन्न्यस्य की हुई सत्य भक्ति कमाई के आधार से (सुखम्) वास्तविक आनन्द में अर्थात् पूर्णमोक्ष रूपी परम शान्ति युक्त सत्यलोक में (आस्ते) स्थित होकर निवास करता है (एव) इस प्रकार फिर (देही) शरीरी अर्थात् परमात्मा के साथ अभेद रूप में जीवात्मा (नवद्वारे) पंच भौतिक नौ द्वारों वाले शरीर रूप (पुरे) किले में (न कुर्वन्) न तो कर्म करता हुआ (न कारयन्) न ही कर्म करवाता हुआ अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करके सत्यलोक में ही सुख पूर्वक रहता है। (13)

अध्याय 5 का श्लोक 14

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते। १४।

न, कर्तृत्वम्, न, कर्माणि, लोकस्य, सृजति, प्रभुः,

न, कर्मफलसंयोगम्, स्वभावः, तु, प्रवर्तते।।14।।

अनुवाद : (प्रभुः) कुल का स्वामी पूर्ण परमात्मा सर्व प्रथम (लोकस्य) विश्व की (सृजति) रचना करता है तब (न) न तो (कर्तृत्वम्) कर्तापनका (न) न (कर्माणि) कर्मों का आधार होता है (न) न (कर्मफलसंयोगम्) कर्मफलके संयोग ही (तु) इसके विपरीत (स्वभावः) सर्व प्राणियों द्वारा स्वभाव वश किए कर्म का फल ही (प्रवर्तते) बरत रहा है। (14)

अध्याय 5 का श्लोक 15

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः । १५ ।

न, आदत्ते, कस्यचित्, पापम्, न, च, एव, सुकृतम्, विभुः,

अज्ञानेन, आवृतम्, ज्ञानम्, तेन, मुह्यन्ति, जन्तवः ।।15।।

अनुवाद : (विभुः) पूर्ण परमात्मा (न) न (कस्यचित्) किसीके (पापम्) पाप का (च) और (न) न किसीके (सुकृतम्) शुभकर्मका (एव) ही (आदत्ते) प्रति फल देता है अर्थात् निर्धारित किए नियम अनुसार फल देता है किंतु (अज्ञानेन) अज्ञानके द्वारा (ज्ञानम्) ज्ञान (आवृतम्) ढका हुआ है (तेन) उसीसे (जन्तवः) तत्त्वज्ञान हीनता के कारण जानवरों तुल्य सब अज्ञानी मनुष्य (मुह्यन्ति) मोहित हो रहे हैं अर्थात् स्वभाववश शास्त्र विधि रहित भक्ति कर्म व सांसारिक कर्म करके क्षणिक सुखों में आसक्त हो रहे हैं। जो साधक शास्त्र विधि अनुसार भक्ति कर्म करते हैं उनके पाप को प्रभु क्षमा कर देता है अन्यथा संस्कार ही वर्तता है अर्थात् प्राप्त करता है। (15) इसी का विस्तृत विवरण पवित्र गीता अध्याय 16 व 17 में देखें।

भावार्थ :- अध्याय 5 श्लोक 14-15 में तत्त्व ज्ञानहीनत व्यक्तियों को जन्तवः अर्थात् जानवरों तुल्य कहा है क्योंकि तत्त्वज्ञान के बिना पूर्ण मोक्ष नहीं हो सकता पूर्ण मोक्ष बिना परम शान्ति नहीं हो सकती इसलिए कहा है कि पूर्ण परमात्मा ने जब सतलोक में सृष्टि रची थी उस समय किसी को कोई कर्म आधार बना कर उत्पत्ति नहीं की थी। सत्यलोक में सुन्दर शरीर दिया था जो कभी विनाश नहीं होता। परन्तु प्रभु ने कर्म फल का विद्यान अवश्य बनाया था। इसलिए सर्व प्राणी अपने स्वभाववश कर्म करके सुख व दुःख के भोगी होते हैं। जैसे हम सर्व आत्माएँ सत्यलोक में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा(सतपुरुष) द्वारा अपने मध्य से शब्द शक्ति से उत्पन्न किए। वहाँ सत्यलोक में हमें कोई कर्म नहीं करना था तथा सर्व सुख उपलब्ध थे। हम स्वयं अपने स्वभाव वश होकर ज्योति निरंजन (ब्रह्म-काल) पर आसक्त हो कर अपने सुखदाई प्रभु से विमुख हो गए। उसी का परिणाम यह निकला कि अब हम कर्म बन्धन में स्वयं ही बन्ध गए। अब जैसे कर्म करते हैं, उसी का फल निर्धारित नियमानुसार ही प्राप्त कर रहे हैं। जो साधक शास्त्र अनुकूल साधना करता है उसके पाप को पूर्ण परमात्मा क्षमा करता है अन्यथा संस्कार ही वर्तता है अर्थात् संस्कार ही प्राप्त करता है।

नीचे के मंत्र 16 से 28 तक शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म तथा मर्यादा में रहकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं तथा पूर्ण प्रभु पाप क्षमा कर देता है। इसलिए कर्तव्य कर्म अर्थात् करने योग्य भक्ति व सांसारिक कर्म करता हुआ ही पूर्ण मुक्त होता है।

अध्याय 5 का श्लोक 16

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् । १६ ।

ज्ञानेन, तु, तत्, अज्ञानम्, येषाम्, नाशितम्, आत्मनः,

तेषाम्, आदित्यवत्, ज्ञानम्, प्रकाशयति, तत्परम् ।।16।।

अनुवाद : (तु) दूसरी ओर (येषाम्) जिनका (अज्ञानम्) अज्ञान (आत्मनः) पूर्ण परमात्मा जो आत्मा का अभेद साथी है इसलिए आत्मा कहा जाता है उस पूर्ण परमात्मा के (तत् ज्ञानेन) तत्त्वज्ञान से (नाशितम्) नष्ट हो गया है (तेषाम्) उनका वह (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञान (तत्परम्) उस पूर्ण

परमात्मा को (आदित्यवत्) सूर्य के सदृश (प्रकाशयति) प्रकाश कर देता है अर्थात् अज्ञान रूपी अंधेरा हटा देता है। (16)

कबीर, तारा मण्डल बैठ कर चांद बड़ाई खाए। उदय हुआ जब सूरज का स्यों तारों छिप जाए॥
कबीर, और ज्ञान सब ज्ञानड़ी, तत्वज्ञान सो ज्ञान। जैसे गोला तोप का करता चले मैदान॥

अध्याय 5 का श्लोक 17

तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।

गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः । १७ ।

तद्बुद्ध्यः, तदात्मानः, तन्निष्ठाः, तत्परायणाः,

गच्छन्ति, अपुनरावृत्तिम्, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ 17 ॥

अनुवाद : (तदात्मानः) वह तत्वज्ञान युक्त जीवात्मा (तद्बुद्ध्यः) उस पूर्ण परमात्मा के तत्व ज्ञान पर पूर्ण रूप से लगी बुद्धि से (तन्निष्ठाः) सर्वव्यापक परमात्मामें ही निरन्तर एकीभावसे स्थित है ऐसे (तत्परायणाः) उस परमात्मा पर आश्रित (ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः) तत्वज्ञानके आधार पर शास्त्र विधि रहित साधना करना भी पाप है तथा उससे पुण्य के स्थान पर पाप ही लगता है इसलिए सत्य भक्ति करके पापरहित होकर (अपुनरावृत्तिम्) जन्म-मरण से मुक्त होकर संसार में पुनर् लौटकर न आने वाली गति अर्थात् पूर्ण मुक्ति को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं। (17)

अध्याय 5 का श्लोक 18

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः । १८ ।

विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे, गवि, हस्तिनि,

शुनि, च, एव, श्वपाके, च, पण्डिताः, समदर्शिनः ॥ 18 ॥

अनुवाद : (विद्याविनयसम्पन्ने) गुप्त तत्वज्ञान से परिपूर्ण अर्थात् पूर्ण तत्वज्ञानी साधक (ब्राह्मणे) ब्राह्मण में (गवि) गाय में (हस्तिनि) हाथी में (च) तथा (शुनि) कुत्ते (च) और (श्वपाके) चाण्डालमें (समदर्शिनः) एक समान समझता है अर्थात् एक ही भाव रखता है वास्तव में इन लक्षणों से युक्त हैं (पण्डिताः) ज्ञानीजन अर्थात् तत्वज्ञानी (एव) ही है। (18)

अध्याय 5 का श्लोक 19

इहैव तैजितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः । १९ ।

इह, एव, तैः, जितः, सर्गः, येषाम्, साम्ये, स्थितम्, मनः,

निर्दोषम्, हि, समम्, ब्रह्म, तस्मात्, ब्रह्मणि, ते, स्थिताः ॥ 19 ॥

अनुवाद : (एव) वास्तव में (येषाम्) जिनका (मनः) मन (साम्ये) समभावमें (स्थितम्) स्थित है (तैः) उनके द्वारा (इह) इस जीवित अवस्थामें (सर्गः) सम्पूर्ण संसार (जितः) जीत लिया गया है अर्थात् वे मनजीत हो गए हैं (हि) निसंदेह वह (निर्दोषम्) पाप रहित साधक (ब्रह्म) परमात्मा (समम्) सम है अर्थात् निर्दोष आत्मा हो गई हैं (तस्मात्) इससे (ते) वे (ब्रह्मणि) पूर्ण परमात्मामें ही (स्थिताः) स्थित हैं। पाप रहित आत्मा तथा परमात्मा के बहुत से गुण समान हैं जैसे अविनाशी, राग, द्वेष रहित, जन्म मृत्यु रहित, स्वप्रकाशित भले ही शक्ति में बहुत अन्तर है। (19)

अध्याय 5 का श्लोक 20

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।

स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः। २०।

न, प्रहृष्येत्, प्रियम्, प्राप्य, न, उद्विजेत्, प्राप्य, च, अप्रियम्,
स्थिरबुद्धिः, असम्मूढः, ब्रह्मवित्, ब्रह्मणि, स्थितः।।20।।

अनुवाद : (प्रियम्) प्रियको (प्राप्य) प्राप्त होकर (न प्रहृष्येत्) हर्षित नहीं हो (च) और (अप्रियम्) अप्रियको (प्राप्य) प्राप्त होकर (न उद्विजेत्) उद्विग्न न हो वह (स्थिरबुद्धि) स्थिरबुद्धि (असम्मूढः) संशयरहित (ब्रह्मवित्) परमात्म तत्व को पूर्ण रूप से जानने वाले (ब्रह्मणि) पूर्ण परमात्मामें एकीभावसे नित्य (स्थितः) स्थित है। (20)

अध्याय 5 का श्लोक 21

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।

स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते। २१।

बाह्यस्पर्शेषु, असक्तात्मा, विन्दति, आत्मनि, यत्, सुखम्,
सः, ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, सुखम्, अक्षयम्, अश्नुते।।21।।

अनुवाद : (बाह्यस्पर्शेषु) बाहरके विषयोंमें (असक्तात्मा) आसक्तिरहित साधक को (आत्मनि) अपने आप में (यत्) जो सुमरण (सुखम्) आनन्द (विन्दति) प्राप्त होता है (सः) वह (ब्रह्मयोगयुक्तात्मा) परमात्माके अभ्यास योगमें अभिन्नभावसे स्थित भक्त आत्मा (अक्षयम्) कभी समाप्त न होने वाले (सुखम्) आनन्दका (अश्नुते) अनुभव करता है। अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करते हैं। (21)

अध्याय 5 का श्लोक 22

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः। २२।

ये, हि, संस्पर्शजाः, भोगाः, दुःखयोनयः, एव, ते,
आद्यन्तवन्तः, कौन्तेय, न, तेषु, रमते, बुधः।।22।।

अनुवाद : (एव) वास्तव में (ये) जो ये इन्द्रिय तथा (संस्पर्शजाः) विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले (भोगाः) सब भोग हैं (ते) वे (हि) निश्चय ही (दुःखयोनयः) कष्ट दायक योनियों के ही हेतु हैं और (आद्यन्तवन्तः) आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। (कौन्तेय) हे अर्जुन! (बुधः) बुद्धिमान् विवेकी पुरुष (तेषु) उनमें (न) नहीं (रमते) रमता। (22)

अध्याय 5 का श्लोक 23

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।

कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः। २३।

शक्नोति, इह, एव, यः, सोढुम्, प्राक्, शरीरविमोक्षणात्,
कामक्रोधोद्भवम्, वेगम्, सः, युक्तः, सः, सुखी, नरः।।23।।

अनुवाद : (यः) जो साधक (इह) इस मनुष्य शरीरमें (शरीरविमोक्षणात्) शरीरका नाश होनेसे (प्राक्) पहले-पहले (एव) ही (कामक्रोधोद्भवम्) काम-क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले (वेगम्) वेगको (सोढुम्) सहन करनेमें (शक्नोति) समर्थ हो जाता है (सः) वही (नरः) व्यक्ति (युक्तः) प्रभु में लीन भक्त है और (सः) वही (सुखी) सुखी है। (23)

अध्याय 5 का श्लोक 24

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति । २४ ।

यः, अन्तःसुखः, अन्तरारामः, तथा, अन्तर्ज्योतिः, एव, यः,
सः, योगी, ब्रह्मनिर्वाणम्, ब्रह्मभूतः, अधिगच्छति ।।24।।

अनुवाद : (यः) जो पुरुष (एव) निश्चय करके (अन्तःसुखः) अन्तःकरण में ही सुखवाला है (अन्तरारामः) पूर्ण परमात्मा जो अन्तर्यामी रूप में आत्मा के साथ है उसी अन्तर्यामी परमात्मा में ही रमण करनेवाला है (तथा) तथा (यः) जो (अन्तर्ज्योतिः) अन्तःकरण प्रकाश वाला अर्थात् सत्य भक्ति शास्त्र ज्ञान अनुसार करता हुआ मार्ग से भ्रष्ट नहीं होता (सः) वह (ब्रह्मभूतः) परमात्मा जैसे गुणों युक्त (योगी) भक्त (ब्रह्मनिर्वाणम्) शान्त ब्रह्म अर्थात् पूर्ण परमात्माको (अधिगच्छति) प्राप्त होता है। (24)

अध्याय 5 का श्लोक 25

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः । २५ ।

लभन्ते, ब्रह्मनिर्वाणम्, ऋषयः, क्षीणकल्मषाः,
छिन्नद्वैधाः, यतात्मानः, सर्वभूतहिते, रताः ।।25।।

अनुवाद : (क्षीणकल्मषाः) शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, (छिन्नद्वैधाः) जिनके सब संशय निवृत्त हो गये हैं अर्थात् जो पथ भ्रष्ट नहीं हैं (सर्वभूतहिते) जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें (रताः) रत हैं और (यतात्मानः) परमात्मा के प्रयत्न अर्थात् साधना से स्थित हैं वे (ऋषयः) साधु पुरुष (ब्रह्मनिर्वाणम्) शान्त ब्रह्म को अर्थात् पूर्ण परमात्मा को (लभन्ते) प्राप्त होते हैं। (25)

अध्याय 5 का श्लोक 26

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् । २६ ।

कामक्रोधवियुक्तानाम्, यतीनाम्, यतचेतसाम्,
अभितः, ब्रह्मनिर्वाणम्, वर्तते, विदितात्मनाम् ।।26।।

अनुवाद : (कामक्रोधवियुक्तानाम्) काम-क्रोधसे रहित (यतचेतसाम्) प्रभु भक्ति में प्रयत्न शील (विदितात्मनाम्) परमात्माका साक्षात्कार किये हुए (यतीनाम्) परमात्मा आश्रित पुरुषोंके लिये (अभितः) सब ओरसे (ब्रह्मनिर्वाणम्) शान्त ब्रह्म को अर्थात् पूर्णब्रह्म परमात्मा को ही (वर्तते) व्यवहार में लाते हैं अर्थात् केवल एक पूर्ण प्रभु की ही पूजा करते हैं। (26)

विशेष - गीता अध्याय 5 श्लोक 27 व 28 में विवरण है कि जो साधक पूर्ण संत अर्थात् तत्त्वदर्शी संत से उपदेश प्राप्त कर लेता है फिर स्वांस-उस्वांस से सामान्य रूप से सुमरण करता है वही विकार रहित होकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करके अनादि मोक्ष प्राप्त करता है।

अध्याय 5 का श्लोक 27, 28

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ । २७ ।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः । २८ ।

स्पर्शान्, कृत्वा, बहिः, बाह्यान्, चक्षुः, च, एव, अन्तरे, भ्रुवोः,

प्राणापानौ, समौ, कृत्वा, नासाभ्यन्तरचारिणौ ।। 27 ।।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिः, मुनिः, मोक्षपरायणः,

विगतेच्छाभयक्रोधः, यः, सदा, मुक्तः, एव, सः ।। 28 ।।

अनुवाद : (एव) वास्तव में (बाह्यान्) बाहरके (स्पर्शान्) विषयभोगोंको (बहिः) बाहर (कृत्वा) निकालकर (च) और (चक्षुः) नेत्रोंकी दृष्टिको (भ्रुवोः) भृकुटीके (अन्तरे) बीचमें स्थित करके तथा (नासाभ्यन्तरचारिणौ) नासिकामें चलने(प्राणापानौ) प्राण और अपानवायु अर्थात् स्वांस-उस्वांस को (समौ) सम (कृत्वा) करके सत्यनाम सुमरण करता है (यतेन्द्रियमनोबुद्धिः) जिसने इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, अर्थात् जो नाम स्मरण पर ध्यान लगाता है मन को भ्रमित नहीं होने देता ऐसा (यः) जो (मोक्षपरायणः) मोक्षपरायण मोक्ष के लिए प्रयत्न शील (मुनिः) मननशील साधक (विगतेच्छाभयक्रोधः) इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, (एव) वास्तव में (सः) वह (सदा) सदा (मुक्तः) मुक्त है। (27,28)

विशेष :- गीता अध्याय 5 मंत्र 29 में गीता बोलने वाला ब्रह्म काल कह रहा है कि जो नादान मुझे ही सर्व का मालिक व सर्व सुखदाई दयालु प्रभु मान कर मेरी ही साधना पर आश्रित हैं, वे पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होने से मिलने वाली शान्ति से वंचित रह जाते हैं अर्थात् उनका पूर्ण मोक्ष नहीं होता। उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है तथा नाना प्रकार के कष्ट उठाते रहते हैं।

अध्याय 5 का श्लोक 29

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति । २९ ।

भोक्तारम्, यज्ञतपसाम्, सर्वलोकमहेश्वरम्,

सुहृदम्, सर्वभूतानाम्, ज्ञात्वा, माम्, शान्तिम्, ऋच्छति ।। 29 ।।

अनुवाद : (माम्) मुझको (यज्ञतपसाम्) सब यज्ञ और तपोंका (भोक्तारम्) भोगनेवाला (सर्वलोकमहेश्वरम्) सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा (सर्वभूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियोंका (सुहृदम्) स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा (ज्ञात्वा) जानकर मेरे पर ही आश्रित रहने मुझ से मिलने वाली अस्थाई, अश्रेष्ठ (शान्तिम्) शान्ति को (ऋच्छति) प्राप्त होते हैं जिस कारण से उनकी परम शान्ति पूर्ण रूप से समाप्त हो जाती है अर्थात् शान्ति की क्षमता समाप्त हो जाती है, पूर्ण मोक्ष से वंचित रह जाते हैं इसलिए मेरा साधक भी महादुःखी रहता है, इसी का प्रमाण गीता अध्याय 2 श्लोक 66 में है कि शान्ति रहित मनुष्य को सुख कैसा तथा अध्याय 7 श्लोक 18 में तथा गीता अध्याय 6 श्लोक 15 में भी स्पष्ट प्रमाण है, इसीलिए गीता अध्याय 15 श्लोक 16-17 में कहा है कि वास्तव में उत्तम पुरुष अर्थात् पूर्ण मोक्ष दायक परमात्मा तो कोई अन्य है इसलिए अध्याय 18 श्लोक 62-64-66 में कहा है कि अर्जुन सर्वभाव से उस परमात्मा की शरण में जा, जिसकी कृप्या से ही तू परम शान्ति तथा सनातन परम धाम अर्थात् सत्यलोक को प्राप्त होगा। (29)

विशेष : क्योंकि काल(ब्रह्म) भगवान तीन लोक के (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) भगवानों तथा 21 ब्रह्माण्ड के लोकों का मालिक है। इसलिए ईश्वरों का भी ईश्वर है। इसलिए महेश्वर कहा है तथा

जो भी साधक यज्ञ या अन्य साधना(तप) करके जो सुविधा प्राप्त करता है उसका भोक्ता(खाने वाला) काल ही है। जैसे राजा बन कर आनन्द करना, नाना प्रकार के विकार करना। इन सब का आनन्द स्वयं काल भगवान मन रूप से प्राप्त करता है तथा फिर तप्त शिला पर गर्म करके उससे वासना युक्त पदार्थ निकाल कर खाता है। अज्ञानतावश नादान प्राणी इसी काल भगवान को दयालु व प्रेमी जान कर प्रसन्न है। जैसे कसाई के बकरे अपने मालिक(कसाई) को देखते हैं कि वह चारा डालता है, पानी पिलाता है, गर्मी-सर्दी से बचाता है। इसलिए उसे दयालु तथा प्रेमी समझते हैं परंतु वास्तव में वह कसाई उनका काल है। सबको काटेगा, मारेगा तथा स्वार्थ सिद्ध करेगा। ऐसे ही काल भगवान दयालु दिखाई देता है परंतु सर्व प्राणियों को खाता है। इसलिए कहा है कि जो मुझ काल को ही सर्वसवा मानकर साधनारत है। उनकी शान्ति समाप्त हो जाती है अर्थात् महाकष्ट को प्राप्त होते हैं। गीता अध्याय 11 श्लोक 32 में गीता ज्ञान दाता प्रभु स्वयं कह रहा है कि मैं काल हूँ। सर्व को खाने के लिए आया हूँ। इसलिए इस अध्याय 5 श्लोक 29 का भावार्थ है कि काल को प्राप्त हो कर प्राणी को शान्ति कहाँ। इसलिए स्थान-2 पर गीता जी में कहा है पूर्ण शान्ति के लिए पूर्ण परमात्मा शान्त ब्रह्म की शरण में जा।

(इति अध्याय पाँचवाँ)



● छठवां अध्याय ●

॥ सारांश ॥

प्रश्न :- श्री मद् भगवत् गीता जी में दो तरफा (दोगला) ज्ञान किस कारण से है। अध्याय 3 श्लोक 1-2 में अर्जुन ने यही कहा है कि आप की दोतरफा बातों से मैं विचलित हो रहा हूँ। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 3 से 7 में कर्म त्याग कर एक स्थान पर बैठ कर (कर्मसन््यास प्राप्त करके) साधना करने वाले को पाखण्डी बताया है तथा कर्मयोग अर्थात् कार्य करते-2 साधना करने वाले (योगी) भक्त को श्रेष्ठ कहा है। फिर गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में एक स्थान पर विशेष आसन पर बैठ कर नाक के अग्रभाग पर ध्यान लगाने को कहा है। इन श्लोकों (अध्याय 6 के श्लोक 10 से 15) में अध्याय 3 श्लोक 3 से 7 का खण्डन है। फिर अध्याय 6 श्लोक 2 में काल भगवान ने दोनों ही प्रकार की साधना करने वाले साधकों की साधना का विवरण दिया है। पूर्ण परमात्मा की साधना के विषय में गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णन है कि तत्त्वज्ञानी अर्थात् तत्त्वदर्शी संत से प्राप्त कर। फिर भी गीता अध्याय 6 श्लोक 1 से 9 तक पूर्ण परमात्मा का कृप्या पात्र विधिवत् साधक ही वास्तव में सर्व सुख प्राप्त करता है, क्योंकि पूर्ण परमात्मा शास्त्र अनुकूल साधक का सच्चा साथी है जिससे उसका मन रूकता है। क्योंकि मन तो ब्रह्म (काल) है, यह पूर्ण परमात्मा से डरता है। दूसरे जो शास्त्र विधि त्याग कर साधना करते हैं वे असफल रहते हैं।

फिर अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में गीता ज्ञान दाता ने अपने द्वारा बताए गए भक्ति साधनों का विवरण दिया है जो पूर्ण नहीं हैं। इसलिए श्लोक 32 में कहा है कि वास्तव में सर्वश्रेष्ठ साधक तो वही है जो (परममतः) शास्त्र अनुकूल साधना करता है। अर्जुन ने श्लोक 33-34 में पूछा भगवान जो उपरोक्त साधना की विधि मन को रोकने की आपने कही है मुझे नहीं लगता कि मन वश हो सकता है। मन को रोकना तो वायु को रोकने के समान अर्थात् अति असम्भव है। भगवान ने श्लोक 35-36 में स्वीकृति दी है कि वास्तव में मन को रोकना बहुत कठिन है, परन्तु जो शास्त्र अनुकूल साधना से पूर्ण प्रभु के सहयोग से विजयी आत्मा है वही मन को रोक सकता है।

“हठयोग करके ध्यान करना व्यर्थ है”

गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में एक स्थान पर बैठ कर हठ योग द्वारा अभ्यास करने को कहा। जब की गीता अध्याय 3 श्लोक 4 से 8 तक इस के विपरीत कहा है कि जो एक स्थान पर बैठकर हठ करके इन्द्रियों को रोककर साधना करते हैं वे पाखण्डी है। एक स्थान पर बैठा रहा तो निर्वाह कैसे होगा इस अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 के आधार पर आज कल अनजान जिज्ञासु भक्त आत्म ध्यान योग केन्द्रों के चक्र लगाते हैं। ध्यान साधना कोई अढाई घण्टे सुबह-शाम आवश्यक बताता है, कोई किसी फिल्मी गाने की धुन बजा कर नाच-नाच कर। फिर थक जाए तब शव-आसन में निढाल (मृतसम) होकर आनन्द तथा फिर निन्द्रा को ध्यान की अंतिम स्थिति बताते हैं। फिर ध्यान कहाँ लगाएँ? कहते हैं त्रिकुटी पर लगाएँ। त्रिकुटी कहाँ? अनजान साधक को कोई ज्ञान नहीं। फिर उसे दोनों भौवों (सेलियों जो आँखों के ऊपर मस्तिक में बाल उगे हैं उन्हें सेली/भौव कहते हैं) के बीच जहाँ नाक समाप्त होता है तथा मस्तिक आरम्भ होता है। वह अनजान साधक उस नादान गुरु के बताए मार्ग पर प्रयत्न करता है। जब कुछ भी हासिल नहीं होता तो वह गुरुदेव कहता है - क्या दिखाई दिया? साधक कहता है कुछ नहीं। फिर गुरुदेव बताता है कि कुछ

आवाज सुनी। साधक कहता है - हाँ सुनी। बस और क्या देखना है, यही है अनहद शब्द। फिर कहता है कि दोनों आँखों की पुतलियों के ऊपर के हिस्से को ऊंगलियों से दबाओ। कुछ प्रकाश दिखाई दिया? साधक कहता है - हाँ, दिखाई दिया। बस यही ज्योति स्वरूप (प्रकाशमय) परमात्मा है। अनजान साधक उस अंधे गुरु के साथ अपना जीवन बर्बाद कर जाता है। ध्यान के अभ्यास से ध्यान यज्ञ हो जाती है। जिस का फल स्वर्ग, सांसारिक भोग तथा फिर कर्माधार पर नरक, चौरासी लाख जूनियाँ। ध्यान का अभ्यास भी इतना हो कि वह निर्विकल्प (संकल्प रहित) हो जाए। फिर यह लाभ है (स्वर्ग व सांसारिक भोग का फल मिलेगा) जो अढ़ाई घंटे व नाच-कूद करके ध्यान अभ्यास करते हैं उन्हें कुछ भी प्राप्ति नहीं है।

एक समय वन में एक साधक ने ध्यान में समाधिस्थ हो जाने का इतना अभ्यास कर लिया कि कई-2 दिन तक ध्यान (मेडिटेशन) में कुछ खाए पिये बिना ही लीन रहने लगा। उसी जंगल में बहुत से सन्यासी भी साधना करते थे। एक दिन उस योगी के मन में आया कि साथ वाले गाँव में जा कर छा (लस्सी) पी कर आता हूँ। उस उद्देश्य से वह योगी सुबह सूर्योदय होने से पहले नजदीक के गाँव में गया। एक दरवाजा खट-खटाया। उसमें से एक वृद्धा निकली तथा कारण पूछा तो योगी ने कहा - माई छा (लस्सी) पीनी है। इस पर माई ने कहा आओ बैठो, महात्मा जी। मैं अभी छा बनाती हूँ अर्थात् दूध रिडकती हूँ। महात्मा जी को उचित आसन दे दिया और स्वयं दूध रिडकने लग गई। माई को लगभग एक घंटा छा बनाने में लग गया। फिर छा में नमक डाल कर गिलास भर कर महात्मा (योगी) जी को कहा महाराज जी छा पीलो!। बार-बार आवाज लगाने पर भी महाराज जी नहीं बोले। तब आसपास के व्यक्तियों को इकट्ठा किया तथा बताया कि यह महात्मा जी छा पीने आया था। मैंने कहा महाराज अभी छा तैयार करती हूँ। लगभग एक घंटा लगेगा। इसने कहा ठीक है माई, मैं अपना भजन करता हूँ। अब यह बोल ही नहीं रहा। (उस महात्मा जी ने सोचा कि माई छा तैयार करने में एक घंटा लगाएगी तब तक क्यों न ध्यान लगा कर ध्यान साधना करूँ। ध्यान से अन्दर कई नजारे दिखाई देते हैं। जिसको यह चसका पड़ गया वह फिर बाहर का दृश्य कम अन्दर का ज्यादा देखता है। जैसे कोई मेले में चला जाए वहाँ नाना प्रकार के खेल-नाटक-गाने बजाने व वस्तुएँ होती हैं। उन्हें देखने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे समय का भी ज्ञान नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार अन्दर भी ऐसे फिल्में चल रही हैं जिस साधक की अच्छी साधना हो जाती है उसे अन्दर के नजारे दृष्टी गोचर होने लगते हैं। इसी कारण वह कई घंटों व कई दिनों तक सुध-बुध खो कर मस्त बैठा रहता है। वह महात्मा जी समाधिस्थ अवस्था में था।) सब व्यक्तियों ने भी आवाज लगाई परंतु महाराज जी उस से मस नहीं हुआ। सभी ने मिल कर यही फैसला किया कि इसके किसी साथी साधक को बुलाते हैं। वही युक्ति से इसे उठाएगा। ऐसा सोच कर एक व्यक्ति वहाँ पहुँचा जहाँ और कई साधक साधना करते थे। जब उन साधुओं को पता लगा तो दो-तीन वहाँ पहुँचे जहाँ वह महात्मा समाधिस्थ अवस्था में बैठा हुआ था। उन्होंने भी कोशिश की परंतु महाराज नहीं उठा। तब उसके साथी साधकों ने कहा कि यह समाधी में है। इसे छोड़ो मत। अपने आप उठेगा। ऐसा ही किया गया। वर्षों बीत गए परंतु वह साधक अपनी समाधी से नहीं उठा। तब उसका अलग से छप्पर बना दिया। हजारों वर्षों के बाद उठा। (उस समय वह गाँव भी उजड़ चुका था। कोई नहीं था।) उठते ही कहता है - लाओ माई छा (लस्सी)।

वर्षों व्यर्थ गंवाए योगी, इच्छा मिटी न चाह। उठ नादान पुछत है, लाओ माई छाह॥

अब पाठक विवेक करें कि इतनी साधना के ध्यान अभ्यास से भी मनोकामना व भोग पदार्थों

की चाह नहीं मिटी तो अढाई घंटे व नाच-कूद करके ध्यान अभ्यासी क्या प्राप्त कर सकेंगे? उस साधक की ध्यान यज्ञ हुई जिसका फल पूर्व बताया है। सतनाम बिना तथा पूर्ण गुरु के बिना जीव का जन्म-मरण दीर्घ रोग नहीं कट सकता। अध्याय 6 के श्लोक 5 और 6 का भाव है कि मनुष्य दुष्कर्म करने से तो अपना ही दुश्मन है। अच्छे कर्म करने से अपना मित्र है अर्थात् आत्मकल्याण कर लेता है। पूर्ण परमात्मा का पूर्ण ज्ञान होने पर शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से यह आत्मा अपनी ही मित्र है अन्यथा शत्रु ही है।

॥ योगी कौन? ॥

अध्याय 6 के श्लोक 7,8 में भगवान कह रहा है कि अर्जुन जो साधक गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख में तथा मान-अपमान में समान रहने वाला उभरी हुई आत्मा है, वह सदा भगवान में लीन रहता है तथा जिसके लिए पत्थर, मिट्टी, सोना सर्व समान है। वह योगी परमात्मा प्राप्त कहा जाता है।

अध्याय 6 के श्लोक 9 में भगवान कहता है जो व्यक्ति मित्र और बैरी को समान समझे अर्थात् पक्षपात रहित हो व द्वेष करने वालों व सम्बन्धियों व पापियों को भी एक दृष्टि से देखे। वह वास्तव में योगी है।

विचार करें :- यह सर्व गुण तो अर्जुन में पहले ही विद्यमान थे जो कह रहा है कि भगवान में युद्ध नहीं करूँगा। यह पाप करने से अच्छा तो भिक्षा का अन्न खा कर निर्वाह करना उचित समझता हूँ। देखें गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 4 और 6 । एक तरफ तो भगवान (काल) कह रहा है अर्जुन युद्ध कर ले। फिर कहता है अर्जुन योगी हो जा। योगी लक्षण आप ऊपर श्लोक 7, 8, 9 में ध्यान से पढ़ें। इसमें स्वसिद्ध है कि ये ज्ञान भगवान कृष्ण का नहीं है बल्कि काल (ब्रह्म) का कहा हुआ है। जिसका उद्देश्य केवल पाप (युद्ध के द्वारा हत्याएँ) करवाना था। साथ-2 वेदों वाला ज्ञान भी कह रहा है। योगी (भक्त) के लक्षण अहिंसा तथा निर्वैरिता और सर्व का हित चाहने वाला हो। परंतु साथ में युद्ध करने की प्रेरणा भी दे रहा है। युद्ध में कोई भी अहिंसा या निर्वैरिता का पालन नहीं कर सकता।

कबीर, कबीरा खड़ा बाजार में, सब की मांगें खैर। न काहु से दोस्ती, न काहु से बैर॥

विचार करें :- अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में विशेष आसन पर स्थित होकर हठ योग करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग अभ्यास करने को कहा है न की मुक्ति है। यदि अन्तःकरण शुद्ध हो गया और नाम सही नहीं मिला तो भी साधना व्यर्थ, केवल ध्यान यज्ञ का लाभ मिलेगा। सर्व यज्ञों से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। धर्म यज्ञ, ध्यान यज्ञ, हवन यज्ञ, प्रणाम यज्ञ और ज्ञान यज्ञ, इनको करने वाले साधक में विनम्रता आती है और यज्ञों का फल भी मिलता है। जैसे भूमि को संवार कर बीज बीजने योग्य बना दें (अन्तःकरण शुद्ध हुआ) फिर बीज बीजें नहीं। तो वह संवारी हुई जमीन व्यर्थ है। इसी प्रकार नाम (सतनाम) बिना सर्व साधना व्यर्थ है। यज्ञों का फल तो ऐसा है जैसे जमीन संवार कर छोड़ दी। फिर उसमें पानी खाद डालते रहे। घास-झाड़ियाँ उग जाएंगी। कुछ लाभ तो वे दे देती हैं परंतु बीज (गेहूँ) बीज दिया जाए तो पशुओं का चारा भी बने और रोटियाँ (चपातियाँ) भी मिलें अर्थात् यदि तीन लोक का पूर्ण लाभ लेना है तो जैसा गीता में लिखा है कि अर्जुन यज्ञ कर तथा ऊँ नाम का जाप पूर्ण गुरु से ले कर करें तो महास्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है। (यदि पूर्ण लाभ लेना है तो सतनाम रूपी बीज बीज कर अमर लोक में जा कर जीव अमर हो जाता है।)

विचार करें :- भगवान अर्जुन को कह रहे हैं कि ब्रह्मचारी व्रत का पालन करके योगी साधना

में सफलता पाता है। वह भी स्वर्ग तक। जबकि अर्जुन की दो पत्नियाँ थी। एक तो सुभद्रा (भगवान कृष्ण की बहन) तथा दूसरी द्रौपदी। इससे सिद्ध है कि ब्रह्म तक का ज्ञान काल द्वारा ही दिया गया है जो कुछ सत्य कुछ असत्य है।

।। पूर्ण परमात्मा के लाभ का आनन्द प्राप्त करने की विधि व व्रत निषेध की जानकारी।।

विचार करें :- अध्याय 6 के श्लोक 16 में स्पष्ट किया है कि व्रत (खाना न खाने वाले) से योग साधना सिद्ध नहीं होती है अर्थात् व्रत की पूर्ण मनाही की है और अधिक खाना भी मना है, अधिक सोना व जागना भी साधक की साधना में बाधक है।

श्लोक 20 का अनुवाद है कि मन रोकने की (योग अभ्यास) साधना करते हुए जब {(उपर मते) अर्थात् पहले वर्णित शास्त्रानुकूल मत (विचार) के अनुसार साधना करने से मत का भाव है कि शास्त्रानुकूल साधना पूर्ण संत से उपदेश ले कर गुरु मर्यादा में रहते हुए केवल एक पूर्ण परमात्मा पर अटल विश्वास के साथ आधारित रहना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से रहित होना। यह मत (राय-सलाह) कही है।} निश्चल हो जाता है उस स्थिति में (आत्मना) आत्म ज्ञान के द्वारा (आत्मनाम) अपनी जीव स्थित को देख कर अर्थात् जान कर (आत्मनि) आत्मतत्त्व पूर्ण परमात्मा की भक्ति में संतुष्ट हो जाता है अर्थात् जीव तथा आत्मा को एक स्थिति में जानता है जैसे बर्फ और जल की स्थिति। चूंकि जल से ही बर्फ बनी है ऐसे ही आत्मा ही जीव बनी है जब तक बर्फ है उसमें पानी वाले गुण नहीं हैं। इसी प्रकार बर्फ-बर्फ है, पानी-पानी है। यदि कोई कहे बर्फ ही पानी है वह सही जानकार नहीं है। यदि कोई कहे जीव ही ब्रह्म अर्थात् परमात्मा है वह अल्पज्ञ है। बर्फ से पानी बनाया जाए तब पानी वाले गुण आएंगे। इसी प्रकार जीव से ब्रह्म बनाया जाएगा तब वह ब्रह्म होगा अर्थात् जीव नहीं रहेगा।

सार : - अध्याय 6 के श्लोक 16 से 29 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा के कभी समाप्त न होने वाले आनन्द (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त करने के लिए शास्त्र के अनुसार नियमित साधना करनी चाहिए। पूर्ण गुरु की खोज करें जो पूर्ण परमात्मा का मार्गदर्शक हो। फिर निष्कपट छलरहित भाव से व पूर्ण आस्था से निश्चल मन से आत्म तत्त्व को तथा जीव के दुःख को याद रख कर पहले (उपरमते) दिए विवरण अनुसार जैसा जो यज्ञ नहीं करता वह पापी-चोर है। यज्ञ भी गुरु के द्वारा शास्त्रों में वर्णित विधि से (मतपरः) मतानुकूल (मतवलम्बी) भाव से करें। पूर्ण परमात्मा की भक्ति पूर्ण मुक्ति (परम-गति) व परम शांति दे सकती है। जो साधक परमात्मा और जीव की स्थिति सही तरह जान लेता है वही पूर्ण मुक्ति प्राप्त करता है। जो प्राणी काल (ब्रह्म) के आधीन हैं वे काल (ब्रह्म) को भगवान मानते हैं। काल (ब्रह्म) का उन पर पूरा दायित्व है। जो साहेब कबीर हंस हैं वे काल से बाहर हैं। इसलिए कहा कि जो मुझ काल को भजते हैं वे मुझे सर्वस्व मानते हैं तथा वे प्राणी भी मेरी नजरों से दूर नहीं हैं अर्थात् मैं (काल) उन पर पूरी नजर रखता हूँ भावार्थ है कि जो काल उपासक ब्रह्म की साधना करता है वह काल (ब्रह्म) के जाल में ही रहता है जो पूर्ण परमात्मा का भजन करता है वह काल जाल से बाहर है। साधना करने वाले साधक के लिए मन के द्वारा इन्द्रियों को वश करके साधना सफल मानी है अन्यथा नहीं।

।। मन को रोकना वायु रोकने के समान।।

अध्याय 6 के श्लोक 33, 34 में अर्जुन कह रहा है कि भगवान! मन रोकना वायु को रोकने के

समान है अर्थात् अति असम्भव। अध्याय 6 के श्लोक 35, 36 में भगवान कह रहा है कि मैं मानता हूँ कि मन चंचल है। यह कठिनता से काबू होने वाला है। फिर भी शास्त्र विधि अनुसार साधना के अभ्यास से तथा इस अध्याय के श्लोक 1 से 9 में वर्णित विधि के अनुसार वैराग्य से वश में किया जा सकता है। यदि मन काबू नहीं हुआ तो योगी असफल अर्थात् मुक्ति की बजाय नरक प्राप्ति। मन को भगवान शिव भी काबू नहीं कर पाया जिन्होंने 88 हजार वर्ष तक अभ्यास किया तथा वैराग्य किया। फिर आम व्यक्ति तथा अर्जुन कैसे मन काबू कर सकता है? (विशेष विवरण कृप्या अध्याय 3 के सारांश में पढ़ें) ज्ञान तो सही है काल भगवान (ज्योति निरंजन) का परंतु जो साधना बताई है वह पूर्ण नहीं है जो मन को काबू कर सके। वह साधना साहेब कबीर जी ने बताई है कि बाल-बच्चों में रहो या वैराग्य धारण करो परंतु पूर्ण संत को गुरु बनाओ जो सतनाम व सारनाम देता हो। शास्त्र अनुकूल साधना करो, मनमाना आचरण मत करो तब काल-जाल से मुक्त हो सकते हो।

।। साधक की साधना बिगड़ने पर क्या होगा? ।।

विचार करें :- अध्याय 6 के श्लोक 37 से 39 में अर्जुन पूछता है कि मान लो कोई साधक (योगी) साधना करता हुआ बीच में विचलित हो जाए तो क्या वह दुर्गति को प्राप्त तो नहीं होता? अध्याय 6 के श्लोक 40 से 44 तक में भगवान उत्तर देते हैं कि ऐसा व्यक्ति न तो इस लोक का ही रहता है और न ही परलोक का अर्थात् घर का न घाट का नहीं रहता, उसका जीवन व्यर्थ जाता है। क्योंकि हे प्यारे (अर्जुन) आत्मोद्धार के लिए कर्म करने वाला जो कोई मनुष्य भक्ति मार्ग से भ्रष्ट नहीं होता वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 तक साधना से पथ भ्रष्ट साधक का विवरण किया है। वह भक्ति के मार्ग से विचलित साधक घर का रहता है न घाट का अर्थात् पूर्ण रूप से विनाश को प्राप्त होता है। वह चौरासी लाख योनियों के कष्ट को भोग कर फिर पुण्यकर्मों के आधार से स्वर्ग आदि लोकों में अपने पुण्य कर्मों को वेद वाणी में वर्णित पुण्यों के नियत समय तक भोग भोगता है फिर पतन को प्राप्त होता है अथवा अच्छे आचरण वाले भक्तों के घर पर जन्म लेता है, परन्तु अर्जुन ऐसा जन्म असम्भव है। जब वह व्यक्ति मनुष्य जन्म प्राप्त कर लेता है तो अपने स्वभाव वश शास्त्रविधि रहित साधना करता है जिस कारण से वेदों में वर्णित शास्त्रविधि अनुकूल साधना का उल्लंघन कर जाता है। जिस कारण से जीवन व्यर्थ हो जाने से विनाश को प्राप्त होता है प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 44 तथा गीता अध्याय 16 श्लोक 23-24 में गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 में भी स्पष्ट किया है कि "जो साधक वेदों अनुसार साधना करता है वह अपनी साधना का फल दिव्य देवताओं की तरह स्वर्ग आदि दिव्य लोकों में भोगकर अर्थात् समाप्त करके फिर संसार में जन्म-मरण के आवागमन के चक्र में फिर कर नष्ट हो जाता है। विचार करें यही प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 में है कि वह योग भ्रष्ट साधक अपनी साधना की कमाई को, बहुत समय तक दिव्य लोकों में भोग कर फिर अच्छे व्यक्तियों के घर जन्म लेता है। इससे भी वही गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 वाला ही प्रमाण है आवागमन व जन्म-मरण चक्र ही बना रहेगा। जो गलत तथा जीवन नाशक कहा है। इसलिए गीता अध्याय 6 श्लोक 40 का अनुवाद जो अन्य अनुवाद कर्त्ताओं द्वारा किया है वह ठीक नहीं है। जिसमें वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि मारीचि ऋषि योग भ्रष्ट होकर हिरण के जन्म को प्राप्त हुआ। यही मारिचि वाली आत्मा श्री महावीर जैन हुए जिनके विषय में आवागमन की बहुत बड़ी लिस्ट बनी है। कृप्या पढ़ें परमेश्वर का सार संदेश अध्याय 13 में ----

विचार करें गीता जी के अन्य अनुवाद कर्त्ता स्वयं भक्ति से भ्रष्ट जड़ भरत योगी का उदाहरण

देते हैं।

योगी की दुर्गति होने का प्रमाण :- श्रीमद्भागवद् सुधा सागर के पांचवे स्कंद के आठवें अध्याय के पृष्ठ नं. 265 में राजा ऋषिभदेव का पुत्र राजा जड़भरत का वर्णन है।

एक जड़भरत नामक योगी योग साधना कर रहा था। उसके सामने एक हिरनी किसी के भय से भागती-2 एक बच्चे को जन्म दे गई। जड़भरत ने दया वश होकर उस हिरनी के बच्चे का लालन-पालन किया। फिर उस से प्रेम इतना हो गया कि एक बार वह बच्चा कहीं दूर निकल गया और दो तीन दिन तक वापिस नहीं आया। तो मोहवश हो कर योगी जड़भरत जी ने खाना-पीना व निद्रा त्याग दी और बेहाल हो गया। जब वह बच्चा वापिस आया तो योगी जी ने उसे अपने सीने से लगाया तथा बहुत प्यार किया। फिर जड़भरत का देहांत होने लगा तो उसकी आस्था हिरणी के बच्चे में बनी रही। इसलिए वह जड़भरत योगी योग भ्रष्ट हो जाने से हिरणी के गर्भ से जन्म लेकर हिरन का बच्चा बनकर उसी बच्चे के साथ खेलने लगा अर्थात् दुर्गति को प्राप्त हुआ। पवित्र गीता जी के अन्य टीकाकारों (अनुवाद कर्त्ताओं) ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फिर आगे विवरण दिया है कि चौरासी लाख जूनियों को भोग कर वही आत्मा उच्च कुल (ब्राह्मणों) के घर पर जन्म लेकर फिर भक्ति करके मुक्ति हुई।

यदि यह भी मानें तो भी दुर्गति तो हुई तथा फिर क्या पता भक्ति सफल होवे या न होवे? यदि उच्च घरानों (ब्राह्मणों) के घर जन्म लेकर ही मुक्ति सम्भव है तो अन्य जातियाँ तो भक्ति मुक्ति से वंचित रह गईं।

विशेष विचार :- परमात्मा के घर पर जाति मजहब नहीं है। भक्तियुक्त आत्मा संस्कार वश कहीं भी जन्म ले वह फिर भक्ति पर शीघ्र ही लग जाती है। परंतु जो पथ भ्रष्ट हो जाएगा उसे चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट निश्चित मिलेगी। एक साधक का ब्राह्मण घर में जन्म हुआ वह साधना करता हुआ लगातार तीन जन्म ब्राह्मणों के घरों में ही जन्म लेता रहा। अंत समय में जब उस साधक के प्राण जाने वाले थे। उससे कुछ दिन पहले एक सुन्दर लड़की जो चमार (चर्मकार) की पुत्री थी को देख कर उसकी सुन्दरता पर आसक्त होकर विवश हो गया। परंतु मन को समझा कर सद्भावना पूर्वक अपनी दुर्भावना को बदलते हुए मन में विचार किया कि हे भगवान! ऐसी सुन्दरी मेरी माँ बने। फिर उस साधक का चमार के घर जन्म हुआ तथा पहले गुरु रामानन्द से और फिर पूर्ण गुरु कबीर साहेब से नाम लेकर मुक्ति को प्राप्त हुआ। वह साधक संत रविदास जी था। कृपा पाठक गण स्वयं विचार करें अन्य अनुवाद कर्त्ताओं को कैसा ज्ञान है।

गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 का सारांश :-

गीता अध्याय 6 श्लोक 40 का अनुवाद अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने किया है "योग भ्रष्ट साधक का विनाश न इस लोक में होता है न परलोक में क्योंकि भक्ति करने वाला कोई भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता फिर श्लोक 41-42 का अनुवाद किया है कि वह योग भ्रष्ट व्यक्ति स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होकर शुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों के घर जन्म लेता है। ऐसा जन्म इस संसार में अति दुर्लभ है।

अपने उपरोक्त अनुवाद के समर्थन में प्रमाण दिया है कि जड़ भरत योगी एक हिरनी के बच्चे से प्रेम करने के कारण योग भ्रष्ट हो गया जिस कारण से उस का अगला जन्म हिरनी के गर्भ से हुआ अर्थात् हिरण की योनी (पशु श्रेणी) को प्राप्त हुआ। फिर श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर मुक्त हुआ।

विचार करें :- गीता अध्याय 6 श्लोक 36 में स्पष्ट किया है कि जिसका मनवश में किया हुआ

नहीं है अर्थात् जो योग भ्रष्ट हो गया है (योग भ्रष्ट वही होता है जिसका मनवश में नहीं होता) ऐसे व्यक्ति को योग अर्थात् मोक्ष मार्ग दुष्प्राय है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती केवल जिनका मन वश में है जो योग भ्रष्ट नहीं होता वह पुरुष ही सत्य साधना से परमात्मा प्राप्त करता है। गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 42 के अनुवाद में अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने लिखा है कि योग भ्रष्ट साधक कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता वह स्वर्गादि उच्च लोकों को प्राप्त होता है कि शुद्ध आचरण वाले पुरुषों के घर जन्म लेता है। उपरोक्त जड़ भरत योग भ्रष्ट साधक वाला उदाहरण ही उनके द्वारा किए गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 42 के विपरीत है। जिस में कहा है कि योग भ्रष्ट होने के कारण भरत जी को हिरण का शरीर प्राप्त हुआ। कृप्या विचार करे पाठकगण "पशु योनी" प्राप्त प्राणी दुर्गति को प्राप्त होता है या परमगति को? पशु शरीर ही दुर्गति का प्रतीक है। गर्मी-सर्दी-भूख-प्यास, ओले गिरने से शरीर पर कष्ट, रोगी होने पर कोई उपचार नहीं, टांग-पैर टूट जाने पर भूख प्यास से तड़फ-2 कर मृत्यु को प्राप्त होना। हिंसक पशुओं के डर से इधर-उधर जीवन रक्षा के लिए दौड़ते रहना अन्त में बाघ या अन्य हिंसक प्राणी का ग्रास बन जाना आदि-2 महा दुर्गति के प्रमाण हैं। वैसे तो गीता में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म द्वारा पवित्र श्री मद्भगवत् गीता व पवित्र वेदों में कहा है यह पूर्ण मोक्ष दायक नहीं है। इस ज्ञान के आधार साधना करने वाला साधक पुण्य के आधार से स्वर्ग तथा पाप के आधार से अन्य प्राणियों के शरीर को प्राप्त होता है तथा नरकगामी भी होता है। इसलिए गीता ज्ञान दाता ब्रह्म ने गीता अध्याय 15 श्लोक 4 व अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 4 श्लोक 34 में तथा यजुर्वेद अध्याय 40 श्लोक 10 व 13 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा ही पूर्ण मोक्ष प्रदान कर सकता है। उस परमात्मा की शरण में जा। उस के लिए तत्त्वदर्शी सन्तों की खोज कर उनके बताए भक्ति मार्ग पर चल कर उस परमेश्वर के परम पद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक कभी लौट कर इस संसार में जन्म नहीं लेता। मैं (गीता ज्ञान दाता) भी उसी की शरण हूँ।

विशेष प्रमाण :- जड़ भरत के विषय में अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने कहा है कि हिरण के शरीर का जीवन भोग कर फिर अच्छे आचरण वालों के ब्राह्मणों के घर जन्म लेकर मुक्त हो गया।

विचार करते हैं :- राजा ऋषभ देव का पुत्र भरत जी थे ऋषभदेव जी ने हजारों वर्ष साधना की तत्पश्चात् भरत के पुत्र "मारीचि" को प्रथम बार शिष्य बनाया। फिर कुछ वर्षों पश्चात् भरत को दिक्षा दी। भरत जी अयोध्या का राज त्याग कर जंगल में साधना करने गया। जहाँ पर वह योग भ्रष्ट होकर हिरण के जन्म को प्राप्त होकर दुर्गति को प्राप्त होकर नष्ट हो गया।

अब भरत जी के पूज्य पिता जी व गुरुदेव श्री ऋषभदेव जी के जीवन पर विवेचन करते हैं जो योग भ्रष्ट नहीं हुए थे तथा वेदों में वर्णित विधि से गुरु से दिक्षा प्राप्त करके आजीवन साधना करते रहे। श्री ऋषभदेव जी को पवित्र जैन धर्म का संस्थापक व प्रथम तीर्थ कर माना गया है।

श्री ऋषभदेव जी अन्त समय में दिगम्बर (निःवस्त्र) होकर मुख में पत्थर का टुकड़ा डाल कर बन में घूम रहे थे। अचानक जंगल में आग लगी। जिस दावानल में श्री ऋषभदेव जी का स्थूल शरीर नष्ट हो गया अर्थात् श्री ऋषभदेव जी की मृत्यु हो गई। (यह प्रमाण श्रीमद्भागवत् सुधा सागर अध्याय 9 पृष्ठ 280-281 पर है)

उपरोक्त विवरण से पाठक जन कृप्या स्वयं निर्णय करें श्री ऋषभदेव जी मुक्त हुए या दुर्गति को प्राप्त हुए।

इस के पश्चात् श्री ऋषभदेव जी वाला ही जीव बाबा आदम बना। (प्रमाण :- "आओ जैन धर्म को जाने" पुस्तक के पृष्ठ 154 पर)

हजरत आदम जी को पवित्र इसाई धर्म व पवित्र मुस्लमान धर्म के श्रद्धालु अपना मुखिया मानते हैं। अर्थात् दोनों धर्मों के सर्वश्रेष्ठ सन्त व प्रमुख हजरत आदम जी हैं। आदम जी के दो पुत्र हुए। एक का नाम कार्बन तथा छोटे का नाम हाबिल था। इर्षावश कार्बन ने अपने छोटे भाई हाबिल की हत्या कर दी। फिर शाप वश कार्बन भी गांव व देश त्याग कर चला गया। बाबा आदम जी को महाकष्ट का सामना करना पड़ा। पश्चात् अन्य पुत्र हुआ। उससे आदम जी का कुल व भक्ति प्रारम्भ हुई। नौ सौ वर्ष की आयु में आदम जी की मृत्यु हुई। (प्रमाण पवित्र बाईबल में) पश्चात् बाबा आदम जी पितर लोक में पितर बने। वहाँ पितर लोक में विराजमान होकर भी बाबा आदम सुखी नहीं हुए। प्रमाण :- जीवनी हजरत मुहम्मद लेखक मुहम्मद इनायतुल्लाह सुहानी पृष्ठ 157 से 165 लिखा है कि "हजरत मुहम्मद जी को एक फरिस्ता ऊपर स्वर्ग में ले गया। वहाँ अन्य नबी देखे तथा एक स्थान पर एक व्यक्ति देखा जो बाई ओर मुख करके रो रहा था या दाई ओर मुख करके हंस रहा था। हजरत मुहम्मद जी के पूछने पर फरिस्ता जब्रील ने बताया कि यह हजरत आदम है रोने व हंसने का कारण बताते हुए हजरत जब्रील ने बताया कि बाई ओर नरक में निक्कमी सन्तान कष्ट उठा रही है। उनको देख कर हजरत आदम जी रोते हैं तथा दाई ओर स्वर्ग में पुण्यकर्मी सन्तान सुखपूर्वक रह रही है उन्हें देखकर हंसते हैं। विचार करें पाठक जन हजरत आदम जी ही श्री ऋषभदेव हैं साधना करके ऊपर स्वर्ग में बने पितर लोक में पितर बने है। जिस साधना के करने से दोनों पवित्र धर्मों (इसाई धर्म व मुस्लमान धर्म) का प्रमुख तथा पवित्र जैन धर्म का प्रमुख भी पूर्ण मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सका। जो इस पृथ्वी लोक व ऊपर स्वर्ग लोक में भी सुखी नहीं तो योग भ्रष्ट होकर उनका (श्री ऋषभ देव जी का) शिष्य तथा पुत्र कैसे परमगति को प्राप्त हो सका। इसी प्रकार श्री ऋषभदेव जी का पौत्र (भरत का पुत्र) मारिची जो योग भ्रष्ट भी नहीं हुआ तथा वेदों के अनुसार साधना अपने दादा जी ऋषभदेव जी से दिक्षा लेकर करता था। वह भी दुर्गति को प्राप्त हुआ। जिसने करोड़ों बार कुत्ते के जीवन भोगे, करोड़ों बार गधे के जन्म प्राप्त हुए तथा करोड़ों बार अन्य प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाया तथा केवल अस्सी लाख बार देव बन कर पुण्य को स्वर्ग में भोगा। फिर नरक में गया। फिर जैन धर्म का चौबीसवां तीर्थकर "श्री महावीर जैन" बना श्री महावीर जैन जी ने 363 (तीन सौ तरेसठ) पाखण्ड मत चलाए। यह ब्रह्म (काल) द्वारा दिये गीता व वेद ज्ञान अनुसार साधना का फल है। (प्रमाण :- पुस्तक "आओ जैन धर्म को जाने" पृष्ठ 294 से 296 जिसके लेखक प्रवीण चन्द्र जैन (एम.ए. शास्त्री) प्रकाशक श्री मति सुनिता जैन जम्बुद्वीप हस्थीनापुर मेरठ उत्तर-प्रदेश)

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि योग भ्रष्ट साधक नष्ट हो जाता है वह न यहाँ का रहता है न वहाँ का। क्योंकि यदि यहाँ अच्छे कुल में जन्म लेकर भी एक दिन त्याग कर जाएगा। वहाँ परलोक में अपने पुण्य समाप्त करके वहाँ से भी निकल जाएगा। इसलिए उसका तो नाश ही होता है अध्याय 6 श्लोक 43 का भावार्थ है कि योग भ्रष्ट होने से पूर्व की साधना के प्रभाव से मानव शरीर में परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। योग भ्रष्ट होने से पूर्व वाली भक्ति कमाई से ही वह (श्लोक 41-42 में कहे) स्वर्गादि लोकों व अच्छे व्यक्तियों के घर जन्म प्राप्त करता है। उस पूर्व की भक्ति कमाई को नष्ट करने के पश्चात् कभी मानव शरीर प्राप्त होता है तब भी वह पूर्व संस्कार वश भक्ति का प्रयत्न करता है। श्लोक 44 में कहा कि उस पूर्व के उगमग होने वाले स्वभाव वश हुआ परमात्मा को प्राप्त करने वाला जिज्ञासु होकर भी सद्ग्रन्थों में वर्णित परमात्मा की यर्थाथ नाम जाप की विधि का भी उल्लंघन कर जाता है। अर्थात् फिर से पतन को प्राप्त हो जाता है। इसलिए

गीता अध्याय 6 श्लोक 45 में कहा है कि जो साधक योगभ्रष्ट नहीं होता वह प्रत्येक जन्म में वेदों में वर्णित साधना करता रहता है। उस का स्वभाव निष्चल होता है। वह प्रयत्न पूर्वक योग नष्ट न हो कर साधना करने वाला अर्थात् तत्त्वदर्शी सन्त मिलने पर उस के द्वारा बताए भक्ति मार्ग पर चल कर पूर्व के अनेकों जन्मों में की ब्रह्म (काल) साधना इसी को त्याग कर पाप मुक्त होकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होता है अर्थात् परमगति को प्राप्त होता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि सर्वधमान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् ब्रज अहम् त्वा सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः (66)

शब्दार्थ :- (माम्) मुझ ब्रह्म की (सर्वधर्मान्) सर्व धार्मिक अनुष्ठानों की पूजा को मुझ में (परित्यज्य) त्यागकर (एकम्) उस अद्वितीय परमात्मा अर्थात् जिसके समान शक्तिशाली व कल्याण करने वाला अन्य नहीं है उस एक परमेश्वर की (शरणम्) शरण में (ब्रज) जा (अहम्) मैं (त्वा) तेरे (सर्वपापेभ्यः) सम्पूर्ण पापों से (मोक्षयिष्यामि) छुड़वा दूंगा अर्थात् मुक्त कर दूंगा (मा शुचः) चिन्ता मत कर।

भावार्थ :- गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि तू अनेक जन्मों में कि हुई मेरी पूजा को मुझे प्रदान कर दे (मुझमें छोड़ दे) तब मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा।

कारण क्या है?:- हम युगों-2 से वेदों अनुसार साधना भी करते आ रहे हैं। उस भक्ति की कमाई को स्वर्ग में निवास करके या राजा आदि उच्च पद प्राप्त करके समाप्त कर देते हैं। तत्त्वदर्शी सन्त के ज्ञान के पश्चात् हम काल (ब्रह्म) के लोक की किसी भी सुविधा की अपेक्षा नहीं करेंगे। वह पुण्य कमाई ब्रह्म को छोड़ देंगे। यह हमें ऋण मुक्त कर देगा। फिर जो कष्ट पाप के कारण नरक व अन्य प्राणियों के शरीरों में भोगना पड़ता था वह नहीं भोगना पड़ेगा। पूर्ण परमात्मा की शरण में जाने के पश्चात् उस पूर्व ब्रह्म का नियम हमारे ऊपर लागू नहीं रहता। ब्रह्म के लोक में पुण्य तथा पाप भिन्न-2 भोगने अनिवार्य है। पूर्ण परमात्मा की शरण में जाने के पश्चात् ब्रह्म के नाम (ब्रह्म शब्द) की कमाई इसी को छोड़ देते हैं। तब हम पूर्व के पापों से छूट जाते हैं फिर वह पाप मुक्त योगी परमगति को प्राप्त होता है अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। उसका पुनर् जन्म नहीं होता।

॥ पूर्ण योगी कौन? ॥

अध्याय 6 के श्लोक 46 में भगवान कह रहा है कि सत्यनाम साधक तपस्वियों से तथा गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 तक में वर्णित ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ हैं तथा सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तू कर्मयोगी (नाम का साधक) हो जा।

विचार करें :- योगी वह हो सकता है जो मन इन्द्रियों को वश कर ले। यह अति असम्भव है, मन वश हुए बिना मुक्ति नहीं और मन न तो श्री ब्रह्मा जी के वश हुआ क्योंकि श्री ब्रह्मा जी अपनी ही पुत्री पर आसक्त हो गए थे। मन न श्री शिवजी के वश हुआ। क्योंकि श्री शिवजी भी भगवान विष्णु द्वारा मोहिनी अप्सरा का रूप बनाने पर उस मोहिनी पर आसक्त होकर उस के पीछे सैक्स (संभोग) करने के उद्देश्य से चल पड़े थे तथा उनका शुक्रपात भी हो गया था। मन न श्री विष्णु जी के वश हुआ क्योंकि जिस समय श्री विष्णु जी ने वरहा रूप धारण करके शंखासुर का वध किया था। उस समय पृथ्वी देवी को देखकर उससे सैक्स (संभोग) किया। (ये उपरोक्त प्रमाण पुराणों में हैं) अब स्वयं पाठक विचार करें कि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिवजी भी वेदों में वर्णित

साधना करते हैं। उस साधना से इन तीन लोक के प्रधानों का मन वश नहीं हुआ तो अन्य साधक का कही ठिकाना है? अध्याय 6 के श्लोक नं. 47 में कहा है सब साधकों में भी पूर्ण श्रद्धा मेरे में रखने वाले मुझे मान्य हैं। चूंकि भक्ति चाहे ब्रह्म की करो चाहे परब्रह्म की और चाहे पूर्णब्रह्म की, वह श्रद्धा पूर्वक की जानी चाहिए। तभी उस इष्ट का पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकता है। परन्तु वे मेरे साधक भी अधूरी साधना में ही लीन हैं, क्योंकि ब्रह्म(काल) साधक भी कर्म दण्ड से नहीं बचते। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 40 में भी है तथा गीता अध्याय 7 श्लोक 18, में भी प्रमाण है। इसमें स्पष्ट है कि सम्पूर्ण योगियों (काल उपासको) में भी जो श्रद्धावान मतानुसार लगे हुए सच्चे मन से मुझ(ब्रह्म) को भजता है वह मेरे विचार से सिद्धि प्राप्त है अर्थात् साधना सफल है। मतानुसार का तात्पर्य है कि सब देवी-देवताओं की साधना व व्रत त्याग कर तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की साधना भी त्याग कर अव्याभिचारिणी भक्ति करना अर्थात् एक इष्ट की अनन्य मन से भक्ति करने को मतावलम्बी या मतानुसार साधना कहा है। फिर भी अपनी साधना को अनुत्तम ही कहा है क्योंकि पवित्र गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपनी साधना से प्राप्त होने वाली गति को अनुत्तम (अश्रेष्ठ) कहा है। फिर पवित्र गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में संकेत किया है कि यदि पूर्ण मोक्ष रूप परम शान्ति व सत्यलोक स्थान को प्राप्त करना है तो उस परमेश्वर (पूर्ण ब्रह्म) की शरण में जा।



॥छठवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक॥

परमात्मने नमः

अथ षष्ठोऽध्यायः

अध्याय 6 का श्लोक 1

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः । १ ।

अनाश्रितः, कर्मफलम्, कार्यम्, कर्म, करोति, यः,

सः, सन्न्यासी, च, योगी, च, न, निरग्निः, न, च, अक्रियः ॥ 1 ॥

अनुवाद : (यः) जो साधक (कर्मफलम्) कर्मफलका (अनाश्रितः) आश्रय न लेकर (कार्यम्) शास्त्र विधि अनुसार करनेयोग्य (कर्म) भक्ति कर्म (करोति) करता है (सः) वह (सन्न्यासी) संन्यासी अर्थात् शास्त्र विरुद्ध साधना कर्मों को त्यागा हुआ व्यक्ति (च) तथा (योगी) योगी अर्थात् भक्त है (च) और (निरग्निः) वासना रहित (न) नहीं है (च) तथा केवल (अक्रियः) एक स्थान पर बैठ कर विशेष आसन आदि लगा कर लोक दिखावा करके क्रियाओंका त्याग करने वाला भी योगी (न) नहीं है। भावार्थ है कि जो हठ योग करके दम्भ करता है मन में विकार है, ऊपर से निष्क्रिय दिखता है वह न सन्न्यासी है, न ही कर्मयोगी अर्थात् भक्त है। (1)

अध्याय 6 का श्लोक 2

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।

न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन । २ ।

यम्, सन्न्यासम्, इति, प्राहुः, योगम्, तम्, विद्धि पाण्डव,

न, हि, असन्न्यस्तसङ्कल्पः, योगी, भवति, कश्चन ॥ 2 ॥

अनुवाद : (पाण्डव) हे अर्जुन! (यम्) जिसको (सन्न्यासम्) सन्न्यास (इति) ऐसा (प्राहुः) कहते हैं (तम्) उस (योगम्) भक्ति ज्ञान योग को (विद्धि) जान (हि) क्योंकि (असन्न्यस्तसङ्कल्पः) संकल्पोंका त्याग न करनेवाला (कश्चन) कोई भी पुरुष (योगी) योगी (न) नहीं (भवति) होता। (2) गरीब, एक नारी त्याग दीन्हीं, पाँच नारी गैल बे।

पाया न द्वारा मुक्ति का, सुखदेव करी बहु सैल बे ॥

भावार्थ है कि एक पत्नी को त्याग कर सन्न्यास प्रस्त हो गए परंतु पाँच विकार(काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) रूपी पत्नियों साथ ही हैं अर्थात् संकल्प अभी भी रहे, ये त्यागों, तब सन्न्यासी होवोगे। जैसे सुखदेव जी सन्न्यासी बन कर बहुत फिरा परंतु मान-बड़ाई नहीं त्यागी जिसके कारण विफल रहा।

अध्याय 6 का श्लोक 3

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते । ३ ।

आरुरुक्षोः, मुनेः, योगम्, कर्म, कारणम्, उच्यते,

योगारूढस्य, तस्य, एव, शमः, कारणम्, उच्यते ॥ 3 ॥

अनुवाद : (योगम्) योग अर्थात् भक्ति में (आरुरुक्षोः) आरूढ होनेकी इच्छावाले (मुनेः) मननशील साधकके लिये (कर्म) शास्त्र अनुकूल भक्ति कर्म करना ही (कारणम्) हेतु अर्थात् भक्ति का उद्देश्य (उच्यते) कहा जाता है (तस्य) उस (योगारूढस्य) भक्ति में संलग्न साधकका (शमः) जो सर्वसंकल्पोका अभाव है वही (एव) वास्तव में (कारणम्) भक्ति करने का कारण अर्थात् हेतु (उच्यते) कहा जाता है। (3)

अध्याय 6 का श्लोक 4

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।

सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते। ४।

यदा, हि, न, इन्द्रियार्थेषु, न, कर्मसु, अनुषज्जते,

सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी, योगारूढः, तदा, उच्यते।।4।।

अनुवाद : (यदा) जिस समयमें (न) न तो (इन्द्रियार्थेषु) इन्द्रियोंके भोगोंमें और (न) न (कर्मसु) कर्मोंमें (हि) ही (अनुषज्जते) आसक्त होता है (तदा) उस स्थितिमें (सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी) सर्वसंकल्पोका त्यागी पुरुष (योगारूढः) वास्तव में भक्ति में दृढ़ निश्चय से संलग्न (उच्यते) कहा जाता है। (4)

अध्याय 6 का श्लोक 5

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः। ५।

उद्धरेत्, आत्मना, आत्मानम्, न, आत्मानम्, अवसादयेत्,

आत्मा, एव, हि, आत्मनः, बन्धुः, आत्मा, एव, रिपुः, आत्मनः।।5।।

अनुवाद : (आत्मना) पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप में रहता है के तत्त्वज्ञान को ध्यान में रखते हुए शास्त्र अनुकूल साधना से अपने द्वारा (आत्मानम्) अपनी आत्माका (उद्धरेत्) उद्धार करे और (आत्मानम्) अपनेको (न अवसादयेत्) बर्बाद न करे (हि) क्योंकि (आत्मा) शास्त्र अनुकूल साधक को पूर्ण परमात्मा विशेष लाभ प्रदान करता है वही प्रभु आत्मा के साथ अभेद रूप में रहता है, इसलिए वह आत्म रूप परमात्मा (एव) वास्तव में (आत्मनः) आत्माका (बन्धुः) मित्र है और (आत्मा) शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना आचरण करने से जीवात्मा (एव) वास्तव में (आत्मनः) स्वयं का (रिपुः) शत्रु है। (5)

अध्याय 6 का श्लोक 6

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्। ६।

बन्धुः, आत्मा, आत्मनः, तस्य, येन, आत्मा, एव, आत्मना, जितः,

अनात्मनः, तु, शत्रुत्वे, वर्तेत, आत्मा, एव, शत्रुवत्।।6।।

अनुवाद : (आत्मनः) जो आत्मा शास्त्रानुकूल साधना करता है (तस्य) उसका (बन्धुः) आत्मा पूर्ण परमात्मा ही साथी है (येन) जिस कारण से (एव) वास्तव में (आत्मना) शास्त्र अनुकूल साधक की आत्मा के साथ पूर्ण परमात्मा की शक्ति विशेष कार्य करती है जैसे बिजली का कनेक्शन लेने पर मानव शक्ति से न होने वाले कार्य भी आसानी से हो जाते हैं। ऐसे पूर्ण परमात्मा से (आत्मा)

जीवात्मा की (जितः) विजय होती है अर्थात् सर्व कार्य सिद्ध तथा सर्व सुख प्राप्त होता है तथा परमगति को अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है तथा मन व इन्द्रियों पर भी वही विजय प्राप्त करता है। (तु) परन्तु इसके विपरीत जो शास्त्र अनुकूल साधना नहीं करते उनकी आत्मा को पूर्ण प्रभु का विशेष सहयोग प्राप्त नहीं होता, वह केवल कर्म संस्कार ही प्राप्त करता रहता है इसलिए (अनात्मनः) पूर्ण प्रभु के सहयोग रहित जीवात्मा (शत्रुत्वे) स्वयं दुश्मन जैसा (वर्तेत) व्यवहार करता है (एव) वास्तव में वह साधक (आत्मा) अपना ही (शत्रुवत्) शत्रु तुल्य है अर्थात् शास्त्र विधि को त्याग कर मनमाना आचरण अर्थात् मनमुखी पूजायें करने वाले को न तो सुख प्राप्त होता है न ही कार्य सिद्ध होता है, न परमगति ही प्राप्त होती है, प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 मंत्र 23-24. (6)

अध्याय 6 का श्लोक 7

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः । ७ ।

जितात्मनः, प्रशान्तस्य, परमात्मा, समाहितः,
शीतोष्णसुखदुःखेषु, तथा, मानापमानयोः ।। 7 ।।

अनुवाद : उपरोक्त श्लोक 6 में जिस विजयी आत्मा का विवरण है उसी से सम्बन्धित है कि वह (जितात्मनः) परमात्मा के कृप्या पात्र विजयी आत्मा अर्थात् शास्त्र अनुकूल साधना करने से प्रभु से सर्व सुख व कार्य सिद्धि प्राप्त हो रही है वह (प्रशान्तस्य) पूर्ण संतुष्ट साधक (परमात्मा) पूर्ण प्रभु के ऊपर (समाहितः) पूर्ण रूपेण आश्रित है अर्थात् उसको किसी अन्य से लाभ की चाह नहीं रहती। वह तो (शीतोष्ण) सर्दी व गर्मी अर्थात् (सुख दुःखेषु) सुख व दुःख में (तथा) तथा (मान-अपमानयोः) मान व अपमान में भी प्रभु की इच्छा जान कर ही निश्चिंत रहता है। (7)

अध्याय 6 का श्लोक 8

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः । ८ ।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थः, विजितेन्द्रियः,
युक्तः, इति, उच्यते, योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।। 8 ।।

अनुवाद : (ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा) जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञान से तृप्त है (कूटस्थः) जिसकी जीवात्मा की स्थिति विकाररहित है (विजितेन्द्रियः) प्रभु के सहयोग से जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और (समलोष्टाश्म काञ्चनः) जिसके लिये मिट्टी पत्थर और सुवर्ण समान हैं वह (योगी) शास्त्र अनुकूल साधक (युक्तः) युक्त अर्थात् भगवत्प्राप्त है (इति) यह अन्तिम (उच्यते) ठीक सही भक्ति करने वाला कहा जाता है। (8)

अध्याय 6 का श्लोक 9

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते । ९ ।

सुहृद् मित्र अरि उदासीन मध्यस्थ द्वेष्य बन्धुषु ,
साधुषु, अपि, च, पापेषु, समबुद्धिः, विशिष्यते ।। 9 ।।

अनुवाद : (सुहृद्) सुहृद्, (मित्र) मित्र, (अरि) वैरी, (उदासीन) उदासीन, (मध्यस्थ) मध्यस्थ, (द्वेष्य)

द्वेष्य और (बन्धुषु) बन्धुगणोंमें (साधुषु) धर्मात्माओंमें (च) और (पापेषु) पापियोंमें (अपि) भी (समबुद्धिः) समान भाव रखनेवाला (विशिष्यते) अत्यन्त श्रेष्ठ है। (9)

(श्लोक 10 से 15 में ब्रह्म ने अपनी पूजा के ज्ञान की अटकल लगाई है)

अध्याय 6 का श्लोक 10

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।

एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।१०।

योगी, युजीत, सततम्, आत्मानम्, रहसि, स्थितः,

एकाकी, यतचित्तात्मा, निराशीः, अपरिग्रहः।।10।।

अनुवाद : (यतचित्तात्मा) मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें रखनेवाला (निराशीः) आशारहित और (अपरिग्रहः) संग्रहरहित (योगी) साधक (एकाकी) अकेला ही (रहसि) एकान्त स्थानमें रहता है तथा (स्थितः) स्थित होकर (आत्मानम्) आत्माको (सततम्) निरन्तर परमात्मामें (युजीत) लगावे। (10)

अध्याय 6 का श्लोक 11

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।११।

शुचौ, देशे, प्रतिष्ठाप्य, स्थिरम्, आसनम्, आत्मनः,

न, अत्युच्छ्रितम्, न, अतिनीचम्, चैलाजिनकुशोत्तरम्।।11।।

अनुवाद : (शुचौ) शुद्ध (देशे) स्थान में जिसके ऊपर क्रमशः (चैलाजिनकुशोत्तरम्) कुशा मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं जो (न) न (अत्युच्छ्रितम्) बहुत ऊँचा है और (न) न (अतिनीचम्) बहुत नीचा ऐसे (आत्मनः) अपने (आसनम्) आसनको (स्थिरम्) स्थिर (प्रतिष्ठाप्य) स्थापन करके। (11)

अध्याय 6 का श्लोक 12

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।

उपविश्यासने युज्याद्योगमात्मविशुद्ध्यै।१२।

तत्र, एकाग्रम्, मनः, कृत्वा, यतचित्तेन्द्रियक्रियः,

उपविश्य, आसने, युज्यात्, योगम्, आत्मविशुद्ध्यै।।12।।

अनुवाद : (तत्र) उस (आसने) आसनपर (उपविश्य) बैठकर (यतचित्तेन्द्रियक्रियः) चित और इन्द्रियोंकी क्रियाओंको वशमें रखते हुए (मनः) मनको (एकाग्रम्) एकाग्र (कृत्वा) करके (आत्मविशुद्ध्यै) अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये (योगम्) साधना का (युज्यात्) अभ्यास करे। (12)

अध्याय 6 का श्लोक 13

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।१३।

समम्, कायशिरोग्रीवम्, धारयन्, अचलम्, स्थिरः,

सम्प्रेक्ष्य, नासिकाग्रम्, स्वम्, दिशः, च, अनवलोकयन्।।13।।

अनुवाद : (कायशिरोग्रीवम्) काया सिर और गर्दन को (समम्) समान एवम् (अचलम्) स्थिर (धारयन्) धारण करके (च) और (स्थिरः) स्थिर होकर (स्वम्) अपनी (नासिकाग्रम्) नासिकाके

अग्रभागपर (सम्प्रेक्ष्य) दृष्टि जमाकर अन्य (दिशः) दिशाओंको (अनवलोकयन्) न देखता हुआ।
(13)

अध्याय 6 का श्लोक 14

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः। १४।

प्रशान्तात्मा, विगतभीः, ब्रह्मचारिव्रते, स्थितः,
मनः, संयम्य, मच्चित्तः, युक्तः, आसीत्, मत्परः।।14।।

अनुवाद : (ब्रह्मचारिव्रते) ब्रह्मचारीके व्रतमें (स्थितः) स्थित (विगतभीः) भयरहित तथा (प्रशान्तात्मा) भलीभाँति शान्त अन्तःकरणवाला (मनः) मनको (संयम्य) रोककर (मच्चित्तः) लीन चित्तवाला (मत्परः) मतावलम्बी मत् अनुसार अर्थात् जो काल विचार दे रहा है ऐसे करता हुआ (युक्तः) साधना में संलग्न (आसीत्) स्थित होवे। (14)

अध्याय 6 का श्लोक 15

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति। १५।

युजन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, नियतमानसः,
शान्तिम्, निर्वाणपरमाम्, मत्संस्थाम्, अधिगच्छति।।15।।

अनुवाद : (एवम्) इस प्रकार (सदा) निरन्तर (नियतमानसः) मेरे द्वारा उपरोक्त हठयोग बताया गया है उस के अनुसार मन को वश में करके (आत्मानम्) स्वयं को परमात्मा के (युजन्) साधना में लगाता हुआ (मत्संस्थाम्) जैसे कर्म करेगा वैसा ही फल प्राप्त होने वाले नियमित सिद्धांत के आधार से मेरे ही ऊपर आश्रित रहने वाला (योगी) साधक (निर्वाण परमाम्) अति शान्त अर्थात् समाप्त प्रायः (शान्तिम्) शान्ति को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है अर्थात् मेरे से मिलने वाली नाम मात्र मुक्ति को प्राप्त होता है। अपनी मुक्ति को गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में स्वयं ही अति अश्रेष्ठ कहा है। गीता अध्याय 6 श्लोक 23 में अनिर्वणम् का अर्थात् न उकताए अर्थात् न मुझाए किया है इसलिए निर्वाणम् का अर्थ मुझायी हुई अर्थात् मरी हुई नाम मात्र की शान्ति हुई। (15)

विशेष :- उपरोक्त गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में एक स्थान पर विशेष आसन पर विराजमान होकर हठ करके ध्यान व दृष्टि नाक के अग्र भाग पर लगाने आदि की सलाह दी है तथा गीता अध्याय 3 श्लोक 5 से 9 तक इसी को मना किया है।

(श्लोक 16 से 30 तक पूर्ण परमात्मा के विषय में ज्ञान है)

अध्याय 6 का श्लोक 16

नात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्रतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन। १६।

न, अति, अश्रतः, तु, योगः, अस्ति, न, च, एकान्तम्, अनश्रतः,
न, च, अति, स्वप्नशीलस्य, जाग्रतः, न, एव, च, अर्जुन।।16।।

अनुवाद : उपरोक्त श्लोक 10 से 15 में वर्णित विधि वाली एकान्त में बैठ कर विशेष आसन आदि लगा कर साधना करना तो मेरे तक का लाभ प्राप्ति मात्र है, यह वास्तव में श्रेष्ठ नहीं है। गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपने द्वारा दिए जाने वाले लाभ (गति) को अश्रेष्ठ बताया है। इसलिए

(अर्जुन) हे अर्जुन (तु) इसके विपरीत उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करने वाली (योग) भक्ति (न एकान्तम्) न तो एकान्त स्थान पर विशेष आसन या मुद्रा में बैठने से तथा (न) न ही (अति) अत्यधिक (अश्नतः) खाने वाले की (च) और (अनश्नतः) न बिल्कुल न खाने वाले अर्थात् व्रत रखने वाले की (च) तथा (न) न ही (अति) बहुत (स्वप्नशीलस्य) शयन करने वाले की (च) तथा (न) न (एव) ही (जाग्रतः) हठ करके अधिक जागने वाले की (अस्ति) सिद्ध होती है अर्थात् उपरोक्त श्लोक 10 से 15 में वर्णित विधि व्यर्थ है। (16)

अध्याय 6 का श्लोक 17

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा। १७।

युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य, कर्मसु,
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगः, भवति, दुःखहा।।17।।

अनुवाद : (दुःखहा) दुःखोंका नाश करनेवाला (योगः) भक्ति तो (युक्ताहारविहारस्य) यथायोग्य आहार-विहार करनेवालेका (कर्मसु) शास्त्र अनुसार कर्मोंमें (युक्तचेष्टस्य) यथायोग्य चेष्टा करनेवालेका और (युक्तस्वप्नावबोधस्य) यथायोग्य सोने तथा जागने वालेका ही सिद्ध (भवति) होता है। (17)

अध्याय 6 का श्लोक 18

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा। १८।

यदा, विनियतम्, चित्तम्, आत्मनि, एव, अवतिष्ठते,
निःस्पृहः, सर्वकामेभ्यः, युक्तः, इति, उच्यते, तदा।।18।।

अनुवाद : (विनियतम्) एक पूर्ण परमात्मा की शास्त्र अनुकूल भक्ति में अत्यन्त नियमित किया हुआ (चित्तम्) चित (यदा) जिस स्थितिमें (आत्मनि) परमात्मा में (एव) ही (अवतिष्ठते) भलीभाँति स्थित हो जाता है (तदा) उस कालमें (सर्वकामेभ्यः) सम्पूर्ण मनोकामनाओंसे (निःस्पृहः) मुक्त (युक्तः) भक्तियुक्त अर्थात् भक्ति में संलग्न है (इति) ऐसा (उच्यते) कहा जाता है। (18)

अध्याय 6 का श्लोक 19

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः। १९।

यथा, दीपः, निवातस्थः, न, इंगते, सा, उपमा, स्मृता,
योगिनः, यतचित्तस्य, युञ्जतः, योगम्, आत्मनः।।19।।

अनुवाद : (यथा) जिस प्रकार (निवातस्थः) वायुरहित स्थानमें स्थित (दीपः) दीपक (न,इंगते) चलायमान नहीं होता (सा) वैसी ही (उपमा) उपमा (आत्मनः) शास्त्र अनुकूल साधक आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा अर्थात् पूर्ण ब्रह्म की (योगम्) साधना में (युञ्जतः) लगे हुए (यत) प्रयत्न शील (योगिनः) साधक के (चित्तस्य) चित्तकी (स्मृता) सुमरण स्थिति कही गयी है। (19)

अध्याय 6 का श्लोक 20

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति। २०।

यत्र, उपरमते, चित्तम्, निरुद्धम्, योगसेवया,
यत्र, च, एव, आत्मना, आत्मानम्, पश्यन्, आत्मनि, तुष्यति।।20।।

अनुवाद : (चित्तम्) चित (निरुद्धम्) निरुद्ध (योगसेवया) योगके अभ्याससे (यत्र) जिस अवस्थामें (उपरमते) ऊपर बताए मत - विचारों पर आधारित हो कर उपराम हो जाता है (च) और (यत्र) जिस अवस्थामें (आत्मना) शास्त्र अनुकूल साधक जीवात्मा द्वारा (आत्मानम्) आत्मा के साथ रहने वाले पूर्ण परमात्मा को सर्वत्र (पश्यन्) देखकर (एव) ही वास्तव में (आत्मनि) आत्मा से अभेद पूर्ण परमात्मा में (तुष्यति) संतुष्ट रहता है अर्थात् वह डगमग नहीं रहता। (20)

अध्याय 6 का श्लोक 21

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः। २१।

सुखम् आत्यन्तिकम्, यत्, तत्, बुद्धिग्राह्यम्, अतीन्द्रियम्,
वेत्ति, यत्र, न, च, एव, अयम्, स्थितः, चलति, तत्त्वतः।।21।।

अनुवाद : (अतीन्द्रियम्) इन्द्रियोंसे अतीत (बुद्धिग्राह्यम्) केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिद्वारा ग्रहण करने योग्य (यत्) जो (आत्यन्तिकम्) अनन्त (सुखम्) आनन्द है। कभी न समाप्त होने वाला सुख अर्थात् पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति पूर्ण मुक्ति के लिए प्रयत्न करता हुआ (तत्) उसको (यत्र) जिस अवस्थामें (वेत्ति) अनुभव करता है (च) और (एव) वास्तव में इस प्रकार (स्थितः) स्थित (अयम्) यह योगी (तत्त्वतः) तत्त्वज्ञानी (न,चलति) विचलित नहीं होता। (21)

अध्याय 6 का श्लोक 22

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। २२।

यम्, लब्ध्वा, च, अपरम्, लाभम्, मन्यते, न, अधिकम्, ततः,
यस्मिन्, स्थितः, न, दुःखेन, गुरुणा, अपि, विचाल्यते।।22।।

अनुवाद : (यम्) केवल एक पूर्ण परमात्मा की शास्त्र अनुकूल साधना से एक ही प्रभु पर मन को रोकने वाले साधक जिस (लाभम्) लाभको (लब्ध्वा) प्राप्त होकर (ततः) उससे (अधिकम्) अधिक (अपरम्) दूसरा कुछ भी लाभ (न,मन्यते) नहीं मानता (च) और (यस्मिन्) जिस कारण से (स्थितः) सत्य भक्ति पर अडिग साधक (गुरुणा) बड़े भारी (दुःखेन) दुःखसे (अपि) भी (न, विचाल्यते) चलायमान नहीं होता। (22)

अध्याय 6 का श्लोक 23

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा। २३।

तम्, विद्यात्, दुःखसंयोगवियोगम्, योगसंज्ञितम्,
सः, निश्चयेन, योक्तव्यः, योगः, अनिर्विण्णचेतसा।।23।।

अनुवाद : (तम्) अज्ञान अंधकार से अज्ञात पूर्ण परमात्मा के (योगसंज्ञितम्) वास्तविक भक्ति ज्ञान को (विद्यात्) जानना चाहिए। (दुःख संयोग) जो पापकर्मा के संयोग से उत्पन्न दुःख का (वियोगम्) अन्त अर्थात् छूटकारा करता है (सः) वह (योगः) भक्ति (अनिर्विण्णचेतसा) न उकताये अर्थात् न मुझाए हुए चितसे (निश्चयेन) निश्चयपूर्वक (योक्तव्यः) करना कर्त्तव्य है अर्थात् करनी चाहिए। (23)

अध्याय 6 का श्लोक 24

सङ्कल्पप्रभवान्कामान्स्थक्त्वा सर्वानशेषतः ।

मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः । २४ ।

संकल्पप्रभवान्, कामान्, त्यक्त्वा, सर्वान्, अशेषतः,

मनसा, एव, इन्द्रियग्रामम्, विनियम्य, समन्ततः ।। 24 ।।

अनुवाद : (संकल्पप्रभवान्) संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली (सर्वान्) सम्पूर्ण (कामान्) कामनाओंको (एव) वास्तव में (अशेषतः) जड़ामूल से अर्थात् समूल (त्यक्त्वा) त्यागकर और (मनसा) मनके द्वारा (इन्द्रियग्रामम्) इन्द्रियोंके (समन्ततः) सभी ओरसे (विनियम्य) भलीभाँति रोककर। (24)

अध्याय 6 का श्लोक 25

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् । २५ ।

शनैः, शनैः, उपरमेत्, बुद्ध्या, धृतिगृहीतया,

आत्मसंस्थम्, मनः, कृत्वा, न, किञ्चित्, अपि, चिन्तयेत् ।। 25 ।।

अनुवाद : (शनैः,शनैः) धीरे-धीरे अभ्यास करता हुआ (उपरमेत्) उपरोक्त दिए गए मत अर्थात् ज्ञान विचार द्वारा (धृतिगृहीतया) धैर्ययुक्त (बुद्ध्या) बुद्धिके द्वारा (मनः) मनको (आत्मसंस्थम्) पूर्ण परमात्मा में टिका कर अर्थात् स्थित (कृत्वा) करके (किञ्चित्) कुछ (अपि) भी (न,चिन्तयेत्) चिन्तन न करे। (25)

अध्याय 6 का श्लोक 26

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् । २६ ।

यतः, यतः, निश्चरति, मनः, चञ्चलम्, अस्थिरम्,

ततः, ततः, नियम्य, एतत्, आत्मनि, एव, वशम्, नयेत् ।। 26 ।।

अनुवाद : (एतत्) यह (अस्थिरम्) स्थिर न रहनेवाला और (चञ्चलम्) चंचल (मनः) मन (यतः,यतः) जहाँ-जहाँ (निश्चरति) विचरता है (ततः,ततः) उस उससे (नियम्य) हटाकर (आत्मनि) शास्त्र अनुकूल साधक पूर्ण परमात्मा की कृपा पात्र आत्मा अपने पूर्ण प्रभु के सहयोग से (एव) ही (वशम्) मनवश (नयेत्) करे। (26)

अध्याय 6 का श्लोक 27

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् । २७ ।

प्रशान्तमनसम्, हि, एनम्, योगिनम्, सुखम्, उत्तमम्,

उपैति, शान्तरजसम्, ब्रह्मभूतम्, अकल्मषम्।।27।।

अनुवाद : (एनम्) शास्त्र विधि त्यागकर साधना करना पाप है इसलिए इस पाप को (हि) निश्चय ही त्याग कर (प्रशान्तमनसम्) जिस शास्त्र अनुकूल साधक का मन भली प्रकार एक पूर्ण परमात्मा में शांत है (अकल्मषम्) जो पापसे रहित है, (शान्तरजसम्) जो भौतिक सुख नहीं चाहता (ब्रह्मभूतम्) परमात्मा के हंस (योगिनम्) विधिवत् साधक को (उत्तमम्) उत्तम (सुखम्) आनन्द (उपैति) प्राप्त होता है अर्थात् पूर्ण मुक्ति प्राप्त होती है। (27)

अध्याय 6 का श्लोक 28

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।।२८।।

युञ्जन्, एवम्, सदा, आत्मानम्, योगी, विगतकल्मषः,

सुखेन, ब्रह्मसंस्पर्शम्, अत्यन्तम्, सुखम्, अश्नुते।।28।।

अनुवाद : (विगतकल्मषः) पापरहित (योगी) साधक (एवम्) इस प्रकार (सदा) निरन्तर (युञ्जन्) साधना करता हुआ (आत्मानम्) अपने समर्पण भाव से (सुखेन) सुखपूर्वक (ब्रह्मसंस्पर्शम्) पूर्ण परमात्मा के मिलन रूप (अत्यन्तम्) कभी समाप्त न होने वाले (सुखम्) आनन्दका (अश्नुते) अनुभव करता है अर्थात् पूर्ण मुक्त हो जाता है। (28)

अध्याय 6 का श्लोक 29

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।२९।।

सर्वभूतस्थम्, आत्मानम्, सर्वभूतानि, च, आत्मनि,

ईक्षते, योगयुक्तात्मा, सर्वत्र, समदर्शनः।।29।।

अनुवाद : (योगयुक्तात्मा) भक्तियुक्त आत्मावाला (सर्वत्र) सबमें (समदर्शनः) समभावसे देखनेवाला (आत्मानम्) पूर्ण परमात्मा जो आत्मा के साथ अभेद रूप में है उसको (सर्वभूतस्थम्) सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित (च) और (सर्वभूतानि) सम्पूर्ण प्राणियों को (आत्मनि) अपने समान अर्थात् जैसा दुःख व सुख अपने होता है इस दृष्टिकोण से (ईक्षते) देखता है। (29)

(श्लोक नं 30-31 में अपनी भक्ति वाले साधक की स्थिति बताई है)

अध्याय 6 का श्लोक 30

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।३०।।

यः, माम्, पश्यति, सर्वत्र, सर्वम्, च, मयि, पश्यति,

तस्य, अहम्, न, प्रणश्यामि, सः, च, मे, न, प्रणश्यति।।30।।

अनुवाद : (यः) जो (सर्वत्र) सब जगह (माम्) मुझे (पश्यति) देखता है (च) और (सर्वम्) सर्व को (मयि) मुझमें (पश्यति) देखता है (तस्य) उसके लिये (अहम्) मैं (न, प्रणश्यामि) अदृश्य नहीं होता (च) और (सः) वह (मे) मेरे से (न, प्रणश्यति) अदृश्य नहीं होता अर्थात् वह तो मेरे ही जाल में मेरी दृष्टि है उसको पूर्ण ज्ञान नहीं है। (30)

अध्याय 6 का श्लोक 31

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते । ३१ ।

सर्वभूतस्थितम्, यः, माम्, भजति, एकत्वम्, आस्थितः,

सर्वथा, वर्तमानः, अपि, सः, योगी, मयि, वर्तते ।।31।।

अनुवाद : (यः) जो (एकत्वम्) एकीभावमें (आस्थितः) स्थित होकर (सर्वभूतस्थितम्) सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित (माम्) मुझे (भजति) भजता है (सः) वह (योगी) योगी (सर्वथा) सब प्रकारसे (वर्तमानः) इस समय (अपि) भी (मयि) मुझमें ही (वर्तते) बरतता है। (31)

(श्लोक नं 32 में पूर्ण परमात्मा की भक्ति तत्व दर्शी संत से प्राप्त करके करता है वही सर्व श्रेष्ठ है)

अध्याय 6 का श्लोक 32

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः । ३२ ।

आत्मौपम्येन, सर्वत्र, समम्, पश्यति, यः, अर्जुन,

सुखम्, वा, यदि, वा, दुःखम्, सः, योगी, परमः, मतः ।।32।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (यः) जो योगी (आत्मौपम्येन) शास्त्र अनुकूल साधना से आत्मा पूर्ण परमात्मा की कृपा पात्र हो जाती है उस पर प्रभु की विशेष कृपा होने से वह स्वयं भी परमात्मा की उपमा जैसा हो जाता है, इसलिए आत्मा के साथ अभेद रूप में रहने वाले परमात्मा को (सर्वत्र) सब जगह तथा सर्व प्राणियों में (समम्) सम (पश्यति) देखता है (वा) और (सुखम्) सुख (यदि, वा) अथवा (दुःखम्) दुःखको भी सबमें सम देखता है (सः) वह (मतः) शास्त्रानुकूल आचरण वाला (योगी) योगी (परमः) श्रेष्ठ है। (32)

(अर्जुन उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 33

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।

एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् । ३३ ।

यः, अयम्, योगः, त्वया, प्रोक्तः, साम्येन, मधुसूदन,

एतस्य, अहम्, न, पश्यामि, चञ्चलत्वात्, स्थितिम्, स्थिराम् ।।33।।

अनुवाद : (मधुसूदन) हे मधुसूदन! (यः) जो (अयम्) यह (योगः) योग (त्वया) आपने (साम्येन) समभावसे (प्रोक्तः) कहा है मनके (चञ्चलत्वात्) चंचल होनेसे (अहम्) मैं (एतस्य) इसकी (स्थिराम्) नित्य (स्थितिम्) स्थितिको (न) नहीं (पश्यामि) देखता हूँ। (33)

अध्याय 6 का श्लोक 34

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् । ३४ ।

चञ्चलम्, हि, मनः, कृष्ण, प्रमाथि, बलवत्, दृढम्,

तस्य, अहम्, निग्रहम्, मन्ये, वायोः, इव, सुदुष्करम् ।।34।।

अनुवाद : (हि) क्योंकि (कृष्ण) हे श्रीकृष्ण! यह (मनः) मन (चञ्चलम्) बड़ा चंचल (प्रमाथि)

प्रमथन स्वभाववाला (दृढम्) बड़ा दृढ और (बलवत्) बलवान् है। इसलिये (तस्य) उसका (निग्रहम्) वशमें करना (अहम्) मैं (वायोः) वायुको रोकनेकी (इव) भाँति (सुदुष्करम्) अत्यन्त दुष्कर (मन्ये) मानता हूँ। (34)

(भगवान् उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 35

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। ३५।

असंशयम्, महाबाहो, मनः, दुर्निग्रहम्, चलम्,

अभ्यासेन, तु, कौन्तेय, वैराग्येण, च, गृह्यते।।35।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (असंशयम्) निःसन्देह (मनः) मन (चलम्) चंचल और (दुर्निग्रहम्) कठिनतासे वशमें होनेवाला है (तु) परंतु (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह (अभ्यासेन) अभ्यास (च) और (वैराग्येण) वैराग्यसे (गृह्यते) वशमें होता है। (35)

अध्याय 6 का श्लोक 36

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।

वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः। ३६।

असंयतात्मना, योगः, दुष्प्रापः, इति, मे, मतिः,

वश्यात्मना, तु, यतता, शक्यः, अवाप्तुम्, उपायतः।।36।।

अनुवाद : (असंयतात्मना) जिसका मन वशमें किया हुआ नहीं है अर्थात् जो संयमी नहीं ऐसे पुरुषद्वारा (योगः) भक्ति (दुष्प्रापः) दुष्प्राप्य है (तु) परन्तु (वश्यात्मना) शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले अर्थात् मनमानी पूजा न करके वशमें किये हुए मनवाले (यतता) प्रयत्नशील पुरुषद्वारा (उपायतः) साधनसे उसका (अवाप्तुम्) प्राप्त होना (शक्यः) सम्भव है (इति) यह (मे) मेरा (मतिः) मत अर्थात् विचार है। (36)

(अर्जुन उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 37

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।

अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति। ३७।

अयतिः, श्रद्धया, उपेतः, योगात्, चलितमानसः,

अप्राप्य, योगसंसिद्धिम्, काम्, गतिम्, कृष्ण, गच्छति।।37।।

अनुवाद : (कृष्ण) हे श्रीकृष्ण! (श्रद्धया, उपेतः) जो योगमें श्रद्धा रखनेवाला है, किंतु (अयतिः) जो संयमी नहीं है (योगात्चलितमानसः) जिसका मन योगसे विचलित हो गया है, ऐसा साधक योगी (योगसंसिद्धिम्) योगकी सिद्धिको अर्थात् (अप्राप्य)न प्राप्त होकर (काम्)किस (गतिम्)गतिको (गच्छति) प्राप्त होता है। (37)

अध्याय 6 का श्लोक 38

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि। ३८।

कच्चित्, न, उभयविभ्रष्टः, छिन्नाभ्रम्, इव, नश्यति,
अप्रतिष्ठः, महाबाहो, विमूढः, ब्रह्मणः, पथि।।38।।

अनुवाद : (महाबाहो) हे महाबाहो! (कच्चित्) क्या वह (ब्रह्मणः) पूर्ण परमात्मा की प्राप्ति के (पथि) मार्ग से (विमूढः) भटका हुआ मूर्ख (अप्रतिष्ठः) शास्त्र विधि त्याग कर साधना करने वाले साधक को प्रभु का आश्रय प्राप्त नहीं होता ऐसा आश्रयरहित पुरुष (छिन्नाभ्रम्) छिन्न भिन्न बादलकी (इव) भाँति (उभयविभ्रष्टः) दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर (न, नश्यति) नष्ट तो नहीं हो जाता? दुष्प्राय है अर्थात् भक्ति लाभ नहीं है। वह योग तो मनवश किए हुए को ही शक्य है। विचार करें फिर श्लोक 40 का यह अर्थ करना कि वह योग भ्रष्ट व्यक्ति न तो इस लोक में नष्ट होता है न परलोक में, न्याय संगत नहीं है। क्योंकि अध्याय 6 श्लोक 42 से 44 में भी यही प्रमाण है कहा है योग भ्रष्ट व्यक्ति योग भ्रष्ट होने से पूर्व के भक्ति संस्कार से कुछ दिन स्वर्ग में जाता है फिर अच्छे कुल में जन्म प्राप्त करता है परन्तु पुनः वह मानव जन्म इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। यदि मानव जन्म प्राप्त हो जाता है तो पूर्व के स्वभाववश मनमाना आचरण करके तत्त्वज्ञान का उल्लंघन कर जाता है। अर्थात् नष्ट हो जाता है। इसलिए श्लोक 40 का अनुवाद उपरोक्त सही है। अध्याय 6 श्लोक 45 में भी स्पष्ट है। (38)

अध्याय 6 का श्लोक 39

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते। ३९।

एतत्, मे, संशयम्, कृष्ण, छेत्तुम्, अर्हसि, अशेषतः,
त्वदन्यः, संशयस्य, अस्य, छेत्ता, न, हि, उपपद्यते।।39।।

अनुवाद : (कृष्ण) हे श्रीकृष्ण! (मे) मेरे (एतत्) इस (संशयम्) संशयको (अशेषतः) सम्पूर्णरूपसे (छेत्तुम्) छेदन करनेके लिये आपही (अर्हसि) योग्य हैं (हि) क्योंकि (त्वदन्यः) आपके सिवा दूसरा (अस्य) इस (संशयस्य) संशयका (छेत्ता) छेदन करनेवाला (न, उपपद्यते) मिलना सम्भव नहीं है। (39)

भावार्थ :- श्लोक 40 से 44 का भावार्थ है कि पहले वाले सर्व शुभ व अशुभ कर्मों का भोग स्वर्ग-नरक में भोग कर पिछले भक्ति स्वभाव के अनुसार तो भक्ति की तड़फ बन जाती है तथा पिछले स्वभाव से ही फिर पथ भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् पूर्ण संत न मिलने के कारण कभी मुक्त नहीं होता।

(भगवान उवाच)

अध्याय 6 का श्लोक 40

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। ४०।

पार्थ, न, एव, इह, न, अमुत्र, विनाशः, तस्य, विद्यते,
न, हि, कल्याणकृत्, कश्चित्, दुर्गतिम्, तात, गच्छति।।40।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (एव) वास्तव में पथ भ्रष्ट साधक (न) न तो (इह) यहाँ का रहता है (न) न (अमुत्र) वहाँ का रहता है। (तस्य) उसका (विनाशः) विनाश ही (विद्यते) जाना जाता है (हि) निसंदेह (कश्चित्) कोई भी व्यक्ति जो (न कल्याणकृत्) अन्तिम स्वांस तक मर्यादा से आत्म

कल्याण के लिए कर्म करने वाला नहीं है अर्थात् जो योग भ्रष्ट हो जाता है (तात) हे प्रिय वह तो (दुर्गतिम्) दुर्गति को (गच्छति) चला जाता है अर्थात् प्राप्त होता है। इसी का प्रमाण गीता अध्याय 4 श्लोक 40 में भी है। (40)

भावार्थ :- गीता जी अन्य अनुवाद कर्ताओं ने इस श्लोक 40 में लिखा है कि योग भ्रष्ट अर्थात् जिसका मन वश नहीं है वह साधक इस लोक में भी नष्ट नहीं होता तथा परलोक में भी नष्ट नहीं होता। जबकि अध्याय 6 श्लोक 36 में लिखा है कि मेरे मत (विचार) अनुसार जिसका मन वश नहीं है उस को भक्ति (योग) का लाभ मिलना दुष्प्राप्य है अर्थात् भक्ति लाभ नहीं है। वह योग तो मन वश किए हुए को ही शक्य है।

विचार करें फिर श्लोक 40 का यह अर्थ करना कि वह योग भ्रष्ट व्यक्ति न तो इस लोक में नष्ट होता है न परलोक में न्याय संगत नहीं है। क्योंकि अध्याय 6 श्लोक 42 से 44 तक में भी यही प्रमाण है कहा है योग भ्रष्ट व्यक्ति योग भ्रष्ट होने से पूर्व के भक्ति संस्कार से कुछ दिन स्वर्ग में जाता है फिर अच्छे कुल में मानव जन्म प्राप्त करता है। परन्तु पुनः वह मानव जन्म इस लोक में अत्यन्त दुर्लभ है। यदि मानव जन्म प्राप्त हो जाता है तो पूर्व के स्वभाव वश मनमाना आचरण करके तत्त्वज्ञान का उल्लंघन कर जाता है अर्थात् नष्ट हो जाता है। इसलिए श्लोक 40 का अनुवाद उपरोक्त सही है अध्याय 6 श्लोक 45 में भी स्पष्ट है।

उदाहरण :- जड़भरत नाम के योगी का एक हिरण के बच्चे में मोह हो जाने से भक्ति मार्ग से भ्रष्ट होने से हिरण का ही जन्म प्राप्त हुआ तथा दुर्गति को प्राप्त हुआ।

अध्याय 6 का श्लोक 41

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते। ४१।

प्राप्य, पुण्यकृताम्, लोकान्, उषित्वा, शाश्वतीः, समाः,

शुचीनाम्, श्रीमताम्, गेहे, योगभ्रष्टः, अभिजायते।।41।।

अनुवाद : (योगभ्रष्टः) योगभ्रष्ट पुरुष (पुण्यकृताम्) चौरासी लाख योनियों के कष्ट के बाद पुण्य कर्मों के आधार पर पुण्यवानोंके (लोकान्) लोकोंको अर्थात् स्वर्गादि लोकोंको (प्राप्य) प्राप्त होकर उनमें (शाश्वतीः) वेद वाणी के आधार से नियत (समाः) समय तक (उषित्वा) निवास करके फिर (शुचीनाम्) शुद्ध आचरणवाले (श्रीमताम्) अच्छे विचारों वाले अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों के (गेहे) घरमें (अभिजायते) जन्म लेता है, नीचे वाले श्लोक 43 में कहा है कि ऐसा जन्म दुर्लभ है। (41)

अध्याय 6 का श्लोक 42

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्। ४२।

अथवा, योगिनाम्, एव, कुले, भवति, धीमताम्,

एतत्, हि, दुर्लभतरम्, लोके, जन्म, यत्, ईदृशम्।।42।।

अनुवाद : (अथवा) अथवा (धीमताम्) ज्ञानवान् (योगिनाम्) योगियोंके (कुले) कुलमें (भवति) जन्म लेता है। (एव) वास्तव में (ईदृशम्) इस प्रकारका (यत्) जो (एतत्) यह (जन्म) जन्म है सो (लोके) संसारमें (हि) निःसन्देह (दुर्लभतरम्) अत्यन्त दुर्लभ है। (42)

अध्याय 6 का श्लोक 43

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन । ४३ ।

तत्र, तम्, बुद्धिसंयोगम्, लभते, पौर्वदेहिकम्,
यतते, च, ततः, भूयः, संसिद्धौ, कुरुनन्दन ।।43।।

अनुवाद : यदि (तत्र) वहाँ (तम्) वह (पौर्वदेहिकम्) पहले शरीरमें संग्रह किये हुए (बुद्धिसंयोगम्) बुद्धिके संयोगको अनायास ही (लभते) प्राप्त हो जाता है (च) और (कुरुनन्दन) हे कुरुनन्दन! (ततः) उसके पश्चात् (भूयः) फिर (संसिद्धौ) परमात्माकी प्राप्तिरूप सिद्धिके लिये (यतते) प्रयत्न करता है। (43)

अध्याय 6 का श्लोक 44

पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते । ४४ ।

पूर्वाभ्यासेन, तेन, एव, हियते, हि, अवशः, अपि, सः,
जिज्ञासुः, अपि, योगस्य, शब्दब्रह्म, अतिवर्तते ।।44।।

अनुवाद : (सः) वह पथभ्रष्ट साधक (अवशः) स्वभाव वश विवश हुआ (अपि) भी (तेन) उस (पूर्वाभ्यासेन) पहलेके अभ्याससे (एव) ही वास्तव में (हियते) आकर्षित किया जाता है (हि) क्योंकि (योगस्य) परमात्मा की भक्ति का (जिज्ञासुः) जिज्ञासु (अपि) भी (शब्दब्रह्म) परमात्मा की भक्ति विधि जो सद्ग्रन्थों में वर्णित है उस विधि अनुसार साधना न करके पूर्व के स्वभाव वश विचलित होकर उस वास्तविक नाम का जाप न करके प्रभु की वाणी रूपी आदेश का (अतिवर्तते) उल्लंघन कर जाता है। क्योंकि पूर्व स्वभाववश फिर विचलित हो जाता है। इसीलिए गीता अध्याय 7 श्लोक 16-17 में जिज्ञासु को अच्छा नहीं कहा है केवल ज्ञानी भक्त जो एक परमात्मा की भक्ति करता है वह श्रेष्ठ कहा है। गीता अध्याय 18 श्लोक 58 में भी प्रमाण है। (44)

अध्याय 6 का श्लोक 45

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् । ४५ ।

प्रयत्नात्, यतमानः, तु, योगी, संशुद्धकिल्बिषः,
अनेकजन्मसंसिद्धः, ततः, याति, पराम्, गतिम् ।।45।।

अनुवाद : (तु) इसके विपरीत (यतमानः) शास्त्र अनुकूल साधक जिसे पूर्ण प्रभु का आश्रय प्राप्त है वह संयमी अर्थात् मन वश किया हुआ प्रयत्नशील(प्रयत्नात्) सत्यभक्ति के प्रयत्न से (अनेकजन्मसंसिद्धः) अनेक जन्मों की भक्ति की कमाई से (योगी) भक्त (संशुद्धकिल्बिषः) पाप रहित होकर (ततः) तत्काल उसी जन्म में (पराम् गतिम्) श्रेष्ठ मुक्ति को (याति) प्राप्त हो जाता है। (45)

अध्याय 6 का श्लोक 46

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन । ४६ ।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन । ४६ ।

तपस्विभ्यः, अधिकः, योगी, ज्ञानिभ्यः, अपि, मतः, अधिकः,
कर्मिभ्यः, च, अधिकः, योगी, तस्मात्, योगी, भव, अर्जुन ॥46॥

अनुवाद : भगवान कह रहा है कि (योगी) तत्त्वदर्शी संत से ज्ञान प्राप्त करके साधना करने वाला नाम साधक मेरे द्वारा दिया (मतः) अटकल लगाया साधना का मत अर्थात् पूजा विधि के ज्ञान अनुसार जो श्लोक 10 से 15 तक में हठ योग का विवरण दिया है उनमें जो हठ करके भक्ति कर्म से जो साधना करते हैं उन (तपस्विभ्यः) तपस्वियों से (ज्ञानिभ्यः) गीता अध्याय 7 श्लोक 16-17 में वर्णित ज्ञानियों से (च) तथा (कर्मिभ्यः) कर्म करने वाले से अर्थात् शास्त्रविरुद्ध साधना करने वालों से (अपि) भी (अधिकः) श्रेष्ठ है। (तस्मात्) इसलिए (अर्जुन) हे अर्जुन गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में कहे तत्त्वदर्शी संत की खोज करके उस से उपदेश प्राप्त करके (योगी) शास्त्र अनुकूल भक्त (भव) हो। गीता अध्याय 2 श्लोक 39 से 53 तक में कहा है कि हे अर्जुन! जिस समय तेरा मन भाँति-भाँति के ज्ञान वचनों से हट कर एक तत्त्वज्ञान पर स्थित हो जाएगा तब तो तू योग को प्राप्त होगा अर्थात् योगी बनेगा। (46)

अध्याय 6 का श्लोक 47

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। ४७।

योगिनाम्, अपि, सर्वेषाम्, मद्गतेन, अन्तरात्मना,
श्रद्धावान्, भजते, यः, माम्, सः, मे, युक्ततमः, मतः ॥47॥

अनुवाद : (सर्वेषाम्) सर्व (योगिनाम्) योगियों में (अपि) भी (यः) जो (श्रद्धावान्) श्रद्धावान् साधक (मद्गतेन) मेरे द्वारा दिए भक्ति मत अनुसार (अन्तरात्मना) अन्तरात्मा से (माम्) मुझको (भजते) भजता है (सः) वह योगी (मे) मेरे (मतः) मत अनुसार (युक्ततमः) यथार्थ विधि से भक्ति में लीन है। (47)

भावार्थ :- तत्त्वज्ञान प्राप्त साधक वास्तव में शास्त्रअनुकूल साधक अर्थात् योगी है। वह ब्रह्म काल का ओं (ॐ) नाम का जाप विधिवत् करता है ओं नाम का जाप विधिवत् करना है मेरे नाम की जाप कमाई ब्रह्म को त्याग देता है तथा फिर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

(इति अध्याय छठा)



सातवां अध्याय

॥ सारांश ॥

॥ इस ज्ञान को जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं ॥

अध्याय 7 के श्लोक 1 से 11 में कहा है कि अर्जुन जो कोई मेरे (ब्रह्म) में पूर्णरूप से आसक्त होकर लगा हुआ है और जिस ज्ञान से मेरा परमभक्त पूर्ण ज्ञान युक्त हो जाएगा। इस ज्ञान से उसे पता लग जाएगा कि कौन कितने पानी में है। श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिव जी तथा ब्रह्म तक की स्थिति से परिचित हो जाएगा तथा पूर्ण सन्त की खोज करके तत् ब्रह्म (पूर्ण परमात्मा) की भक्ति की चेष्टा करेगा। इस ज्ञान को समझने के उपरान्त फिर जानने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहेगा। वह ज्ञान अब कहूँगा। हजारों साधकों में कोई एक प्रभु प्राप्त करने का यत्न करता है जो मेरे से पूर्ण परींचित हैं कि मैं वास्तव में काल हूँ। फिर वह साधक जन्म-मृत्यु से छूटने की भरसक कोशिश करता है। [गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्री देवी भागवत महापुराण जिसके सम्पादक श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, चिमन लाल गोस्वामी, के पृष्ठ 123 पर भी यह प्रमाण है। लिखा है कि भगवान शिव ने दुर्गा (प्रकृति देवी) की महिमा करते हुए कहा, शिवे! सम्पूर्ण संसार की सृष्टि करने में तुम बड़ी चतुर हो, मात! पृथ्वी, जल, पवन, आकाश, अग्नि, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि, मन और अहंकार ये सब तुम्हीं हो। इस संसार की सृष्टि, स्थिति और संहार करने में तुम्हारे गुण सदा समर्थ हैं। उन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम (ब्रह्मा, विष्णु, शंकर) नियमानुसार कार्य करने में तत्पर रहते हैं।] गीता अध्याय 7 श्लोक 4 से 6 में स्पष्ट किया है कि मेरी आठ प्रकार की माया जो आठ भाग में विभाजित है पाँच तत्व तथा तीन (मन, बुद्धि, अहंकार) ये आठ भाग हैं। यह तो जड़ प्रकृति है। सर्व प्राणियों को उत्पन्न करने में सहयोगी हैं, [जैसे मन के कारण प्राणी नाना इच्छाएँ करता है। इच्छा ही जन्म का कारण है। पाँच तत्वों से स्थूल शरीर बनता है तथा मन, बुद्धि, अहंकार के सहयोग से सूक्ष्म शरीर बना है तथा इससे दूसरी चेतन प्रकृति (दुर्गा) है। यही दुर्गा (प्रकृति) ही अन्य तीन रूप महालक्ष्मी - महासावित्री - महागौरी आदि बनाकर काल (ब्रह्म) के सहयोग से तीनों पुत्रों रजगुण युक्त श्री ब्रह्मा जी, सतगुण युक्त श्री विष्णु जी, तमगुण युक्त श्री शिव जी को उत्पन्न करती है। फिर भूल - भूलईयाँ (जाल साजी) करके तीन अन्य स्त्री रूप बनाकर तीनों देवताओं (श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी) से विवाह करके काल के जीव उत्पन्न करती है। जो चेतन प्रकृति (शेरवाली) है। इसके सहयोग से काल सर्व प्राणियों की उत्पत्ति करता है, (प्रमाण गीता अध्याय 14 श्लोक 3 से 5 में।) गीता ज्ञान दाता काल कह रहा है कि मैं सारे संसार के जीवों के प्रलय तथा उत्पत्ति का कारण हूँ। (क्योंकि काल को एक लाख मानव शरीर धारी प्राणी प्रतिदिन खाने पड़ते हैं)। सातवें श्लोक में कहा है कि सर्व संसार मेरे (ब्रह्म) में जकड़ा है। कबीर साहेब जी महाराज कहते हैं कि

सुर नर मुनिजन तेतिस करोड़ी । बंधे सब ज्योति निरंजन डोरी ॥

गीता अध्याय 7 श्लोक 7 से 11 तक ब्रह्म कहता है कि मैं जल का गुण रस हूँ, प्रकाश हूँ तथा वेदों में (प्रणव) ओंकार (ऊँ) हूँ और सर्व तत्व का गुण भी मैं ही हूँ। मनुष्यों में श्रेष्ठ हूँ तथा मुझे ही सर्व प्राणियों (स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर में जीव) का कारण जान। तेजस्वियों का तेज भी मेरे से ही है। बुद्धिमानों की बुद्धि (जब चाहे बुद्धि प्रदान कर देता हूँ जब चाहे बुद्धि भ्रष्ट कर देता हूँ), तपस्वियों का तप भी मैं (काल) ही हूँ। (चूंकि तपस्वियों को राज देता है वहाँ भी आनन्द मन

(काल) ही लेता है।) में (काल) ही शक्तिशालियों का बल हूँ तथा सब प्राणियों में व्यवस्थित काम (सैक्स) हूँ। (जैसे पहले अर्जुन को बल दे कर योद्धा बना दिया। युद्ध जीता, अर्जुन ने बड़े-2 योद्धा मार डाले फिर बल वापिस ले लिया। जब भगवान श्री कृष्ण जी का वध एक शिकारी ने कर दिया तो अर्जुन गोपियों (कृष्ण जी की 16000 (सोलह हजार) अवैध स्त्रियों) को लाने द्वारिका गया तो रास्ते में भीलों ने अर्जुन को पीटा तथा गोपियों को लूट ले गए तथा कुछ गोपियों को साथ भी ले गए। उस समय काल ब्रह्म ने अर्जुन को बल रहित कर दिया जिसके कारण अर्जुन से गांडिव धनुष भी नहीं चला और काम वासना (सैक्स) का भी मन ही आनन्द लेता है।)

दूसरा उदाहरण :- जिस समय लंका पति रावण ने सीता जी का अपहरण कर लिया था। उस समय सीता जी की खोज में श्री राम वन-2 भटक रहे थे। उन्हें पता नहीं था कि उनकी पत्नी सीता जी का कौन उठा ले गया है? कहां है? क्योंकि काल ब्रह्म ने उसकी बुद्धि को बंद कर रखा था। उसी समय पार्वती जी (पत्नी शिव जी) सीता जी का रूप धारण करके श्री रामचन्द्र जी की परिक्षा लेने आई तो श्री राम ने पहचान लिया की आप पार्वती हैं। उस समय काल ब्रह्म अर्थात् गीता ज्ञान दाता ने श्री रामचन्द्र (श्री विष्णु) की बुद्धि खोल दी। इसीलिए यहां श्लोक 10,11 में कहा है कि बलवानों का बल तथा बुद्धिमानों की बुद्धि मेरे हाथ में है।

“तीनों गुण क्या हैं? प्रमाण सहित”

“तीनों गुण रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी हैं। ब्रह्म (काल) तथा प्रकृति (दुर्गा) से उत्पन्न हुए हैं तथा तीनों नाशवान हैं”

प्रमाण :- गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्री शिव महापुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पौद्दार पृष्ठ सं. 110 अध्याय 9 रुद्र संहिता “इस प्रकार ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव तीनों देवताओं में गुण हैं, परन्तु शिव (ब्रह्म-काल) गुणातीत कहा गया है।

दूसरा प्रमाण :- गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित श्रीमद् देवीभागवत पुराण जिसके सम्पादक हैं श्री हनुमान प्रसाद पौद्दार चिमन लाल गोस्वामी, तीसरा स्कंद, अध्याय 5 पृष्ठ 123 :- भगवान विष्णु ने दुर्गा की स्तुति की : कहा कि मैं (विष्णु), ब्रह्मा तथा शंकर तुम्हारी कृप्या से विद्यमान हूँ। हमारा तो आविर्भाव (जन्म) तथा तिरोभाव (मृत्यु) होती है। हम नित्य (अविनाशी) नहीं हैं। तुम ही नित्य हो, जगत् जननी हो, प्रकृति और सनातनी देवी हो। भगवान शंकर ने कहा : यदि भगवान ब्रह्मा तथा भगवान विष्णु तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं तो उनके बाद उत्पन्न होने वाला मैं तमोगुणी लीला करने वाला शंकर क्या तुम्हारी संतान नहीं हुआ अर्थात् मुझे भी उत्पन्न करने वाली तुम ही हों। इस संसार की सृष्टि-स्थिति-संहार में तुम्हारे गुण सदा सर्वदा हैं। इन्हीं तीनों गुणों से उत्पन्न हम, ब्रह्मा-विष्णु तथा शंकर नियमानुसार कार्य में तत्पर रहते हैं।

उपरोक्त यह विवरण केवल हिन्दी में अनुवादित श्री देवीमहापुराण से है, जिसमें कुछ तथ्यों को छुपाया गया है। इसलिए यही प्रमाण देखें श्री मद्देवीभागवत महापुराण सभाषटिकम् समहात्यम्, खेमराज श्री कृष्ण दास प्रकाश मुम्बई, इसमें संस्कृत सहित हिन्दी अनुवाद किया है। तीसरा स्कंद अध्याय 4 पृष्ठ 10, श्लोक 42 :-

ब्रह्मा - अहम् महेश्वरः फिल ते प्रभावात्सर्वे वयं जनि युता न यदा तू नित्याः, के अन्ये सुराः शतमख प्रमुखाः च नित्या नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा (42)।

हिन्दी अनुवाद :- हे मात! ब्रह्मा, मैं तथा शिव तुम्हारे ही प्रभाव से जन्मवान हूँ, नित्य नहीं हूँ अर्थात् हम अविनाशी नहीं हैं, फिर अन्य इन्द्रादि दूसरे देवता किस प्रकार नित्य हो सकते हैं। तुम ही अविनाशी हो, प्रकृति तथा सनातनी देवी हो। (42)

पृष्ठ 11-12, अध्याय 5, श्लोक 8 :- यदि दयार्द्रमना न सदांबिके कथमहं विहितः च तमोगुणः कमलजश्च रजोगुणसंभवः सुविहितः किमु सत्त्वगुणों हरिः। (8)

अनुवाद :- भगवान शंकर बोले :-हे मात! यदि हमारे ऊपर आप दयायुक्त हो तो मुझे तमोगुण क्यों बनाया, कमल से उत्पन्न ब्रह्मा को रजोगुण किस लिए बनाया तथा विष्णु को सतगुण क्यों बनाया? अर्थात् जीवों के जन्म-मृत्यु रूपी दुष्कर्म में क्यों लगाया?

श्लोक 12 :- रमयसे स्वपति पुरुषं सदा तव गतिं न हि विह विद्म शिवे (12)

हिन्दी - अपने पति पुरुष अर्थात् काल भगवान के साथ सदा भोग-विलास करती रहती हो। आपकी गति कोई नहीं जानता।

तीसरा स्कंद पृष्ठ 14, अध्याय 5 श्लोक 43 :- एकमेवा द्वितीयं यत् ब्रह्म वेदा वदन्ति वै। सा किं त्वम् वाप्यसौ वा किं संदेहं विनिवर्तय (43)

अनुवाद :- जो कि वेदों में अद्वितीय केवल एक पूर्ण ब्रह्म कहा है क्या वह आप ही हैं या कोई और है? मेरी इस शंका का निवारण करें। ब्रह्मा जी की प्रार्थना पर देवी ने कहा -

देव्युवाच सदैकत्वं न भेदोस्ति सर्वदैव ममास्य च।। योसौ साहमहं योसौ भेदोस्ति मतिविभ्रमात्।। 12।। आवयोरन्तरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान् हि सः।। विमुक्तः स तू संसारान्मुच्यते नात्र संशयः।। 13।।

अनुवाद - यह है सो मैं हूँ, जो मैं हूँ सो यह है, मति के विभ्रम होनेसे भेद भासता है।। 12।। हम दोनों का जो सूक्ष्म अन्तर है इसको जो जानता है वही मतिमान अर्थात् तत्त्वदर्शी है, वह संसार से पृथक् होकर मुक्त होता है, इसमें संदेह नहीं।। 13।।

सुमरणाद्दर्शनं तुभ्यं दास्येहं विषमे स्थिते।। स्वर्तव्याहं सदा देवाः परमात्मा सनातनः।। 80।। उभयोः सुमरणादेव कार्यसिद्धिर संशयम्।। ब्रह्मोवाच।। इत्युक्त्वा विससर्जस्मान्द त्वा शक्तीः सुसंस्कृतान्।। 81।। विष्णवेथ महालक्ष्मी महाकाली शिवाय च।। महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः।। 82।।

अनुवाद - संकट उपस्थित होने पर सुमरण से ही मैं तुमको दर्शन दूंगी, देवताओं! परमात्मा सनातन देवकी शक्तिरूपसे मेरा सदा सुमरण करना।। 80।। दोनों के सुमरण से अवश्य कार्यसिद्धि होगी, ब्रह्माजी बोले इस प्रकार संस्कार कर शक्ति देकर हमको विदा किया।। 81।। विष्णु के निमित्त महालक्ष्मी, शिव के निमित्त महाकाली, और हमको महासरस्वती देकर विदा किया।। 82।।

मम चैव शरीरं वै सूत्रमित्याभिधीयते।। स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः।। 83।।

अनुवाद - मेरा शरीर सूत्ररूप कहा जाता है, परमात्मा ब्रह्म का स्थूलशरीर कहाता है।। 83।।

।। ब्रह्मा विष्णु शिव (त्रिगुण माया) जीव को मुक्त नहीं होने देते।।

गीता अध्याय 7 श्लोक 12 : तीनों गुणों से जो कुछ हो रहा है वह मुझ से ही हुआ जान। जैसे रजगुण (ब्रह्मा) से उत्पत्ति, सतगुण (विष्णु) से संस्कार अनुसार पालन-पोषण स्थिति तथा तमगुण (शिव) से प्रलय (संहार) का कारण काल भगवान ही है। फिर कहा है कि मैं इन में नहीं हूँ। क्योंकि काल बहुत दूर (इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में निज लोक में रहता है) है परंतु मन रूप में मौज काल ही मनाता है तथा रिमोट से सर्व प्राणियों तथा ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी व श्री शिव जी को यन्त्र की तरह चलाता है। पवित्र गीता जी के अ. 7 श्लोक 1 से 11 में ब्रह्म कह रहा है कि अर्जुन! अब तुझे वह ज्ञान सुनाऊँगा जिसके जानने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। गीता बोलने वाला ब्रह्म कह रहा है कि मेरे इक्कीस ब्रह्माण्डों के प्राणियों के लिए मेरी पूजा से ही शास्त्र अनुकूल साधना प्रारम्भ होती है, जो वेदों में वर्णित है। मेरे अन्तर्गत जितने प्राणी हैं उनकी बुद्धि मेरे हाथ में है। मैं केवल

इक्कीस ब्रह्मण्डों में ही मालिक हूँ। इसलिए (गीता अ. 7 श्लोक 12 से 15 तक) जो भी तीनों गुणों से (रजगुण-ब्रह्मा से जीवों की उत्पत्ति, सतगुण-विष्णु जी से स्थिति तथा तमगुण-शिव जी से संहार) जो कुछ भी हो रहा है उसका मुख्य कारण मैं (ब्रह्म/काल) ही हूँ। (क्योंकि काल को शाप लगा है कि एक लाख मानव शरीर धारी प्राणियों के शरीर को मार कर मैल को खाने का) जो साधक मेरी (ब्रह्म की) साधना न करके त्रिगुणमयी माया (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की साधना करके क्षणिक लाभ प्राप्त करते हैं, जिससे ज्यादा कष्ट उठाते रहते हैं, साथ में संकेत किया है कि इनसे ज्यादा लाभ मैं (ब्रह्म-काल) दे सकता हूँ, परन्तु ये मूर्ख साधक तत्त्वज्ञान के अभाव से इस त्रिगुण माया अर्थात् इन्हीं तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) तक की साधना करते रहते हैं। इनकी बुद्धि इन्हीं तीनों प्रभुओं तक सीमित है। इसलिए ये राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, शास्त्र विरुद्ध साधना रूपी दुष्कर्म करनेवाले, मूर्ख मुझे (ब्रह्म को) नहीं भजते। यही प्रमाण गीता अध्याय 16 श्लोक 4 से 20 व 23, 24 तक अध्याय 17 श्लोक 2 से 14 तथा 19 व 20 में भी है। यही प्रमाण गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 में है।

विचार करें :- रावण ने भगवान शिव जी को मृत्युंजय, अजर-अमर, सर्वेश्वर मान कर भक्ति की, दस बार शीश काट कर समर्पित कर दिया, जिसके बदले में युद्ध के दौरान दस शीश रावण को प्राप्त हुए, परन्तु मुक्ति नहीं हुई, राक्षस कहलाया। यह दोष रावण के गुरुदेव का है जिस नादान (नीम-हकीम) ने वेदों को ठीक से न समझ कर अपनी सोच से तमोगुण युक्त भगवान शिव को ही पूर्ण परमात्मा बताया तथा भोली आत्मा रावण ने झूठे गुरुदेव पर विश्वास करके जीवन व अपने कुल का नाश किया।

एक भस्मागिरी नाम का साधक था, जिसने शिव जी (तमोगुण) को ही इष्ट मान कर शीर्षासन (ऊपर को पैर नीचे को शीश) करके 12 वर्ष तक साधना की, वचन बद्ध करके भस्मकण्डा ले लिया। भगवान शिव जी को ही मारने लगा। उद्देश्य यह था कि भस्मकण्डा प्राप्त करके भगवान शिव जी को मार कर पार्वती जी को पत्नी बनाऊँगा। भगवान श्री शिव जी डर के मारे भाग गए, फिर श्री विष्णु जी ने उस भस्मासुर को गंडहथ नाच नचा कर उसी भस्मकण्डे से भस्म किया। वह शिव जी (तमोगुण) का साधक राक्षस कहलाया। हरिण्यकशिपु ने भगवान ब्रह्मा जी (रजोगुण) की साधना की तथा राक्षस कहलाया।

एक समय आज (सन् 2006) से लगभग 325 वर्ष पूर्व हरिद्वार में हर की पैड़ियों पर (शास्त्र विधि रहित साधना करने वालों के) कुम्भ पर्व की प्रभी का संयोग हुआ। वहाँ पर सर्व (त्रिगुण उपासक) महात्मा जन स्नानार्थ पहुँचे। गिरी, पुरी, नाथ, नागा आदि भगवान श्री शिव जी (तमोगुण) के उपासक तथा वैष्णों भगवान श्री विष्णु जी (सतोगुण) के उपासक हैं। प्रथम स्नान करने के कारण नागा तथा वैष्णों साधुओं में घोर युद्ध हो गया। लगभग 25000 (पच्चीस हजार) त्रिगुण उपासक मृत्यु को प्राप्त हुए। जो व्यक्ति जरा-सी बात पर कत्ले आम कर देता है वह साधु है या राक्षस स्वयं विचार करें। आम व्यक्ति भी कहीं स्नान कर रहे हों और कोई व्यक्ति आ कर कहे कि मुझे भी कुछ स्थान स्नान के लिए देने की कृप्या करें। शिष्टाचार के नाते कहते हैं कि आओ आप भी स्नान कर लो। इधर-उधर हो कर आने वाले को स्थान दे देते हैं। इसलिए पवित्र गीता जी अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि जिनका मेरी त्रिगुणमई माया (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) की पूजा के द्वारा ज्ञान हरा जा चुका है, वे केवल मान बड़ाई के भूखे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच अर्थात् आम व्यक्ति से भी पतित स्वभाव वाले, दुष्कर्म

करने वाले मूर्ख मेरी भक्ति भी नहीं करते। गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 तक पवित्र गीता जी के बोलने वाला (ब्रह्म) प्रभु कह रहा है कि मेरी भक्ति (ब्रह्म साधना) भी चार प्रकार के साधक करते हैं। एक तो अर्थार्थी (धन लाभ चाहने वाले) जो वेद मंत्रों से ही जंत्र-मंत्र, हवन आदि करते रहते हैं। दूसरे आर्त (संकट निवारण के लिए वेदों के मंत्रों का जन्त्र-मंत्र हवन आदि करते रहते हैं) तीसरे जिज्ञासु जो परमात्मा के ज्ञान को जानने की इच्छा रखने वाले केवल ज्ञान संग्रह करके वक्ता बन जाते हैं तथा दूसरों में ज्ञान श्रेष्ठता के आधार पर उत्तम बन कर ज्ञानवान बनकर अभिमानवश भक्ति हीन हो जाते हैं, चौथे ज्ञानी। वे साधक जिनको यह ज्ञान हो गया कि मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता, इससे प्रभु साधना नहीं बन पाई तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा। फिर वेदों को पढ़ा, जिनसे ज्ञान हुआ कि (ब्रह्मा-विष्णु-शिवजी) तीनों गुणों व ब्रह्म (क्षर पुरुष) तथा परब्रह्म (अक्षर पुरुष) से ऊपर पूर्ण ब्रह्म की ही भक्ति करनी चाहिए, अन्य देवताओं की नहीं। उन ज्ञानी उदार आत्माओं को मैं अच्छा लगता हूँ तथा मुझे वे इसलिए अच्छे लगते हैं कि वे तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिवजी) से ऊपर उठ कर मेरी (ब्रह्म) साधना तो करने लगे जो अन्य देवताओं से अच्छी है परन्तु वेदों में 'ओ३म्' नाम जो केवल ब्रह्म की साधना का मंत्र है उसी को आप ही विचार - विमर्श करके पूर्ण ब्रह्म का मंत्र जान कर वर्षों तक साधना करते रहे। प्रभु प्राप्ति हुई नहीं। अन्य सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं। क्योंकि पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 34 तथा पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 10 में वर्णित तत्त्वदर्शी संत नहीं मिला, जो पूर्ण ब्रह्म की साधना तीन मंत्र से बताता है, इसलिए ज्ञानी भी ब्रह्म (काल) साधना करके जन्म-मृत्यु के चक्र में ही रह गए।

एक ज्ञानी उदारात्मा महर्षि चुणक जी ने वेदों को पढ़ा तथा एक पूर्ण प्रभु की भक्ति का मंत्र ओ३म् जान कर इसी नाम के जाप से वर्षों तक साधना की। एक मान्धाता चक्रवर्ती राजा था। (चक्रवर्ती राजा उसे कहते हैं जिसका पूरी पृथ्वी पर शासन हो।) उसने अपने अन्तर्गत राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा, एक घोड़े के गले में पत्र बांध कर सारे राज्य में घुमाया। शर्त थी कि जिसे राजा मान्धाता की गुलामी (आधीनता) स्वीकार नहीं है। वह इस घोड़े को पकड़ कर बांध ले तथा युद्ध के लिए तैयार रहे। किसी ने घोड़ा नहीं पकड़ा। महर्षि चुणक जी को इस बात का पता चला कि राजा बहुत अभिमानी हो गया है। कहा कि मैं इस राजा के युद्ध को स्वीकार करता हूँ युद्ध शुरू हुआ। मान्धाता राजा के पास 72 करोड़ सेना थी। उसके चार भाग करके एक भाग (18 करोड़) सेना से महर्षि चुणक पर आक्रमण कर दिया। दूसरी ओर महर्षि चुणक जी ने अपनी साधना की कमाई से चार पुतलियाँ (बम्ब) बनाई तथा राजा की चारों भाग सेना का विनाश कर दिया।

विशेष :- श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी तथा ब्रह्म व परब्रह्म की भक्ति से पाप तथा पुण्य दोनों का फल भोगना पड़ता है, पुण्य स्वर्ग में तथा पाप नरक में व चौरासी लाख प्राणियों के शरीर में भिन्न-2 यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। जैसे ज्ञानी आत्मा श्री चुणक जी ने जो ओ३म् नाम के जाप की कमाई की उससे कुछ तो सिद्धि शक्ति (चार पुतलियाँ बनाकर) में समाप्त कर दिया जिससे महर्षि कहलाया। कुछ साधना फल को महास्वर्ग में भोग कर फिर नरक में जाएगा तथा फिर चौरासी लाख प्राणियों के शरीर धारण करके कष्ट पर कष्ट सहन करेगा। जो 72 करोड़ प्राणियों (सैनिकों) का संहार वचन से तैयार की गई पुतलियों से किया था, उसका भोग भी भोगना होगा। चाहे कोई हथियार से हत्या करे, चाहे वचन रूपी तलवार से उन दोनों को समान दण्ड प्रभु देता है। जब उस महर्षि चुणक जी का जीव कुत्ते के शरीर में होगा उसके सिर में जख्म होगा, उसमें कीड़े बनकर उन सैनिकों के जीव अपना प्रतिशोध लेंगे। कभी टांग टूटेगी, कभी पिछले पैरों से अर्धग हो कर केवल अगले पैरों से घिसड़ कर चलेगा तथा गर्मी-सर्दी का कष्ट असहनीय पीड़ा

नाना प्रकार से भोगनी ही पड़ेगी।

इसलिए पवित्र गीता जी बोलने वाला ब्रह्म (काल) गीता अ. 7 श्लोक 18 में स्वयं कह रहा है कि ये सर्व ज्ञानी आत्माएँ हैं तो उदार (नेक)। परन्तु पूर्ण परमात्मा की तीन मंत्र की वास्तविक साधना बताने वाला तत्त्वदर्शी सन्त न मिलने के कारण ये सब मेरी ही (अनुत्तमाम्) अति अश्रेष्ठ मुक्ति (गती) की आस में ही आश्रित रहे अर्थात् मेरी साधना भी अश्रेष्ठ है। इसलिए पवित्र गीता जी अध्याय 18 श्लोक 62 में कहा है कि हे अर्जुन! तू सर्व भाव से उस पूर्ण परमात्मा की शरण में चला जा। जिसकी कृप्या से ही तू परम शान्ति तथा सनातन परम धाम (सत्यलोक) को प्राप्त होगा। पवित्र गीता जी को श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके ब्रह्म (काल) ने बोला, फिर कई वर्षों उपरांत पवित्र गीता जी तथा पवित्र चारों वेदों को महर्षि व्यास जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश करके स्वयं ब्रह्म (क्षर पुरुष) द्वारा लिपिबद्ध किए हैं। इनमें परमात्मा कैसा है, कैसे उसकी भक्ति करनी है तथा क्या उपलब्धि होगी, ज्ञान तो पूर्ण है परन्तु सांकेतिक है तथा पूजा की विधि केवल ब्रह्म (क्षर पुरुष) अर्थात् ज्योति निरंजन-काल तक की ही है।

पूर्ण ब्रह्म की भक्ति के लिए पवित्र गीता अ. 4 श्लोक 34 में पवित्र गीता बोलने वाला (ब्रह्म) प्रभु स्वयं कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा की भक्ति व प्राप्ति के लिए किसी तत्त्वज्ञानी सन्त की खोज कर फिर जैसे वह विधि बताएं वैसे कर। पवित्र गीता जी को बोलने वाला प्रभु कह रहा है कि पूर्ण परमात्मा का पूर्ण ज्ञान व भक्ति विधि में नहीं जानता। अपनी साधना के बारे में गीता अ. 8 के श्लोक 13 में कहा है कि मेरी भक्ति का तो केवल एक 'ओ३म्' (ओं) अक्षर है जिसका उच्चारण करके अन्तिम स्वांस (त्यजन् देहम्) तक जाप करने से मेरी वाली परमगति को प्राप्त होगा। फिर गीता अ. 7 श्लोक 18 में कहा है कि जिन प्रभु चाहने वाली आत्माओं को तत्त्वदर्शी सन्त नहीं मिला जो पूर्ण ब्रह्म की साधना जानता हो, इसलिए वे उदारात्माएँ मेरे वाली (अनुत्तमाम्) अति अनुत्तम परमगति में ही आश्रित हैं। (पवित्र गीता जी बोलने वाला प्रभु स्वयं कह रहा है कि मेरी साधना से होने वाली गति अर्थात् मुक्ति भी अति अश्रेष्ठ है।) गीता अ. 15 श्लोक 1 से 4 तक में कहा है कि यह उल्टा लटका हुआ संसार रूपी वृक्ष है, जिसकी मूल (जड़ें) तो पूर्ण ब्रह्म अर्थात् आदि पुरुष परमेश्वर है तथा नीचे तीनों गुण (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) रूपी शाखाएँ हैं। इस सृष्टि रचना के पूर्ण ज्ञान को (श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रेतवत प्रवेश ब्रह्म कह रहा है कि) मैं नहीं जानता। इसलिए यहाँ विचार काल में अर्थात् इस गीता संवाद में मुझे पूर्ण जानकारी नहीं है। जो संत उपरोक्त संसार रूपी वृक्ष अर्थात् सृष्टि की रचना के विषय का पूर्ण ज्ञानी होगा, वह मूल, तना, डार तथा टहनियों का भिन्न-भिन्न वर्णन करेगा उसे (वेदवित्) तत्त्वदर्शी जानना। फिर उस पूर्ण ज्ञानी (तत्त्वदर्शी) सन्त से उपदेश लेकर उस परम पद परमेश्वर को भली प्रकार खोजना चाहिए। जहाँ जाने के उपरान्त जन्म-मृत्यु कभी नहीं होती अर्थात् अनादि मोक्ष प्राप्त होता है तथा मैं (ब्रह्म-गीता बोलने वाला प्रभु कह रहा है) भी उसी आदि परम पुरुष परमेश्वर की शरण (आधीन) हूँ। इसलिए दृढ़ विश्वास के साथ उसी पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) का ही सुमरण करना चाहिए।

पवित्र गीता अ. 4 श्लोक 5 में गीता बोलने वाला प्रभु (ब्रह्म) कह रहा है कि हे अर्जुन! मेरे तथा तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। गीता अध्याय 2 श्लोक 12 में यही प्रमाण है कहा है कि हे अर्जुन! तू मैं तथा यह सर्व सैनिक पहले भी जन्में थे, आगे भी जन्मेंगे। [इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म भी नाशवान प्रभु (क्षर पुरुष) है।] इसलिए गीता अ. 15 श्लोक 16-17 में तीन प्रभुओं की भिन्न-भिन्न व्याख्या है - दो प्रभु, क्षर पुरुष (नाशवान भगवान - ब्रह्म) तथा अक्षर पुरुष (अविनाशी प्रभु - अक्षर ब्रह्म) हैं, परन्तु वास्तव में अविनाशी तो इन दोनों से अन्य प्रभु है जो वास्तव में अविनाशी परमात्मा परमेश्वर

कहलाता है। जैसे एक मिट्टी का सफेद प्याला जो बिल्कुल अस्थाई है, ऐसे ब्रह्म(क्षर पुरुष) तथा इसके इक्कीस ब्रह्मण्डों के प्राणी नाशवान हैं। दूसरा प्याला इस्पात (स्टील) का है। इस्पात को भी जंग लगता है और विनाश हो जाता है। सफेद मिट्टी के प्याले की तुलना में इस्पात का प्याला अधिक स्थाई परन्तु है नाशवान इसलिए इतना अविनाशी इस्पात (स्टील) का प्याला है ऐसे अक्षर पुरुष (परब्रह्म) तथा इसके सात संख ब्रह्मण्डों के प्राणी अविनाशी जैसे लगते हुए भी नाशवान हैं अर्थात् वास्तव में अविनाशी नहीं हैं। तीसरा प्याला सोने (गोल्ड) का है जो वास्तव में अविनाशी धातु से बना है। जिसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता। ऐसे पूर्ण ब्रह्म (परम अक्षर पुरुष) तथा उसके असंख ब्रह्मण्डों में रहने वाले हंसात्माएँ (देवा) वास्तव में अविनाशी हैं तथा वही तीनों लोकों में प्रवेश करके सर्व का पालन-पोषण करता है। कविर्देव अर्थात् कबीर प्रभु ने अपने द्वारा रची सृष्टि को स्वयं बताया है।

कबीर अक्षर पुरुष एक पेड़ है, ज्योति निरंजन वाकी डार। तीनों देवा शाखा हैं, पात रूप संसार।।

अक्षर पुरुष (परब्रह्म) तो उलटे लटके पेड़ का तना है तथा मोटी डार ज्योति निरंजन (क्षर पुरुष-ब्रह्म) है तथा उस डार से आगे तीनों शाखाएँ तीनों गुण (रजगुण-ब्रह्मा जी, सतगुण-विष्णु जी, तमगुण-शिव जी) हैं। परन्तु मूल (जड़) पूर्ण पुरुष (परम अक्षर ब्रह्म, सतपुरुष) है। पेड़ को जड़ (मूल) से अर्थात् पूर्ण ब्रह्म से आहार प्राप्त होता है। इसलिए कुल का पालनहार वही परम अक्षर ब्रह्म है जिसका प्रमाण गीता अ. 8 के श्लोक 1 व 3 में दिया है। अर्जुन ने पूछा - हे प्रभु! वह तत् ब्रह्म कौन है, जिसके विषय में आपने गीता अ. 7 श्लोक 29 में कहा है कि तत्ब्रह्म (उस पूर्ण परमात्मा) को तथा पूरे अध्यात्म ज्ञान (तत्त्वज्ञान) को जानने के बाद तो साधक जरा-मरण से छूटने का ही प्रयत्न करता है। पवित्र गीता बोलने वाले (ब्रह्म) ने गीता अध्याय 8 श्लोक 3 में उत्तर दिया कि वह परम अक्षर ब्रह्म (पूर्ण ब्रह्म) है। गीता अ. 8 श्लोक 6, में कहा है कि यह विधान है कि अन्त समय में जो साधक जिस भी प्रभु (ब्रह्म, परब्रह्म, पूर्णब्रह्म) का स्मरण करता हुआ प्राण त्याग कर जाता है तो उसी को प्राप्त होता है।

प्रश्न :- आपने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 के अनुवाद में अर्थ का अनर्थ किया है "अनुत्तमाम्" का अर्थ अश्रेष्ठ किया है। जब कि समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है जिस से उत्तम कोई और न हो उस के विषय में समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है। अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने सही अर्थ किया है अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम किया है।

उत्तर :- मैं आप की इस बात को सत्य मान कर आप से प्रार्थना करता हूँ कि "गीता ज्ञान दाता अपनी साधना के विषय में गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 में बता रहे हैं। यदि गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपनी साधना व गति को अनुत्तम कह रहे हैं। जिस का भावार्थ आप के समास के अनुसार यह हुआ कि गीता ज्ञान दाता की गति से उत्तम अन्य कोई गति नहीं अर्थात् मोक्ष लाभ नहीं।

गीता ज्ञान दाता स्वयं गीता अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 4 में किसी अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कह रहे हैं। उसी की कृपा से परम शान्ति व शाश्वत स्थान सदा रहने वाला मोक्ष स्थल अर्थात् सत्यलोक प्राप्त होगा। अपने विषय में भी कहा है कि मैं भी उसी की शरण हूँ। उसी पूर्ण परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए तथा कहा है कि उस परमेश्वर के परमपद (सत्यलोक) को प्राप्त करना चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर इस संसार में कभी नहीं आते अर्थात् उनका जन्म मृत्यु सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

अपने से अन्य परमात्मा के विषय में गीता अध्याय 18 श्लोक 46,61-62,64,66 अध्याय 15

श्लोक 4,16-17, अध्याय 13 श्लोक 12 से 17, 22 से 24, 27-28,30-31,34 अध्याय 5 श्लोक 6-10,13 से 21 तथा 24-25-26 अध्याय 6 श्लोक 7,19,20,25,26-27 अध्याय 4 श्लोक 31-32, अध्याय 8 श्लोक 3,8 से 10,17 से 22, अध्याय 7 श्लोक 19 से 29, अध्याय 14 श्लोक 19 आदि-2 श्लोकों में कहा है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम परमात्मा तो अन्य है जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि उत्तम पुरुषः तु अन्यः जिसका अर्थ है उत्तम परमात्मा तो अन्य ही है। इसलिए उस उत्तम पुरुष अर्थात् सर्वश्रेष्ठ परमात्मा की गति अर्थात् उस से मिलने वाला मोक्ष भी अति उत्तम हुआ। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि उस परमेश्वर अर्थात् पूर्ण परमात्मा की गति गीता ज्ञान दाता वाली गति से उत्तम हुई। इसलिए गीता ज्ञान दाता वाली गति सर्व श्रेष्ठ नहीं है। अर्थात् जिस से श्रेष्ठ कोई न हो। यह विशेषण भी गलत सिद्ध हुआ। क्योंकि जब गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ कोई और परमेश्वर है तो उस की गति भी गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम का अर्थ अश्रेष्ठ ही न्याय संगत है अर्थात् उचित है। आप तथा अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने अर्थ का अनर्थ किया है। जो अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम कहा तथा किया है।

गीता अध्याय 7 श्लोक 19 : इस मंत्र में ब्रह्म (काल) कह रहा है कि मेरी साधना भी कोई भाग्यवान् व्यक्ति कई जन्मों के बाद कोई-कोई ही करता है, नहीं तो नीचे के श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी तथा अन्य देवताओं, भूतों व पितरों तक की भक्ति से ऊपर बुद्धि नहीं उठती। परन्तु यह बताने वाला संत बहुत दुर्लभ है कि पूर्ण परमात्मा ही पूजा के योग्य है। वह सर्व सृष्टि रचनहार है। वही सर्व का धारण-पोषण करने वाला सर्वशक्तिमान है, वही वास्तव में वासुदेव है। वासुदेव का अर्थ है सर्व का मालिक। जैसे श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी, श्री शिव जी एक ब्रह्मण्ड में एक-एक विभाग के मंत्री (प्रभु) हैं। रजोगुण विभाग के श्री ब्रह्मा जी, सतोगुण विभाग के श्री विष्णु जी तथा तमोगुण विभाग के श्री शिव जी, सर्व के मालिक अर्थात् वासुदेव नहीं हैं। ब्रह्म इक्कीस ब्रह्मण्ड में मुख्य मंत्री (स्वामी) जानो जो काल के आधीन हैं, सर्व का मालिक अर्थात् वासुदेव नहीं है। ऐसे - ऐसे सात संख ब्रह्मण्ड परब्रह्म (अक्षर पुरुष) के हैं, केवल सात संख ब्रह्मण्ड का मालिक, सर्व का मालिक अर्थात् वासुदेव नहीं है तथा असंख ब्रह्मण्ड पूर्णब्रह्म (परम अक्षर ब्रह्म/सतपुरुष) के हैं। वास्तव में सर्व का मालिक अर्थात् वासुदेव पूर्णब्रह्म है। जैसे उलटे लटके वृक्ष की जड़ (पूर्णब्रह्म) है जिससे सर्व तना (अक्षर पुरुष) डार (काल-ब्रह्म) शाखा (तीनों रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिवजी) को भोजन मिलता है। इसलिए सर्व का पालन कर्त्ता भी पूर्ण ब्रह्म ही हुआ। यह व्याख्या करने वाला संत तो सुदुर्लभ है। उसके मिलने से ही पूर्ण मोक्ष होगा, अन्यथा काल जाल में ही प्राणी फंसे रहेंगे।

॥ अन्य देवताओं (रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी) की पूजा बुद्धिहीन ही करते हैं ॥

अध्याय 7 के श्लोक 20 में कहा है कि जिसका सम्बन्ध अध्याय 7 के श्लोक 15 से लगातार है - श्लोक 15 में कहा है कि त्रिगुण माया (जो रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी की पूजा तक सीमित हैं तथा इन्हीं से प्राप्त क्षणिक सुख) के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे असुर स्वभाव को धारण किए हुए नीच व्यक्ति दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मुझे नहीं भजते। अध्याय 7 के श्लोक 20 में उन-उन भोगों की कामना के कारण जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे अपने स्वभाव वश प्रेरित हो कर अज्ञान अंधकार वाले नियम के आश्रित अन्य देवताओं को पूजते

हैं। अध्याय 7 के श्लोक 21 में कहा है कि जो-जो भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ।

अध्याय 7 के श्लोक 22 में कहा है कि वह जिस श्रद्धा से युक्त हो कर जिस देवता का पूजन करता है क्योंकि उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किए हुए कुछ इच्छित भोगों को प्राप्त करते हैं। जैसे मुख्य मन्त्री कहे कि नीचे के अधिकारी मेरे ही नौकर हैं। मैंने उनको कुछ अधिकार दे रखे हैं जो उनके (अधिकारियों के) ही आश्रित हैं वह लाभ भी मेरे द्वारा ही दिया जाता है, परंतु पूर्ण लाभ नहीं है। अध्याय 7 के श्लोक 23 में वर्णन है कि परंतु उन मंद बुद्धि वालों का वह फल नाशवान होता है। देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। (मदभक्त) मतावलम्बी जो शास्त्रों के अनुसार भक्ति करने वाले भक्त भी मुझको प्राप्त होते हैं अर्थात् काल के जाल से कोई बाहर नहीं है।

विशेष : अध्याय 7 के श्लोक 20 से 23 तक का सम्बन्ध इसी अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 से लगातार है। इन 20 से 23 में कहा है कि वे जो भी साधना किसी भी पित्र, भूत, देवी-देवता आदि की पूजा स्वभाव वश करते हैं। मैं (ब्रह्म-काल) ही उन मन्द बुद्धि लोगों (भक्तों) को उसी देवता के प्रति आसक्त करता हूँ। वे नादान साधक देवताओं से जो लाभ पाते हैं मैंने (काल ने) ही देवताओं को कुछ शक्ति दे रखी है। उसी के आधार पर उनके (देवताओं के) पूजारी देवताओं को प्राप्त हो जाएंगे। परंतु उन बुद्धिहीन साधकों की वह पूजा चौरासी लाख योनियों में शीघ्र ले जाने वाली है तथा जो मुझे (काल को) भजते हैं वे तप्त शिला पर फिर मेरे महास्वर्ग (ब्रह्म लोक) में चले जाते हैं और उसके बाद जन्म-मरण में अर्थात् देवी-देवताओं व ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा माता से भगवान ब्रह्म की साधना अधिक लाभदायक है। बेशक महास्वर्ग में गए साधक का स्वर्ग समय एक कल्प होता है, परन्तु स्वर्ग तथा महास्वर्ग में शुभ कर्मों का मोक्ष का सुख भोगकर फिर नरक तथा अन्य प्राणियों के शरीर में भी कष्ट बना रहेगा, पूर्ण मोक्ष नहीं अर्थात् काल जाल से मुक्ति नहीं। श्री विष्णु पुराण में पृष्ठ 51, प्रथम अंश-अध्याय 12 श्लोक 93 में लिखा है कि ध्रुव का मोक्ष समय एक कल्प है।

॥ ज्योति निरंजन (काल) कभी स्थूल शरीर आकार में सर्व के समक्ष नहीं आता ॥

अध्याय 7 के श्लोक 24 में भगवान ब्रह्म कह रहा है कि मूर्ख मेरे अति गन्दे अटल भाव (कालरूप) को नहीं जानते। मुझ (अव्यक्त) अदृश्यमान अर्थात् योग माया से छिपे हुए को (व्यक्त) श्री कृष्ण रूप में प्रकट हुआ मानते हैं अर्थात् मैं श्री कृष्ण नहीं हूँ। अति गन्दे अविनाशी भाव को नहीं जानते का तात्पर्य है कि मेरा काल भाव जीवों को खाना, गधे, कुत्ते, सूअर आदि बनाना, नाना प्रकार से कष्ट पर कष्ट देना तथा पुण्यों के आधार पर स्वर्ग देना तथा काल ने प्रतिज्ञा की है कि मैं कभी भी अपने वास्तविक काल रूप में सर्व के समक्ष प्रकट नहीं होऊँगा। यह मेरा कभी समाप्त न होने वाला (अविनाशी) भाव है। मैं आकार में श्री कृष्ण जी, श्री रामचन्द्र जी के रूप में कभी नहीं आता। यह मेरा घटिया अटल अविनाशी नियम है। यह तो माया के द्वारा बने शरीर के भगवान आते हैं जो मेरे द्वारा ही भेजे जाते हैं और मैं (काल) उनमें प्रवेश करके अपना सर्व कार्य करता रहता हूँ।

गरीब, अनन्त कोटि अवतार हैं, माया के गोविंद। कर्ता हो-हो कर अवतरे, बहुर पड़े जम फन्द ॥

अध्याय 7 के श्लोक 25 में गीता ज्ञान दाता (काल ब्रह्म) ने कहा है कि मैं अपनी (योगमाया) सिद्धि शक्ति से छुपा रहता हूँ तथा अपने इक्कीसवें ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि निज स्थान पर रहता हूँ। इसलिए दृश्यमान नहीं हूँ। इसलिए कहा है कि मैं कभी भी जन्म नहीं लेता अर्थात् स्थूल शरीर में

श्री कृष्ण जी की तरह माता से जन्म नहीं लेता। इस अविनाशी (अटल) नियम को यह मूर्ख संसार नहीं जानता अर्थात् यह अनजान प्राणी समुदाय मुझे कृष्ण मान रहा है, मैं कृष्ण नहीं हूँ तथा मैं अपनी योग माया से छिपा रहता हूँ। इससे स्पष्ट है कि काल ही श्री कृष्ण जी के शरीर में प्रवेश करके बोल रहा है। नहीं तो कृष्ण जी तो आकार में अर्जुन के समक्ष ही थे। श्री कृष्ण जी का यह कहना उचित नहीं होता कि मैं आकार में नहीं आता, श्री कृष्ण आदि की तरह दुर्गा (प्रकृति) के गर्भ से जन्म नहीं लेता। क्योंकि दुर्गा तो ब्रह्म की पत्नी है। काल अपनी शब्द शक्ति से नाना रूप (महाब्रह्मा, महाविष्णु तथा महाशिव आदि) बना लेता है। फिर निर्धारित समय पर उस शरीर को त्याग देता है। इस प्रकार के जन्म व मृत्यु होती है। इसीलिए पवित्र गीता अध्याय 4 श्लोक 5 तथा गीता अध्याय 2 श्लोक 12 में कहा है कि मेरे तथा तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं, तू नहीं जानता, मैं जानता हूँ। ऐसा नहीं है कि मैं तथा तू तथा ये सैनिक पहले नहीं थे या आगे नहीं रहेंगे। गीता अध्याय 10 श्लोक 2 में कहा है कि मेरी उत्पत्ति (जन्म) को देवता भी नहीं जानते क्योंकि ये सर्व मेरे से उत्पन्न हुए हैं।

गीता अध्याय 4 श्लोक 9 में कहा है कि मेरे जन्म और कर्म अलौकिक हैं। उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि ब्रह्म की भी उत्पत्ति हुई है। उसको तो पूर्ण परमात्मा ही बताता है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म (सत्पुरुष) कविर्देव की शब्द शक्ति से अण्डे से काल (ब्रह्म) की उत्पत्ति हुई है, यही प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 3 श्लोक 14-15 में भी है। जैसे पिता की उत्पत्ति बच्चे नहीं जानते, परन्तु दादा जी (पिता का पिता) ही बता सकता है। यहाँ यह संकेत है कि ब्रह्म कह रहा है कि मेरी उत्पत्ति भी है, परन्तु मेरे से उत्पन्न देवता (ब्रह्मा-विष्णु - शिव) भी नहीं जानते।

विशेष :- व्यक्त का भावार्थ है कि प्रत्यक्ष दिखाई देना अर्थात् साक्षात्कार होना। अव्यक्त का भावार्थ होता है कि कोई वस्तु है परन्तु अदृश्य है। जैसे आकाश में बादल छा जाते हैं तो सूर्य अव्यक्त (अदृश) हो जाता है। परन्तु बादलों के पार विद्यमान है। ऐसे सर्व प्रभु मानव सदृश शरीर में विद्यमान हैं। परन्तु हमारी दृष्टि से परे हैं। इसलिए अव्यक्त कहे जाते हैं। एक अव्यक्त तो गीता ज्ञान दाता है जो गीता अध्याय 7 श्लोक 24-25 में प्रमाण है यह ब्रह्म अर्थात् क्षर पुरुष अव्यक्त हुआ। दूसरा अव्यक्त गीता अध्याय 8 श्लोक 18 में कहा है कि सर्व संसार दिन में अव्यक्त से उत्पन्न होता है यह परब्रह्म अर्थात् अक्षर पुरुष अव्यक्त हुआ। तीसरा अव्यक्त गीता अध्याय 8 श्लोक 20-21 में कहा है कि उस (श्लोक 18 में वर्णित) अव्यक्त से दूसरा अव्यक्त कभी नष्ट नहीं होता। यह परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म हुआ। इस प्रकार तीनों परमात्मा साकार है परन्तु जीव की दृष्टि से परे हैं इसलिए अव्यक्त कहलाते हैं। अध्याय 7 के श्लोक 26 से 28 तक इन श्लोकों में गीता ज्ञान दाता भगवान कह रहा है कि मैं (ब्रह्म) भूत-भविष्य तथा वर्तमान में सर्व प्राणियों (जो मेरे इक्कीस ब्रह्माण्डों में मेरे आधीन हैं)की स्थिति से परीचित हूँ कि किसका जन्म किस योनी में होगा। परन्तु मुझे कोई नहीं जान सकता। सब संसार राग, द्वेष, मोह से दुःखी है तथा अज्ञानी हो चुका है। जिनके राग-द्वेष व मोह दूर हो गया वे पाप रहित प्राणी ही मेरा भजन कर सकते हैं अन्यथा नहीं। विचार करें : राग द्वेष व मोह और पाप रहित प्राणी ही प्रभु चिन्तन कर सकते हैं, अन्य नहीं। पाप रहित का भाव है कि जिनका संशय मिट गया कि देवी-देवताओं और ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा माता की पूजा से तो ब्रह्म (काल) साधना अधिक लाभदायक है। फिर वह साधक निष्कपट (पाप रहित) भाव से भगवन चिंतन करता है। जो साधना पवित्र वेदों व पवित्र गीता में वर्णित है उससे साधक तीन लोक व इक्कीस ब्रह्माण्ड (काल लोक) में विकारों से रहित हो ही नहीं सकता। फिर आम भक्त

कैसे पाप या कर्म मुक्त हो सकता है? राग-द्वेष, मोह आदि से भगवान विष्णु भी नहीं बचे, न ब्रह्मा जी न शिव जी। फिर आम व्यक्ति कैसे उम्मीद रख सकता है? यहाँ मुझे दास (रामपाल दास) अर्थात् अनुवादकर्ता के कहने का भाव यह है कि वेदों व गीता में वर्णित भक्ति विधि से साधक पाप मुक्त नहीं होता अपितु “जैसा कर्म वैसा भोग” वाला सिद्धान्त ही प्राप्त होता है। जैसे भगवान विष्णु अवतार श्री रामचन्द्र जी ने बाली को धोखे से मारा था। उसका बदला श्री कृष्ण रूप में देना पड़ा। पापनाशक परमात्मा पूर्ण ब्रह्म है वह विधि पांचवें वेद में अर्थात् स्वसम वेद में लिखी है। इसलिए तत्त्वदर्शी सन्त ही उस पाप नाशक साधना को बताता है जिससे साधक पाप रहित होकर पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है।

॥ काल के जाल से कौन छूटते हैं? ॥

अध्याय 7 के श्लोक 29 का अर्थ है कि जो मुझे कि मैं काल हूँ तथा मेरी पूजा भी अति अश्रेष्ठ है ऐसे तत्त्वज्ञान से जान लेते हैं तथा सम्पूर्ण अध्यात्म व सम्पूर्ण कर्म को तथा तत् ब्रह्म अर्थात् उस पूर्ण परमात्मा को जानते हैं वे उस परमात्मा के आश्रित हो कर दुःखदाई बुढ़ापा तथा मृत्यु से छूटने की कोशिश करते हैं अर्थात् जन्म-मरण से पूर्ण मुक्ति की कोशिश करते हैं। अध्याय 7 के श्लोक 30 में कहा है कि जो साधक मुझे तथा तीनों तापों (दुःखों को जो काल द्वारा जीव को पीड़ा दी जाती है) सहित जानता है और (अधियज्ञ) यज्ञों में प्रतिष्ठित पूर्णब्रह्म को जान कर हम दोनों के भेद को समझ कर वे फिर मुझे तत्व से जान कर कि मैं काल हूँ तथा पूर्ण परमात्मा ही पूर्ण मुक्ति दायक है फिर अंत समय में पूर्ण परमात्मा के भजन में मन को एकाग्र रखता है। इसलिए काल के दुःखों के डर के कारण काल जाल से निकल जाता है। {जैसे हम सतनाम जाप करते हैं उसमें काल (ब्रह्म) का जाप ऊँ भी है। जिसका जाप हम इस भाव से करते हैं कि हे सतपुरुष इस काल (ब्रह्म) के दुःख से बचाइए, इसका ऋण मुक्त हो जाए ताकि हमारा सदा के लिए इस काल (ज्योति निरंजन) से छुटकारा हो जाए तथा पूर्ण परमात्मा के भजन व पाने को मन लगाए रहते हैं। यदि काल (ज्योति निरंजन) के दुःख की भूल पड़ जाए तो जीव फिर भजन में आलस कर सकता है। इसलिए काल (ज्योति निरंजन) को तथा उस द्वारा जीवों को दी जा रही पीड़ा (कष्ट) व (अनुत्तमाम् गतिम्) अति अश्रेष्ठ मुक्ति जो अध्याय 7 के श्लोक 18 में कही है को जान कर जीव उस परमात्मा के आश्रित हो कर उसी पूर्ण ब्रह्म की भक्ति में चितको दृढ़ भाव से (एकाग्र चित्त से) अनन्य मन से रखता है अर्थात् विचलित नहीं होता।}

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा जो यज्ञों में प्रतिष्ठित (अधियज्ञ) है। अध्याय 3 के श्लोक 14,15 में पूर्ण विवरण है।

शंका-प्रभु प्रेमी पाठकों के मन में शंका उत्पन्न होगी कि जब ब्रह्म (काल) अपनी साधना को भी (अनुत्तमाम्) अति अश्रेष्ठ कह रहे हैं (गीता अध्याय 7 श्लोक 18) तो फिर अपनी साधना करने को क्यों कह रहे हैं (गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15) तथा तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव) की भक्ति करने वालों को हेय किसलिए कहा है?

शंका समाधान :- शास्त्र अनुकूल भक्ति पवित्र वेदों व पवित्र गीता जी में वर्णित विधि (ओ३म् नाम का जाप उच्चारण करके स्मरण करने व धर्म, ध्यान, प्रणाम, हवन, ज्ञान ये पाँचों यज्ञ करने) से प्रारम्भ होती है। उससे ब्रह्मलोक में बने महास्वर्ग में एक कल्प या महाकल्प तक मोक्ष सुख प्राप्त होता है, परन्तु पाप कर्मों के दण्ड आधार से नरक तथा फिर चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट भी उठाना ही पड़ेगा। एक मानव शरीर फिर प्राप्त होगा। वे पुण्यात्माएँ जब मानव

शरीर में होंगी और उन्हें कोई तत्त्वदर्शी संत पूर्ण परमात्मा (सतपुरुष) का ज्ञान बताएगा तो वे शीघ्र ही उस साधना पर लग जाती हैं, क्योंकि उनमें पिछले भक्ति संस्कार विद्यमान होते हैं तथा सत्य साधना करके पूर्ण मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। अन्य देवताओं की पूजा से मोक्ष समय बहुत कम तथा नरक समय अधिक होता है तथा चौरासी लाख योनियों का कष्ट भी अधिक समय तक होता है। जैसे एक प्रकार के प्राणी (कुत्ते) के जन्म ही लगातार 20 हो जाएँ, फिर दूसरे प्राणी के भी अधिक होने के कारण अधिक कष्ट उठाते हैं। परन्तु मर्यादावत् ब्रह्म (काल) साधना करने वालों के प्रत्येक योनी के संस्कार वश कम जन्म होते हैं तथा चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों का शीघ्र-शीघ्र भोगा जाता है। जैसे कुत्ते की मृत्यु 10 वर्ष में होती है, एक माता के गर्भ से बाहर आते ही मर जाता है। जैसे ऋषि सुखदेव जी का जीव मादा तोते के अण्डे में ही था, अण्डा खराब हो कर छूटकारा हो गया, नहीं तो तोतेकी आयु मनुष्य से भी अधिक होती है। इस प्रकार कष्टमय शरीरों से शीघ्र छूटकारा हो जाता है।

अन्य देवताओं के साधकों को जब कभी मानव शरीर प्राप्त होता है तो वे फिर अपने पिछले संस्कार स्वभाववश उन्हीं तीनों गुणों (रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव आदि अन्य देवताओं) की तथा भूत-भैरवों व पितरों की ही पूजा करते हैं, कहने से भी नहीं मानते। प्रमाण पवित्र गीता अध्याय 16 श्लोक 4 से 20 तक तथा पवित्र गीता अध्याय 17 श्लोक 1 से 10 तक। जो साधक शास्त्र अनुकूल साधना पिछले जन्म में करते थे उनमें दो प्रकार के बताए हैं, एक तो ब्रह्म साधक जो ओ३म् नाम मंत्र जाप व पाँचों यज्ञ किया करते थे, वे तो महास्वर्ग, नरक व अन्य प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाते रहते हैं। उनके मानव जन्म भी लगातार एक से अधिक भी हो सकते हैं। यदि उन सर्व मानव जन्मों में भी पूर्ण (तत्त्वदर्शी) संत नहीं मिला फिर उपरोक्त सर्व स्थितियों से गुजरना पड़ता है। परन्तु सत्य साधना पर शीघ्र लग जाते हैं। दूसरी प्रकार के शास्त्र विधि अनुसार साधना करने वाले वे साधक हैं जो कभी किसी युग में पूर्ण परमात्मा की साधना पूर्ण संत (तत्त्वदर्शी संत) से प्राप्त करके किया करते थे। परन्तु मुक्त नहीं हो पाए। वे साधक एक ब्रह्मण्ड में बने सतगुरु कबीर लोक में चले जाते हैं। जहाँ पर उन साधकों की अपनी भक्ति कमाई समाप्त नहीं होती, क्योंकि परमपिता का भण्डारा मुफ्त (निःशुल्क) चलता रहता है। वहाँ अन्य कोई नहीं जा सकता। फिर उन साधकों को पूर्ण परमात्मा पुनर् मानव जन्म उस समय प्रदान करता है जब कोई (तत्त्वदर्शी) संत पूर्ण साधना बताने वाला आने वाला होता है। उस समय वे साधक उस सत्य साधना बताने वाले पूर्ण संत की वाणी पर (प्रवचनों पर) शीघ्र विश्वास कर लेते हैं तथा भक्ति प्रारम्भ कर देते हैं। उन्हीं में से कुछ आत्माएँ नकली सतलोक साधना का मिलता-जुलता ज्ञान बताने वाले नकली संतों को पूर्ण संत मान कर उसी पर आधारित हो जाती हैं तथा फिर कुएँ के मेंढक बन कर उसी ज्ञान को सुनते रहते हैं। सत्यज्ञान को सुन कर आँखों देखकर भी नहीं मानते दूसरी प्रकार के शास्त्र अनुकूल साधक जो किसी युग में सतनाम जाप वाली साधना किए हुए हैं वे पिछले शास्त्र अनुकूल साधक भी काल जाल में ही रह जाते हैं। यदि वे तत्त्वज्ञान को ध्यान से सुन व पढ़ लेंगे तो तुरन्त पूर्ण संत (तत्त्वदर्शी संत) की शरण में आ जाते हैं। जो पूर्ण संत की शरण में नहीं आते वे पिछले सत्यभक्ति साधना की कमाई अनुसार अनेकों मानव शरीर प्राप्त करते रहते हैं तथा पूर्ण संत के अभाव से फिर चौरासी लाख प्राणियों के शरीरों व नरक-स्वर्ग के चक्र में फँस जाते हैं। इसी का प्रमाण पवित्र यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 1 से 4 तक में भी है।



॥सातवें अध्याय के अनुवाद सहित श्लोक॥

परमात्मने नमः

अथ सप्तमोऽध्यायः

अध्याय 7 का श्लोक 1 (भगवान उवाच)

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु । १ ।

मयि, आसक्तमनाः, पार्थ, योगम्, युजन्, मदाश्रयः,
असंशयम्, समग्रम्, माम्, यथा, ज्ञास्यसि, तत्, शृणु ।। 1 ।।

अनुवाद : (पार्थ) हे पार्थ! (मयि, आसक्तमनाः) मुझमें आसक्तचित्त भावसे (मदाश्रयः) मतके परायण होकर (योगम्) योगमें (युजन्) लगा हुआ तू (यथा) जिस प्रकारसे (समग्रम्) सम्पूर्ण रूपसे (माम्) मुझको (असंशयम्) संशयरहित (ज्ञास्यसि) जानेगा (तत्) उसको (शृणु) सुन। (1)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे पार्थ! मुझमें आसक्तचित्त भाव से मेरे मत के परायण होकर योगमें लगा हुआ तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण रूपसे मुझको संशयरहित जानेगा उसको सुन। (1)

अध्याय 7 का श्लोक 2

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते । २ ।

ज्ञानम्, ते, अहम्, सविज्ञानम्, इदम्, वक्ष्यामि, अशेषतः,
यत्, ज्ञात्वा, न, इह, भूयः, अन्यत्, ज्ञातव्यम्, अवशिष्यते ।। 2 ।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (ते) तेरे लिये (इदम्) इस (सविज्ञानम्) विज्ञानसहित (ज्ञानम्) तत्त्वज्ञानको (अशेषतः) सम्पूर्णतया (वक्ष्यामि) कहूँगा (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जानकर (इह) संसारमें (भूयः) फिर (अन्यत्) और कुछ भी (ज्ञातव्यम्) जानेनेयोग्य (न, अवशिष्यते) शेष नहीं रह जाता। (2)

केवल हिन्दी अनुवाद : मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्त्वज्ञानको सम्पूर्णतया कहूँगा जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जानेनेयोग्य शेष नहीं रह जाता। (2)

अध्याय 7 का श्लोक 3

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः । ३ ।

मनुष्याणाम्, सहस्रेषु, कश्चित्, यतति, सिद्धये,
यतताम्, अपि, सिद्धानाम्, कश्चित्, माम्, वेत्ति, तत्त्वतः ।। 3 ।।

अनुवाद : (सहस्रेषु) हजारों (मनुष्याणाम्) मनुष्योंमें (कश्चित्) कोई एक (सिद्धये) प्रभु प्राप्तिके लिये (यतति) यत्न करता है (यतताम्) यत्न करनेवाले (सिद्धानाम्) योगियोंमें (अपि) भी (कश्चित्) कोई एक (माम्) मुझको (तत्त्वतः) तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे (वेत्ति) जानता है। (3)

केवल हिन्दी अनुवाद : हजारों मनुष्योंमें कोई एक प्रभु प्राप्तिके लिये यत्न करता है यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

भावार्थ :- इस श्लोक 3 का भावार्थ यह है कि वेद ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि हजार व्यक्तियों में कोई एक परमात्मा की साधना करता है। उन साधना करने वालों में कोई एक ही मुझे तत्व से जानता है। काल भगवान कह रहा है कि परमात्मा को भजने वाले बहुत कम हैं। जो साधना कर रहे हैं वे मनमाना आचरण(पूजा) अर्थात् शास्त्रविधि रहित पूजा करते हैं जो व्यर्थ है। (गीता अध्याय 16 श्लोक 23 में) जो मुझे भजते हैं उन में भी कोई एक ही वेदों अनुसार अर्थात् वेदों को अपनी बुद्धि से समझ कर मेरी साधना करता है। वह अन्य देवी-देवता आदि की पूजा नहीं करता केवल एक मुझ ब्रह्म की पूजा करता है वह ज्ञानी आत्मा है। इस श्लोक 3 का सम्बन्ध अध्याय 7 श्लोक 17 से 19 तक से है।

अध्याय 7 का श्लोक 4,5

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा । ४ ।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् । ५ ।

भूमिः, आपः, अनलः, वायुः, खम्, मनः, बुद्धिः, एव, च,

अहंकारः, इति, इयम्, मे, भिन्ना, प्रकृतिः, अष्टधा । 4 ।।

अपरा, इयम्, इतः, तु, अन्याम्, प्रकृतिम्, विद्धि, मे, पराम्,

जीवभूताम्, महाबाहो, यया, इदम्, धार्यते, जगत् । 5 ।।

अनुवाद : (भूमिः) पृथ्वी (आपः) जल (अनलः) अग्नि (वायुः) वायु (खम्) आकाश आदि से स्थूल शरीर बनता है (एव) इसी प्रकार (मनः) मन (बुद्धिः) बुद्धि (च) और (अहंकारः) अहंकार आदि से सूक्ष्म शरीर बनता है (इति) इस प्रकार (इयम्) यह (अष्टधा) आठ प्रकारसे अर्थात् अष्टंगी ही (भिन्ना) विभाजित (मे) मेरी (प्रकृतिः) प्रकृति अर्थात् दुर्गा है (इयम्) ये (तु) तो (अपरा) अपरा अर्थात् इसके तुल्य दूसरी देवी नहीं है तथा उपरोक्त दोनों शरीरों में इसी का परम योगदान है और (महाबाहो) हे महाबाहो! (इतः) इससे (अन्याम्) दूसरीको (यया) जिससे (इदम्) यह सम्पूर्ण (जगत्) जगत् (धार्यते) संभाला जाता है। (मे) मेरी (जीवभूताम्) जीवरूपा चेतन (पराम्) दूसरी अर्थात् साकार चेतन (प्रकृतिम्) प्रकृति अर्थात् दुर्गा (विद्धि) जान। क्योंकि दुर्गा ही अन्य रूप बनाकर सागर में छूपी तथा लक्ष्मी-सावित्री व उमा रूप बनाकर तीनों देवों से शादी करके जीव उत्पत्ति की। (4-5)

केवल हिन्दी अनुवाद : पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश आदि से स्थूल शरीर बनता है इसी प्रकार मन बुद्धि और अहंकार आदि से सूक्ष्म शरीर बनता है इस प्रकार यह आठ प्रकारसे अर्थात् अष्टंगी ही विभाजित मेरी प्रकृति अर्थात् दुर्गा है ये तो अपरा अर्थात् इसके तुल्य दूसरी देवी नहीं है तथा उपरोक्त दोनों शरीरों में इसी का परम योगदान है और हे महाबाहो! इससे दूसरीको जिससे यह सम्पूर्ण जगत् संभाला जाता है। मेरी जीवरूपा चेतन दूसरी साकार चेतन प्रकृति अर्थात् दुर्गा जान। क्योंकि दुर्गा ही अन्य रूप बनाकर सागर में छूपी तथा लक्ष्मी-सावित्री व उमा रूप बनाकर तीनों देवों (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) से विवाह करके जीवों की उत्पत्ति की। (4-5)

अध्याय 7 का श्लोक 6

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। ६।
एतद्योनीनि, भूतानि, सर्वाणि, इति, उपधारय,
अहम्, कृत्स्नस्य, जगतः, प्रभवः, प्रलयः, तथा।। 6।।

अनुवाद : (इति) इस प्रकार (उपधारय) भूल भूलईयां करके (सर्वाणि) सम्पूर्ण (भूतानि) प्राणी (एतद्योनीनि) इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होते हैं और (अहम्) मैं (कृत्स्नस्य) सम्पूर्ण (जगतः) जगत्का (प्रभवः) उत्पन्न (तथा) तथा (प्रलयः) नाश हूँ। (6)

केवल हिन्दी अनुवाद : इस प्रकार भूल भूलईयां करके सम्पूर्ण प्राणी इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होते हैं और मैं सम्पूर्ण जगत्का उत्पन्न तथा नाश हूँ। (6)

अध्याय 7 का श्लोक 7

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव। ७।
मत्तः, परतरम्, न, अन्यत्, किञ्चित्, अस्ति, धनजय,
मयि, सर्वम्, इदम्, प्रोतम्, सूत्रे, मणिगणाः, इव।। 7।।

अनुवाद : (धनजय) हे धनजय! उपरोक्त (मत्तः) अर्थात् सिद्धान्त से (अन्यत्) दूसरा (किञ्चित्) कोई भी (परतरम्) परम कारण (न) नहीं (अस्ति) है। (इदम्) यह (सर्वम्) सम्पूर्ण जगत् (सूत्रे) सूत्रमें (मणिगणाः) मणियोंके (इव) सदृश (मयी) मुझ में (प्रोतम्) गुँथा हुआ है। (7)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे धनजय! उपरोक्त अर्थात् सिद्धान्त से दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें मणियोंके सदृश मुझ में गुँथा हुआ है। (7)

अध्याय 7 का श्लोक 8

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु। ८।
रसः, अहम्, अप्सु, कौन्तेय, प्रभा, अस्मि, शशिसूर्ययोः,
प्रणवः, सर्ववेदेषु, शब्दः, खे, पौरुषम्, नृषु।। 8।।

अनुवाद : (कौन्तेय) हे अर्जुन! (अहम्) मैं (अप्सु) जलमें (रसः) रस हूँ (शशिसूर्ययोः) चन्द्रमा और सूर्यमें (प्रभा) प्रकाश (अस्मि) हूँ (सर्ववेदेषु) सम्पूर्ण वेदोंमें (प्रणवः) ओंकार हूँ (खे) आकाशमें (शब्दः) शब्द और (नृषु) मनुष्योंमें (पौरुषम्) पुरुषत्व हूँ। (8)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे अर्जुन! मैं जलमें रस हूँ चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ सम्पूर्ण वेदोंमें ओंकार हूँ आकाशमें शब्द और मनुष्योंमें पुरुषत्व हूँ। (8)

अध्याय 7 का श्लोक 9

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु। ९।
पुण्यः, गन्धः, पृथिव्याम्, च, तेजः, च, अस्मि, विभावसौ,
जीवनम्, सर्वभूतेषु, तपः, च, अस्मि, तपस्विषु।। 9।।

अनुवाद : (पृथिव्याम्) पृथ्वीमें (पुण्यः) पवित्र (गन्धः) गन्ध (च) और (विभावसौ) अग्निमें (तेजः) तेज (अस्मि) हूँ (च) तथा (सर्वभूतेषु) सम्पूर्ण प्राणियों में उनका (जीवनम्) जीवन हूँ (च) और (तपस्विषु) तपस्वियोंमें (तपः) तप (अस्मि) हूँ। (9)

केवल हिन्दी अनुवाद : पृथ्वीमें पवित्र गन्ध और अग्निमें तेज हूँ तथा सम्पूर्ण प्राणियों में उनका जीवन हूँ और तपस्वियोंमें तप हूँ। (9)

अध्याय 7 का श्लोक 10

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्। १०।

बीजम्, माम्, सर्वभूतानाम्, विद्धि पार्थ, सनातनम्,

बुद्धिः, बुद्धिमताम्, अस्मि, तेजः, तेजस्विनाम्, अहम्। 10।।

अनुवाद : (पार्थ) हे अर्जुन! तू (सर्वभूतानाम्) सम्पूर्ण प्राणियोंका (सनातनम्) आदि (बीजम्) कारण (माम्) मुझको ही (विद्धि) जान (अहम्) मैं (बुद्धिमताम्) बुद्धिमानोंकी (बुद्धिः) बुद्धि और (तेजस्विनाम्) तेजस्वियोंका (तेजः) तेज (अस्मि) हूँ। (10)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे अर्जुन! तू सम्पूर्ण प्राणियोंका आदि कारण मुझको ही जान मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ। (10)

अध्याय 7 का श्लोक 11

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। ११।

बलम्, बलवताम्, च, अहम्, कामरागविवर्जितम्,

धर्माविरुद्धः, भूतेषु, कामः अस्मि, भरतर्षभ। 11।।

अनुवाद : (भरतर्षभ) हे भरतश्रेष्ठ! (अहम्) मैं (बलवताम्) बलवानोंका (कामरागविवर्जितम्) आसक्ति और कामनाओंसे रहित (बलम्) सामर्थ्य हूँ (च) और (भूतेषु) मेरे अन्तर्गत सर्व प्राणियों में (धर्माविरुद्धः) धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल (कामः) कर्म (अस्मि) हूँ। (11)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित सामर्थ्य हूँ और मेरे अन्तर्गत सर्व प्राणियों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल कर्म हूँ। (11)

अध्याय 7 का श्लोक 12

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।

मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि। १२।

ये, च, एव, सात्त्विकाः, भावाः, राजसाः, तामसाः, च, ये,

मत्तः, एव, इति, तान्, विद्धि, न, तु, अहम्, तेषु, ते, मयि। 12।।

अनुवाद : (च) और (एव) भी (ये) जो (सात्त्विकाः) सत्त्वगुण विष्णु जी से स्थिति (भावाः) भाव हैं और (ये) जो (राजसाः) रजोगुण ब्रह्मा जी से उत्पत्ति (च) तथा (तामसाः) तमोगुण शिव से संहार हैं (तान्) उन सबको तू (मत्तः, एव) मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं (इति) ऐसा (विद्धि) जान (तु) परंतु वास्तवमें (तेषु) उनमें (अहम्) मैं और (ते) वे (मयि) मुझमें (न) नहीं हैं। (12)

केवल हिन्दी अनुवाद : और भी जो सत्त्वगुण विष्णु जी से स्थिति भाव हैं और जो रजोगुण

ब्रह्मा जी से उत्पत्ति तथा तमोगुण शिव से संहार हैं उन सबको तू मेरे द्वारा सुनियोजित नियमानुसार ही होने वाले हैं ऐसा जान (तु) परंतु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं। (12)

अध्याय 7 का श्लोक 13

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्। १३।

त्रिभिः, गुणमयैः, भावैः, एभिः, सर्वम्, इदम्, जगत्,

मोहितम्, न अभिजानाति, माम्, एभ्यः, परम्, अव्ययम् ॥13 ॥

अनुवाद : (एभिः) इन (गुणमयैः) गुणोंके कार्यरूप सात्विक श्री विष्णु जी के प्रभाव से, राजस श्री ब्रह्मा जी के प्रभाव से और तामस श्री शिवजी के प्रभाव से (त्रिभिः) तीनों प्रकारके (भावैः) भावोंसे (इदम्) यह (सर्वम्) सारा (जगत्) संसार - प्राणिसमुदाय (माम्) मुझ काल के ही जाल में (मोहितम्) मोहित हो रहा है अर्थात् फंसा है (एभ्यः) इसलिए (परम् अव्ययम्) पूर्ण अविनाशीको (न) नहीं (अभिजानाति) जानता। (13)

केवल हिन्दी अनुवाद : इन गुणोंके कार्यरूप सात्विक श्री विष्णु जी के प्रभाव से, राजस श्री ब्रह्मा जी के प्रभाव से और तामस श्री शिवजी के प्रभाव से तीनों प्रकारके भावोंसे यह सारा संसार - प्राणिसमुदाय मुझ काल के ही जाल में मोहित हो रहा है अर्थात् फंसा है इसलिए पूर्ण अविनाशीको नहीं जानता। (13)

{परमेश्वर कबीर बन्दी छोड़ जी की महिमा सन्त गरीबदास जी ने कही है तथा काल का जाल समझाया है :- गरीब, ब्रह्मा विष्णु महेश, माया और धर्मराया(काल) कहिए। इन पाँचों मिल प्रपंच बनाया वाणी हमरी लहिए ॥}

अध्याय 7 का श्लोक 14

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। १४।

दैवी, हि, एषा, गुणमयी, मम, माया, दुरत्यया, माम्,

एव, ये, प्रपद्यन्ते, मायाम्, एताम्, तरन्ति, ते ॥14 ॥

अनुवाद : (हि) क्योंकि (एषा) यह (दैवी) अलौकिक अर्थात् अति अद्भूत (गुणमयी) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण शिव रूपी त्रिगुणमयी (मम) मेरी (माया) माया (दुरत्यया) बड़ी दुस्तर है परंतु (ये) जो पुरुष केवल (माम्) मुझको (एव) ही निरन्तर (प्रपद्यन्ते) भजते हैं (ते) वे (एताम्) इस (मायाम्) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु तथा तमगुण रूपी मायाका (तरन्ति) उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् तीनों गुणों रजगुण ब्रह्माजी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी से ऊपर उठ कर काल ब्रह्म की साधना में लग जाते हैं। (14)

केवल हिन्दी अनुवाद : क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भूत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाका उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् तीनों गुणों रजगुण ब्रह्माजी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिवजी से ऊपर उठ जाते हैं। (14)

अध्याय 7 का श्लोक 15

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।

माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः। १५।

माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः। १५।

न, माम्, दुष्कृतिनः, मूढाः, प्रपद्यन्ते, नराधमाः,
मायया, अपहृतज्ञानाः, आसुरम्, भावम्, आश्रिताः ॥15॥

अनुवाद : (मायया) रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी रूपी त्रिगुणमई माया की साधना से होने वाला क्षणिक लाभ पर ही आश्रित हैं अन्य साधना नहीं करना चाहते अर्थात् इसी त्रिगुणमई माया के द्वारा (अपहृतज्ञानाः) जिनका ज्ञान हरा जा चुका है जो मेरी अर्थात् ब्रह्म साधना भी नहीं करते, इन्हीं तीनों देवताओं तक सीमित रहते हैं ऐसे (आसुरम् भावम्) आसुर स्वभावको (आश्रिताः) धारण किये हुए (नराधमाः) मनुष्यों में नीच (दुष्कृतिनः) दूषित कर्म करनेवाले (मूढाः) मूर्ख (माम्) मुझको (न) नहीं (प्रपद्यन्ते) भजते अर्थात् वे तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) की साधना ही करते रहते हैं। (15)

केवल हिन्दी अनुवाद : मायाके द्वारा अर्थात् रजगुण ब्रह्मा, सतगुण विष्णु, तमगुण शिव जी रूपी त्रिगुणमई माया की साधना से होने वाला क्षणिक लाभ पर ही आश्रित हैं जिनका ज्ञान हरा जा चुका है जो मेरी अर्थात् ब्रह्म साधना भी नहीं करते, इन्हीं तीनों देवताओं तक सीमित रहते हैं ऐसे आसुर स्वभावको धारण किये हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करनेवाले मूर्ख मुझको नहीं भजते अर्थात् वे तीनों गुणों (रजगुण-ब्रह्मा, सतगुण-विष्णु, तमगुण-शिव) की साधना ही करते रहते हैं। (15)

भावार्थ - गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 का भावार्थ है कि जो साधक स्वभाव वश तीनों गुणों रजगुण ब्रह्मा जी, सतगुण विष्णु जी, तमगुण शिव जी तक की साधना से मिलने वाले लाभ पर ही आश्रित रहकर इन्हीं तीनों प्रभुओं की भक्ति से जिन का ज्ञान हरा जा चुका है वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए मनुष्यों में नीच, शास्त्र विधि विरुद्ध भक्ति रूपी दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मुझ ब्रह्म को भी नहीं भजते गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 का भी इन्हीं से लगातार सम्बन्ध है।

अध्याय 7 का श्लोक 16

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। १६।
चतुर्विधाः, भजन्ते, माम्, जनाः, सुकृतिनः, अर्जुन,
आर्तः, जिज्ञासुः, अर्थार्थी, ज्ञानी, च, भरतर्षभ ॥16॥

अनुवाद : (भरतर्षभ अर्जुन) हे भरत वंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! (सुकृतिनः) उत्तम कर्म करनेवाले (अर्थार्थी) वेद मन्त्रों द्वारा धन लाभ के लिए अनुष्ठान करने वाला अर्थार्थी (आर्तः) वेद मन्त्रों द्वारा संकट निवारण के लिए अनुष्ठान करने वाले आर्त (जिज्ञासुः) परमात्मा के विषय में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से ज्ञान ग्रहण करके वेदों के आधार से ज्ञानवान बनकर वक्ता बन जाता है वह जिज्ञासु (च) और (ज्ञानी) जिसे यह ज्ञान हो गया कि मनुष्य जन्म केवल परमात्मा प्राप्ति के लिए ही है। परमात्मा प्राप्ति भी केवल एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की साधना अनन्य मन से करने से होती है वह ज्ञानी ऐसे (चतुर्विधाः) चार प्रकार के (जनाः) भक्तजन (माम्) मुझको (भजन्ते) भजते हैं। (16)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे भरत वंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करनेवाले वेद मन्त्रों द्वारा धन लाभ के लिए अनुष्ठान करने वाला अर्थार्थी वेद मन्त्रों द्वारा संकट निवारण के लिए अनुष्ठान करने वाले आर्त परमात्मा के विषय में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से ज्ञान ग्रहण करके वेदों के आधार से ज्ञानवान बनकर वक्ता बन जाता है वह जिज्ञासु और जिसे यह ज्ञान हो गया कि मनुष्य

जन्म केवल परमात्मा प्राप्ति के लिए ही है। परमात्मा प्राप्ति भी केवल एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की साधना अनन्य मन से करने से होती है वह ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझको भजते हैं। (16)

अध्याय 7 का श्लोक 17

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः । १७ ।
तेषाम्, ज्ञानी, नित्ययुक्तः, एकभक्तिः, विशिष्यते,
प्रियः, हि, ज्ञानिनः, अत्यर्थम्, अहम्, सः, च, मम, प्रियः ॥१७॥

अनुवाद : (तेषाम्) उनमें (नित्ययुक्तः) नित्य स्थित (एकभक्तिः) एक परमात्मा की भक्तिवाला (ज्ञानी) विद्वान (विशिष्यते) अति उत्तम है (हि) क्योंकि (ज्ञानिनः) ज्ञानीको (अहम्) मैं (अत्यर्थम्) अत्यन्त (प्रियः) प्रिय हूँ (च) और (सः) वह ज्ञानी (मम) मुझे अत्यन्त (प्रियः) प्रिय है। (17)

केवल हिन्दी अनुवाद : उनमें नित्य स्थित एक परमात्मा की भक्तिवाला विद्वान अति उत्तम है क्योंकि ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है। (17)

अध्याय 7 का श्लोक 18

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् । १८ ।
उदाराः, सर्वे, एव, एते, ज्ञानी, तु, आत्मा, एव, मे, मतम्,
आस्थितः, सः, हि, युक्तात्मा, माम्, एव, अनुत्तमाम्, गतिम् ॥१८॥

अनुवाद : (हि) क्योंकि (मे) मेरे (मतम्) विचार में (एते) ये (सर्वे, एव) सभी ही (ज्ञानी) ज्ञानी (आत्मा) आत्मा (उदाराः) उदार हैं (तु) परंतु (सः) वह (माम्) मुझमें (एव) ही (युक्तात्मा) लीन आत्मा (अनुत्तमाम्) मेरी अति घटिया (गतिम्) मुक्तिमें (एव) ही (आस्थितः) आश्रित हैं। (18)

केवल हिन्दी अनुवाद : क्योंकि मेरे विचार में ये सभी ही ज्ञानी आत्मा उदार हैं परंतु वह मुझमें ही लीन आत्मा मेरी अति घटिया मुक्तिमें ही आश्रित हैं। (18)

गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 का भावार्थ है कि मेरी अर्थात् ब्रह्म की भक्ति भी चार प्रकार के भक्त करते हैं 1. आर्त : जो संकट निवारण के लिए वेद मंत्रों से ही अनुष्ठान करते हैं 2. अर्थार्थी : जो धन लाभ के लिए वेद मंत्रों से ही अनुष्ठान आदि करता है 3. जिज्ञासु : जो ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से वेदों का पठन-पाठन करके ज्ञान संग्रह कर लेता है फिर वक्ता बनकर जीवन व्यर्थ कर जाता है 4. ज्ञानी : जिस साधक ने वेदों को पढ़ा तथा जाना कि मनुष्य जीवन केवल प्रभु प्राप्ति के लिए ही मिला है तथा एक पूर्ण परमात्मा की भक्ति से ही पूर्ण होगा। तत्त्वदर्शी संत जो गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णित है न मिलने से ब्रह्म को ही पूर्ण परमात्मा मान कर काल (ब्रह्म) साधना करते रहे जो अति अनुत्तम कही है अर्थात् ब्रह्म साधना भी अश्रेष्ठ है।

प्रश्न :- आपने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 के अनुवाद में अर्थ का अनर्थ किया है “अनुत्तमाम्” का अर्थ अश्रेष्ठ किया है। जब कि समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है जिस से उत्तम कोई और न हो उस के विषय में समास में अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम होता है। अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने सही अर्थ किया है अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम किया है।

उत्तर :- मैं आप की इस बात को सत्य मानकर आप से प्रार्थना करता हूँ कि “गीता ज्ञान

दाता अपनी साधना के विषय में गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 में बता रहे हैं। यदि गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपनी साधना व गति को अनुत्तम कह रहे हैं। जिस का भावार्थ आप के समास के अनुसार यह हुआ कि गीता ज्ञान दाता की गति से उत्तम अन्य कोई गति नहीं अर्थात् मोक्ष लाभ नहीं।

गीता ज्ञान दाता स्वयं गीता अध्याय 18 श्लोक 62 व अध्याय 15 श्लोक 4 में किसी अन्य परमेश्वर की शरण में जाने को कह रहे हैं। उसी की कृपा से परम शान्ति व शाश्वत स्थान सदा रहने वाला मोक्ष स्थल अर्थात् सत्यलोक प्राप्त होगा। अपने विषय में भी कहा है कि मैं भी उसी की शरण हूँ। उसी पूर्ण परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए तथा कहा है कि उस परमेश्वर के परमपद (सत्यलोक) को प्राप्त करना चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक लौटकर इस संसार में कभी नहीं आते अर्थात् उनका जन्म मृत्यु सदा के लिए समाप्त हो जाता है।

गीता ज्ञान दाता ने अपने से अन्य परमात्मा के विषय में गीता अध्याय 18 श्लोक 46,61-62,64,66 अध्याय 15 श्लोक 4,16-17, अध्याय 13 श्लोक 12 से 17, 22 से 24, 27-28,30-31,34 अध्याय 5 श्लोक 6-10,13 से 21 तथा 24-25-26 अध्याय 6 श्लोक 7,19,20,25,26-27 अध्याय 4 श्लोक 31-32, अध्याय 8 श्लोक 3,8 से 10,17 से 22, अध्याय 7 श्लोक 19 से 29, अध्याय 14 श्लोक 19 आदि-2 श्लोकों में कहा है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम परमात्मा तो अन्य है जैसे गीता अध्याय 15 श्लोक 17 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि उत्तम पुरुषः तु अन्यः जिसका अर्थ है उत्तम परमात्मा तो अन्य ही है। इसलिए उस उत्तम पुरुष अर्थात् सर्वश्रेष्ठ परमात्मा की गति अर्थात् उस से मिलने वाला मोक्ष भी अति उत्तम हुआ। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि उस परमेश्वर अर्थात् पूर्ण परमात्मा की गति गीता ज्ञान दाता वाली गति से उत्तम हुई। इसलिए गीता ज्ञान दाता वाली गति सर्व श्रेष्ठ नहीं है। अर्थात् जिस से श्रेष्ठ कोई न हो। यह विशेषण भी गलत सिद्ध हुआ। क्योंकि जब गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ कोई और परमेश्वर है तो उस की गति भी गीता ज्ञान दाता से श्रेष्ठ है। इससे सिद्ध हुआ कि गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अनुत्तम का अर्थ अश्रेष्ठ ही न्याय संगत है अर्थात् उचित है। आप तथा अन्य गीता अनुवाद कर्त्ताओं ने अर्थ का अनर्थ किया है। जो अनुत्तम का अर्थ अति उत्तम कहा तथा किया है।

अध्याय 7 का श्लोक 19

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः। १९।

बहूनाम्, जन्मनाम्, अन्ते, ज्ञानवान्, माम्, प्रपद्यते,

वासुदेवः, सर्वम्, इति, सः, महात्मा, सुदुर्लभः ॥१९॥

अनुवाद : (बहूनाम्) बहुत (जन्मनाम्) जन्मोंके (अन्ते) अन्तके जन्ममें (ज्ञानवान्) तत्त्वज्ञानको प्राप्त (माम्) मुझको (प्रपद्यते) भजता है (वासुदेवः) वासुदेव अर्थात् सर्वव्यापक पूर्ण ब्रह्म ही (सर्वम्) सब कुछ है (इति) इस प्रकार जो यह जानता है (सः) वह (महात्मा) महात्मा (सुदुर्लभः) अत्यन्त दुर्लभ है। (19) श्री मदभागवत् के दशवें स्कंद के 51 वें अध्याय में स्वयं श्री कृष्ण ने कहा है कि श्री वासुदेव का पुत्र होने के कारण मुझे वासुदेव कहते हैं, न की सर्व का मालिक या सर्व व्यापक होने के कारण अर्थात् वासुदेव पूर्ण परमात्मा है।

केवल हिन्दी अनुवाद : बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त मुझको भजता है

वासुदेव अर्थात् सर्वव्यापक पूर्ण ब्रह्म ही सब कुछ है इस प्रकार जो यह जानता है वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। (19) श्री मदभागवत् के दशवें स्कंद के 51 वें अध्याय में स्वयं श्री कृष्ण ने कहा है कि श्री वासुदेव का पुत्र होने के कारण मुझे वासुदेव कहते हैं, न की सर्व का मालिक या सर्व व्यापक होने के कारण, अर्थात् वासुदेव पूर्ण परमात्मा है।

भावार्थ - गीता अध्याय 7 श्लोक 19 का भावार्थ है कि मुझ ब्रह्म की साधना भी बहुत जन्मों के बाद कोई-कोई करता है, नहीं तो अन्य देवताओं की पूजा ही करते रहते हैं तथा यह बताने वाला संत बहुत दुर्लभ है कि पूर्ण ब्रह्म ही सब कुछ है, ब्रह्म व परब्रह्म से पूर्ण मोक्ष नहीं होता।

अध्याय 7 का श्लोक 20

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया। २०।

कामैः, तैः, तैः, हृतज्ञानाः, प्रपद्यन्ते, अन्यदेवताः,

तम्, तम् नियमम्, आस्थाय, प्रकृत्या, नियताः, स्वया।।20।।

अनुवाद : (तैः, तैः) उन-उन (कामैः) भोगोंकी कामनाद्वारा (हृतज्ञानाः) जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग (स्वया) अपने (प्रकृत्या) स्वभावसे (नियताः) प्रेरित होकर (तम्-तम्) उस उस अज्ञान रूप अंधकार वाले (नियमम्) नियमके (आस्थाय) आश्रयसे (अन्यदेवताः) अन्य देवताओंको (प्रपद्यन्ते) भजते हैं अर्थात् पूजते हैं। (20)

केवल हिन्दी अनुवाद : उन-उन भोगोंकी कामनाद्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग अपने स्वभावसे प्रेरित होकर उस उस अज्ञान रूप अंधकार वाले नियमके आश्रयसे अन्य देवताओंको भजते हैं अर्थात् पूजते हैं। (20)

अध्याय 7 का श्लोक 21

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्। २१।

यः, यः, याम्, याम्, तनुम्, भक्तः, श्रद्धया, अर्चितुम्, इच्छति,

तस्य, तस्य अचलाम्, श्रद्धाम्, ताम्, एव, विदधामि, अहम्।।21।।

अनुवाद : (यः, यः) जो-जो (भक्तः) भक्त (याम्, याम्) जिस-जिस (तनुम्) देवताके स्वरूपको (श्रद्धया) श्रद्धासे (अर्चितुम्) पूजना (इच्छति) चाहता है, (तस्य) उस (तस्य) उस भक्तकी (श्रद्धाम्) श्रद्धाको (अहम्) मैं (ताम्, एव) उसी देवता के प्रति (अचलाम्) स्थिर (विदधामि) करता हूँ। (21)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो-जो भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस उस भक्तकी श्रद्धाको मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ। (21)

अध्याय 7 का श्लोक 22

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।

लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान्। २२।

सः, तया, श्रद्धया, युक्तः, तस्य, आराधनम्, ईहते,

लभते, च, ततः, कामान्, मया, एव, विहितान्, हि, तान्।।22।।

अनुवाद : (सः) वह भक्त (तया) उस (श्रद्धया) श्रद्धा से (युक्तः) युक्त होकर (तस्य) उस देवताका (आराधनम्) पूजन (ईहते) करता है (च) और (हि) क्योंकि (ततः) उस देवतासे (मया)

मेरे द्वारा (एव) ही (विहितान्) विधान किये हुए (तान्) उन (कामान्) इच्छित भोगोंको (लभते) प्राप्त करता है। (22)

केवल हिन्दी अनुवाद : वह भक्त उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और क्योंकि उस देवतासे मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको प्राप्त करता है। (22)

अध्याय 7 का श्लोक 23

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।

देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि। २३।

अन्तवत्, तु, फलम्, तेषाम्, तत्, भवति, अल्पमेधसाम्,

देवान्, देवयजः, यान्ति, मद्भक्ताः, यान्ति, माम्, अपि। 23।।

अनुवाद : (तु) परंतु (तेषाम्) उन (अल्पमेधसाम्) अल्प बुद्धिवालोंका (तत्) वह (फलम्) फल (अन्तवत्) नाशवान् (भवति) होता है (देवयजः) देवताओंको पूजनेवाले (देवान्) देवताओंको (यान्ति) प्राप्त होते हैं। और (मद्भक्ताः) मतावलम्बी (अपि) भी (माम्) मुझको (यान्ति) प्राप्त होते हैं। (23)

केवल हिन्दी अनुवाद : परंतु उन अल्प बुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् होता है देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं। और मतावलम्बी अर्थात् मेरे द्वारा बताए भक्ति मार्ग से भी मुझको प्राप्त होते हैं। (23)

भावार्थ :- गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 तक का भावार्थ है कि जो गीता अध्याय 7 श्लोक 12 से 15 में कहा है कि तीनों गुण(रजगुण श्री ब्रह्मा जी, सतगुण श्री विष्णु जी, तम गुण श्री शिव जी) रूपी माया द्वारा जिन का ज्ञान हरा जा चुका है अर्थात् जो तीनों देवताओं की साधना करते हैं वे राक्षस स्वभाव को धारण किए हुए, मनुष्यों में नीच, दुष्कर्म करने वाले मूर्ख मुझे ब्रह्म की पूजा नहीं करते। इसी के सम्बन्ध में गीता अध्याय 7 श्लोक 20 से 23 में कहा है कि जिनका ज्ञान उपरोक्त तीनों देवताओं द्वारा हरा जा चुका है वे अपने स्वभाव वश उन्हीं देवताओं की पूजा मनोकामना पूर्ण करने के उद्देश्य से करते हैं अर्थात् गीता ज्ञान दाता कह रहा है कि मेरे से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं। जो भक्त जिस देवता की पूजा करता है उसकी श्रद्धा मैं ही उस देवता के प्रतिदृढ़ करता हूँ। उस देवताओं के पुजारी को भी मेरे द्वारा उस देवता को दी गई शक्ति से ही प्राप्त होता है। परन्तु उन मंद बुद्धि वालों अर्थात् मूर्खों का वह फल नाशवान है। देवताओं के पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। मेरे भक्त मुझे प्राप्त होते हैं। भावार्थ है कि जो ब्रह्मा विष्णु तथा शिव की पूजा या अन्य किसी देव की पूजा करते हैं उन देवताओं की पूजा का फल नाशवान है अर्थात् वह पूजा व्यर्थ है।

अध्याय 7 का श्लोक 24

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्। २४।

अव्यक्तम्, व्यक्तिम्, आपन्नम्, मन्यन्ते, माम्, अबुद्धयः।

परम्, भावम्, अजानन्तः, मम, अव्ययम्, अनुत्तमम्। 24।।

अनुवाद : (अबुद्धयः) बुद्धिहीन लोग (मम) मेरे (अनुत्तमम्) अश्रेष्ठ (अव्ययम्) अटल (परम्) परम (भावम्) भावको (अजानन्तः) न जानते हुए (अव्यक्तम्) छिपे हुए अर्थात् परोक्ष (माम्) मुझ कालको (व्यक्तिम्) मनुष्य की तरह आकार में कृष्ण अवतार (आपन्नम्) प्राप्त हुआ (मन्यन्ते) मानते

हैं अर्थात् मैं कृष्ण नहीं हूँ। (24)

केवल हिन्दी अनुवाद : बुद्धिहीन लोग मेरे अश्रेष्ठ अटल परम भावको न जानते हुए छिपे हुए अर्थात् परोक्ष मुझ कालको मनुष्य की तरह आकार में कृष्ण अवतार प्राप्त हुआ मानते हैं अर्थात् मैं कृष्ण नहीं हूँ। (24)

अध्याय 7 का श्लोक 25

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् । २५ ।

न, अहम्, प्रकाशः, सर्वस्य, योगमायासमावृतः ।

मूढः, अयम्, न, अभिजानाति, लोकः, माम्, अजम्, अव्ययम् ।। 25 ।।

अनुवाद : (अहम्) मैं (योगमाया समावृतः) योगमायासे छिपा हुआ (सर्वस्य) सबके (प्रकाशः) प्रत्यक्ष (न) नहीं होता अर्थात् अदृश्य रहता हूँ इसलिये(माम्) मुझ (अजम्) जन्म न लेने वाले (अव्ययम्) अविनाशी अटल भावको (अयम्) यह (मूढः) अज्ञानी (लोकः) जनसमुदाय संसार (न) नहीं (अभिजानाति) जानता अर्थात् मुझको अवतार रूप में आया समझता है। क्योंकि ब्रह्म अपनी शब्द शक्ति से अपने नाना रूप बना लेता है, यह दुर्गा का पति है इसलिए इस श्लोक में कह रहा है कि मैं श्री कृष्ण आदि की तरह दुर्गा से जन्म नहीं लेता। (25)

केवल हिन्दी अनुवाद : मैं योगमायासे छिपा हुआ सबके प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् अदृश्य रहता हूँ इसलिये मुझ जन्म न लेने वाले अविनाशी अटल भावको यह अज्ञानी जनसमुदाय संसार नहीं जानता अर्थात् मुझको अवतार रूप में आया समझता है। क्योंकि ब्रह्म अपनी शब्द शक्ति से अपने नाना रूप बना लेता है, यह दुर्गा का पति है इसलिए इस श्लोक में कह रहा है कि मैं श्री कृष्ण आदि की तरह दुर्गा से जन्म नहीं लेता। (25)

विशेष :- गीता अध्याय 7 श्लोक संख्या 24-25 में गीता ज्ञान दाता प्रभु अपने विषय में कह रहा है कि मैं अव्यक्त रहता है अर्थात् मैं अपनी योग माया अर्थात् सिद्धी शक्ति से छिपा रहता हूँ। सर्व के समक्ष अपने वास्तविक काल रूप में नहीं आता। यह प्रथम अव्यक्त हुआ। फिर गीता अध्याय 8 श्लोक 18 में कहा है कि ये सर्व प्राणी प्रलय के समय अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। विचार करें यह दूसरा अव्यक्त हुआ। फिर गीता अध्याय 8 श्लोक 20 में कहा है कि उस अव्यक्त प्रभु से अर्थात् परब्रह्म से दूसरा अव्यक्त अर्थात् गुप्त परमात्मा तो सर्व प्राणियों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता वह सनातन अव्यक्त अर्थात् वह आदि परोक्ष प्रभु तीसरा अव्यक्त परमात्मा है। गीता अध्याय 8 श्लोक 21 में कहा है कि उस गुप्त परमात्मा को अविनाशी अव्यक्त कहा जाता है। जिस परमात्मा के पास जाने के पश्चात् प्राणी फिर लौटकर संसार में नहीं आते वह स्थान वास्तव में पूर्ण मोक्ष स्थल है। वह स्थान मेरे अर्थात् गीता ज्ञान दाता के स्थान अर्थात् ब्रह्म लोक से श्रेष्ठ है। विचार करें यह तीसरा अव्यक्त अर्थात् गुप्त प्रभु सिद्ध हुआ जो वास्तव में अविनाशी है। यह प्रमाण गीता अध्याय 15 श्लोक 1-4 व 16-17 में है। जिसमें तीन परमात्माओं का वर्णन स्पष्ट है। एक क्षर पुरुष अर्थात् ब्रह्म दूसरा अक्षर पुरुष अर्थात् परब्रह्म तथा तीसरा परम अक्षर ब्रह्म अर्थात् पूर्ण ब्रह्म परम अक्षर ब्रह्म का प्रमाण गीता अध्याय 8 श्लोक 1 तथा 3 में है।

अध्याय 7 का श्लोक 26

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन। २६।

वेद, अहम्, समतीतानि, वर्तमानानि, च, अर्जुन,

भविष्याणि, च, भूतानि, माम्, तु, वेद, न, कश्चन। 26।।

अनुवाद : (अर्जुन) हे अर्जुन! (समतीतानि) पूर्वमें व्यतीत हुए (च) और (वर्तमानानि) वर्तमानमें स्थित (च) तथा (भविष्याणि) आगे होनेवाले (भूतानि) सब भूतोंको (अहम्) मैं (वेद) जानता हूँ (तु) परंतु (माम्) मुझको (कश्चन) कोई (न) नहीं (वेद) जानता। (26)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब प्राणियों को मैं जानता हूँ परंतु मुझको कोई नहीं जानता। (26)

अध्याय 7 का श्लोक 27

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।

सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप। २७।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन, द्वन्द्वमोहेन, भारत,

सर्वभूतानि, सम्मोहम्, सर्गे, यान्ति, परन्तप। 27।।

अनुवाद : (भारत) हे भरतवंशी (परन्तप) अर्जुन! (सर्गे) संसारमें (इच्छाद्वेषसमुत्थेन) इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न (द्वन्द्वमोहेन) सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे (सर्वभूतानि) सम्पूर्ण प्राणी (सम्मोहम्) अत्यन्त अज्ञानताको (यान्ति) प्राप्त हो रहे हैं। (27)

केवल हिन्दी अनुवाद : हे भरतवंशी अर्जुन! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञानताको प्राप्त हो रहे हैं। (27)

अध्याय 7 का श्लोक 28

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः। २८।

येषाम्, तु, अन्तगतम्, पापम्, जनानाम्, पुण्यकर्मणाम्,

ते, द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः, भजन्ते, माम्, दृढव्रताः। 28।।

अनुवाद : (तु) परंतु निष्कामभावसे (पुण्यकर्मणाम्) श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले (येषाम्) जिन (जनानाम्) पुरुषोंका (पापम्) पाप (अन्तगतम्) नष्ट हो गया है (ते) वे (द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः) राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त (दृढव्रताः) दृढ़निश्चयी भक्त (माम्) मुझको सब प्रकारसे (भजन्ते) भजते हैं। (28)

केवल हिन्दी अनुवाद : परंतु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं। (28)

अध्याय 7 का श्लोक 29

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्। २९।

जरामरणमोक्षाय, मामाश्रित्य, यतन्ति, ये,

ते, ब्रह्म, तद्विदुः, कृत्स्नमध्यात्मं, कर्म, चाखिलम्। 29।।

जरामरणमोक्षाय, माम्, आश्रित्य, यतन्ति, ये, ।

ते, ब्रह्म, तत् विदुः, कृत्स्नम्, अध्यात्मम्, कर्म, च, अखिलम् ।। 29 ।।

अनुवाद : (ये) जो (माम्) मेरे (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण (अध्यात्मम्) अध्यात्मको (च) तथा (अखिलम्) सम्पूर्ण (कर्म) कर्मको (विदुः) जानते हैं (ते) वे पुरुष (तत्) उस (ब्रह्म) ब्रह्मके (आश्रित्य) आश्रित होकर (जरामरणमोक्षाय) जरा और मरणसे छूटनेके लिये (यतन्ति) यत्न करते हैं । (29)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो मेरे सम्पूर्ण अध्यात्मको तथा सम्पूर्ण कर्मको जानते हैं वे पुरुष उस ब्रह्मके आश्रित होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं । (29)

अध्याय 7 का श्लोक 30

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः । ३० ।

साधिभूताधिदैवम्, माम्, साधियज्ञम्, च, ये, विदुः ।

प्रयाणकाले, अपि, च, माम्, ते, विदुः, युक्तचेतसः ।। 30 ।।

अनुवाद : (ये) जो साधक (माम्) मुझे (च) तथा (साधिभूताधिदैवम्) अधिभूत अधिदैवके सहित (च) और (साधियज्ञम्) अधियज्ञ के सहित (विदुः) सही जानते हैं (ते) वे (माम्) मुझे (विदुः) जानते हैं (प्रयाणकाले) अंत काल में (अपि) भी (युक्तचेतसः) युक्तचित्तवाले हैं अर्थात् मेरे द्वारा दिए जा रहे कष्ट को जानते हुए एक पूर्ण परमात्मा में मन को स्थाई रखते हैं । (30)

केवल हिन्दी अनुवाद : जो साधक मुझे तथा अधिभूत अधिदैवके सहित और अधियज्ञ के सहित सही जानते हैं वे मुझे जानते हैं अंत काल में भी युक्तचित्तवाले हैं अर्थात् मेरे द्वारा दिए जा रहे कष्ट को जानते हुए उस एक पूर्ण परमात्मा में मन को स्थाई रखते हैं । (30)

(इति अध्याय सातवाँ)

